वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय

रावतभाटा रोड कोटा

मास्टर ऑफ जर्नलिज्म (एमजे)

एमजे-105

विशेषीकृत पत्रकारिता एवं समाज

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

प्रो विनय कुमार पाठक	प्रो एलआर गुर्जर	प्रो एचबी नंदवाना
कुलपति	अध्यक्ष	निदेशक, सतत शिक्षा विभाग
वमखुवि, कोटा	वमखुवि, कोटा	वमखुवि, कोटा

संयोजक एवं सदस्य

संयोजक

डॉ सुबोध कुमार
पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
वर्धमान महावीर खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

1. प्रो रमेश जैन
ई- 51, चितरंजन मार्ग
सी-स्कीम जयपुर- 302001

2. प्रो राम मोहन पाठक
पूर्व निदेशक, महामना मदन मोहन
मालवीय हिन्दी पत्रकारिता संस्थान,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ
वाराणसी- 221002

3. डॉ गिरिजा शंकर शर्मा
विभागाध्यक्ष, पत्रकारिता एवं
जनसंचार विभाग, के एनआईडी
भीमराव अंबेडकर विवि
आगरा- 282004

4. श्री अखिलेश कुमार सिंह
वरिष्ठ पत्रकार, टाइम्स आफ इंडिया
101, श्री अपार्टमेंट, सी- 147,
दयानंद मार्ग, तिलक नगर, जयपुर
(राजस्थान)

5. श्री राजीव तिवारी
स्टेट हेड, राजस्थान पत्रिका
प्लाट नंबर-4
चितरंजन लेन, पृथ्वीराज रोड
सी स्कीम, जयपुर

6. श्री सनी सेबेस्टियन
कुलपति, हरिदेव जोशी पत्रकारिता
एवं जनसंचार विश्वविद्यालय ,
सवाई रामसिंह रोड, जयपुर

7. प्रो एचबी नंदवाना
निदेशक, सतत शिक्षा विभाग
वर्धमान महावीर खुला
विश्वविद्यालय, रावतभाटा
रोड, कोटा

8. डॉ रश्मि बोहरा
क्षेत्रीय निदेशक, वर्धमान
महावीर खुला विश्वविद्यालय
उदयपुर क्षेत्रीय केन्द्र, उदयपुर

संपादन एवं पाठ लेखन

पाठ लेखक	संपादक
डॉ सुबोध कुमार (1,2,3,4,6,7,8,10,11,12,16,17)	श्री दिनेश पाठक
आयुष श्रीवास्तव (9,19), पीयूष पांडेय (18), प्रमोद सैनी (5,13)	स्थानीय संपादक, हिन्दुस्तान
डॉ रश्मि बोहरा (14), कल्लोल चक्रवर्ती (15)	गोरखपुर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो विनय कुमार पाठक	प्रो एलआर गुर्जर	प्रो करन सिंह	डॉ सुबोध कुमार
कुलपति	निदेशक अकादमिक	निदेशक, एमपीडी	अति निदेशक, एमपीडी
वमखुवि, कोटा	वमखुवि, कोटा	वमखुवि, कोटा	वमखुवि, कोटा

उत्पादन – मुद्रण - जनवरी 2015 **ISBN-978-81-8496-494-3**

इस सामग्री के किसी भी अंश की वमखुवि, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा अन्यत्र प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

वमखुवि, कोटा के लिए कुलसचिव वमखुवि, कोटा द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

MJ-105

विशेषीकृत पत्रकारिता एवं समाज

अध्याय	पेज नंबर
1. विज्ञान पत्रकारिता जगत एवं मीडिया	4
2. धर्म, आध्यात्म और मीडिया	28
3. स्वास्थ्य जगत और मीडिया	41
4. ग्रामीण जगत और मीडिया	56
5. विधि पत्रकारिता	68
6. रक्षा जगत और मीडिया	80
7. आर्थिक जगत और मीडिया	94
8. खेल जगत और मीडिया	111
9. फिल्म जगत और मीडिया	131
10. विदेश में पत्रकारिता	146
11. भारतीय सामाजिक परिवेश	160
12. भारतीय समाज और मीडिया	171
13. मानवाधिकार एवं मीडिया	182
14. महिला जगत और मीडिया	199
15. साहित्य, संस्कृति और मीडिया	213
16. शिक्षा जगत और मीडिया	229
17. रोजगार और मीडिया	243
18. अपराध और मीडिया	255
19. बाजार, उपभोक्तावाद और मीडिया	269

ईकाई-एक

विज्ञान-पर्यावरण जगत एवं मीडिया

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 विज्ञान पत्रकारिता

1.4 हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता का विकास

1.5 विज्ञान रिपोर्टिंग

1.6 विज्ञान पत्रकारिता: विभिन्न विधाएं

1.7 पर्यावरण से जुड़े मसले और मीडिया

1.8 पर्यावरण पत्रकारिता की चुनौतियां

1.9 अभ्यास प्रश्न

1.10 सारांश

1.11 शब्दावली

1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.13 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.14 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

विज्ञान पत्रकारिता से जुड़ी इस इकाई में इसके विविध पहलुओं को रेखांकित किया गया है। इसमें एक ओर विज्ञान पत्रकारिता के अर्थ, महत्व और उद्देश्य को रेखांकित किया गया है वहीं दूसरी ओर हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता के पक्ष को भी उभारा गया है।

प्रस्तुत इकाई में यह भी बताया गया है कि विज्ञान के विषयों की रिपोर्टिंग किस प्रकार करनी चाहिए और विज्ञान लेखन के लिए कौन-कौन सी बातें ध्यान रखने योग्य हैं। इसके अलावा विज्ञान पत्रकारिता के लिए विभिन्न विधाओं में लेखन किस प्रकार किया जाता है, उसके बारे में भी विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप

●बता सकेंगे कि विज्ञान पत्रकारिता का विकास कैसे हुआ और अब तक कितने सोपान तय किए।

●समझा सकेंगे कि विभिन्न विधाओं में विज्ञान का लेखन किस तरह किया जाए जिससे लोगों तक जानकारियां आसानी से पहुंच सकें।

●बता सकेंगे कि पर्यावरण से जुड़े मसले कौन-कौन से हैं और उन्हें मीडिया द्वारा कैसे उठाया जा सकता है।

●जानेंगे कि पर्यावरण पत्रकारिता की चुनौतियां क्या हैं और उनसे कैसे निपटेंगे।

1.3 विज्ञान पत्रकारिता

अर्थ: पत्रकारिता एक ऐसी विधा है जिसमें पत्रकारों के कार्यों और उद्देश्यों का विवेचन किया जाता है। इस बारे में वरिष्ठ पत्रकार जीएफ मोट ने कहा है कि पत्रकारिता विश्व की पांचवीं बड़ी शक्ति है। पत्रकारिता केवल व्यवसाय ही नहीं है, पत्रकारिता कला भी है, वृत्ति भी है और लोकसेवा का साधन भी है।

दूसरी ओर विज्ञान पत्रकारिता का अर्थ काफी व्यापक है। डॉ ए जान नाइट के अनुसार-

''समाचार पत्र पत्रिकाओं, आकाशवाणी, दूरदर्शन तथा अन्य प्रचार साधनों के लिए वैज्ञानिक समाचारों, विाचारों एवं सूचनाओं की रिपोर्टिंग, लेखन, संपादन और प्रस्तुतीकरण से संबद्ध कार्य करना, विज्ञान पत्रकारिता है। देखा जाए तो विज्ञान के क्षेत्र से जुड़ी जानकारी को प्राप्त करना, संशाधित करना और लोगों के लिए प्रस्तुत करना ही विज्ञान पत्रकारिता है।''

इसके अलावा वैज्ञानिक अनुसंधान और खोजों और आविष्कारों की सूचनाएं लोगों तक पहुंचाना ही विज्ञान पत्रकारिता नहीं है बल्कि विज्ञान के क्षेत्र में व्याप्त गड़बड़ियों और अनियमितताओं को भी सामने लाना विज्ञान पत्रकारिता का मूल कर्तव्य है। इसके अलावा लोगों को वैज्ञानिक ढंग से सलाह देना और उनका मार्गदर्शन करना भी विज्ञान पत्रकारिता का अहम कार्य है।

उद्देश्य: विज्ञान पत्रकारिता का उद्देश्य मात्र विज्ञान की सूचनाएं देना ही नहीं रहा बल्कि सत्य का संधान कर उसे उद्घाटित करना भी रहा है। मुख्य रूप से विज्ञान पत्रकारिता के चार उद्देश्य उभरकर सामने आए है-

1. वैज्ञानिकों और खोजकर्ताओं को मौलिक गहन अनुसंधानों की जानकारियां उपलब्ध कराना जिससे नए उपयोगी अनुसंधानों और खोज के कामों में मदद मिल सके।

2. छात्र-छात्राओं के अलावा पढ़े-लिखे किसानों, कारीगरों तथा सामान्य शिक्षा प्राप्त जागरूक पाठकों को लोकप्रिय सरल भाषा में व्यवहारोपयोगी सूचनाएं उपलब्ध कराना, जिससे लोगों में विज्ञान के प्रति अभिरूचि पैदा हो सके और उनके जीवन स्तर में बदलाव हो सके।

3. सामान्य पत्रकारिता के अलावा विज्ञान पत्रकारिता का भी अहम उद्देश्य है कि विज्ञान के क्षेत्र में घटित होने अनियमित घटनाओं की जानकारी प्रकाश में लाना, ताकि उसके स्तर में अपेक्षित सुधार किया जा सके।

4. विज्ञान से संबंधित विभिन्न कार्यों, अनुसंधानों, परियोजनाओं आदि पर निष्पक्ष विचार प्रकट करें। यानी क्या होना चाहिए और क्या नहीं होना चाहिए, इसे लेकर एक सशक्त सलाहकार की भूमिका निभाई जाए। आम छात्रों और कारीगरों तथा विज्ञान के जानकारों को यह पता होना चाहिए कि वैज्ञानिकता का उपयोग कैसे किया जाए जिससे उन्हें लाभ मिल सकता हो।

महत्व: विज्ञान पत्रकारिता का महत्व अत्यंत व्यापक है और इसकी क्षमताएं अनंत है। कभी-कभी पत्रकारों द्वारा लिखी और कही गई बातों के आधार पर बड़े-बड़े निष्कर्ष निकल आते है। कुछ उदाहरण देखें-

1. 1931 में दो युवा वैज्ञानिकों ने एपी के विज्ञान पत्रकार हावर्ड ब्लेकस्ली, न्यूयार्क टाइम्स के विज्ञान लेखक विलियम लारेंस और विज्ञान पत्रकार गोविंद बिहारी लाल को अपनी बात कहने के लिए आमंत्रित किया। ये वैज्ञानिक थे डॉ अर्नेस्ट ओ लारेंस और राबर्ट ओपेनहाइमर। दोनों ने बताया कि उन्हें विद्युत आवेशित कणों को तीव्रतर गति से उर्जा देने के लिए एक मशीन की जरूरत है, लेकिन उनके पास धन और उपकरण नहीं है। बाद में अखबारों में जब यह समाचार प्रकाशित हुआ तो वह मशीन दोनों शोध विज्ञानियों को मुफ्त में मिल गई। यह केवल रिपोर्टिंग के जरिए ही संभव हो सका।

2. इसी तरह मेनिनजाइटिस से पीड़ित एक बच्चे के इलाज के लिए अखबार में छपी खबर का संज्ञान लेकर पीड़ितजन संपादक के पास पहुंचे। संपादक ने उन्हें रिपोर्टर से मिलवाया तथा बाद में पीड़ितजनों ने डाक्टर से भेंटकर औषधि की जानकारी ली। इससे बच्चे को बचाया जा सका। इस प्रकार विज्ञान पत्रकारिता लोगों की भलाई के लिए जहां काम कर सकती है वहीं लोगों के जीवन में सकारात्मक दृष्टिकोण भी पैदा करती है। ऐसे में विज्ञान पत्रकारिता स्वस्थ, विकासशील, संतुलित और सुव्यवथित समाज के निर्माण में असली भूमिका अदा कर सकती है।

1.4 हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता का विकास

पत्रकारिता के इतिहास पर नजर डालते हैं तो ईसा के पांच शताब्दी पूर्व रोम में संवाद लेखक कार्य करते थे। ईसा पूर्व 60 में जूलियस सीजर ने 'एक्टा डार्ना' नामक अखबार निकाला। 1476 ई0 में इंग्लैंड में छापाखाना का निर्माण हुआ। 1561 में छपे अखबार 'न्यूजआउट ऑफ केंट' का प्रमाण सामने आया। नियमित रूप से 1620 में एम्सटर्डम से पहला समाचार पत्र प्रकाशित हुआ।

भारत में पत्रकारिता की लहर 1557 में पहुंची, जब गोवा में छापा खाना लगाया गया। इसके बाद 1780 में जेम्स आगस्टस हिक्की ने 'कलकत्ता जनरल एडवरटाइजर' नामक पत्र का प्रकाशन शुरू किया। 1816 में गंगाधर भट्टाचार्य ने 'बंगाल गजट' का अंग्रेजी में प्रकाशन शुरू किया। 1818 में भारतीय भाषाओं में 'दिग्दर्शन' मासिक पत्र का सूत्रपात हुआ। 1821 में भारतीय पत्रकारिता के जनक राजा राममोहन राय ने 'संवाद कौमुदी' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया। इसके बाद कानपुर निवासी

पं युगल किशोर शुक्ल ने 30 मई 1826 को कोलकाता से ही हिन्दी साप्ताहिक पत्र 'उदंत मार्तंड' का प्रकाशन शुरू किया।

विश्व में विज्ञान पत्रकारिता: ईसा पूर्व 4000 की सुमेरी सभ्यता की चित्रलिपि में अंकगणित का समावेश किया गया है। ईसा पूर्व 1700 की मिट्टी पर गणितीय सारणियां हैं। ईसा पूर्व 500-600 के यूनानी अभिलेखों में वैज्ञानिक उपलब्धियों के प्रमाण हैं। ईसा पूर्व पांचवी सदी में फारस के शाही हकीम डेमोसीड्स ने यूनानी भाषा में औषधि विज्ञान की पहली पुस्तक लिखी। सिकंदर की मौत के बाद सिकंदरिया एकेडमी के गणितज्ञ यूक्लिड (ईसा पूर्व 320-260) ने एलीमेंट्री ऑफ ज्यामेट्री पर 13 भागों में पुस्तक लिखी। आर्कमिडीज ने ईसा पूर्व 287-212 में ग्रीक भाषा में गोला और रंभ तथा वैज्ञानिक अनुसंधान की पद्धति आदि कृतियां लिखीं। ईसा पूर्व 50 में हीरों ने 'न्यूमेटिका' में पुस्तक लिखी, इसमें भाप-चलित उपकरण का वर्णन किया गया था। ईसा पूर्व 400 में बेरो ने ऑन फॉर्मिंग नामक कृषि पुस्तक तथा प्लीनी ने नेचुरल हिस्ट्री पर किताब लिखी। यूनान के बाद अरब में तेजी से विज्ञान साहित्य का विकास हुआ। लैटिन और संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद किए गए। सरगियस ने पदार्थ विज्ञान की यूनानी पुस्तक का अरबी अनुवाद किया। 776 ई. में जाबिर ने अनेक रसायन ग्रंथ लिखे। नवीं सदी में अलकिंडी ने विश्वकोष बनाया। अरस्तू के बाद अलफराबी ने विज्ञान के मूल सिद्धांत लिखा। अलमसूरी ने अरबी में 'द बुक ऑफ इंडीकेशन एंड रिवीजन' में पेड़-पौधों, खनिजों और प्राणियों के बारे में विस्तार से लिखा गया। फारस के वैज्ञानिक अलबरूनी (973-1048 ई) ने भारतीय ज्ञान-विज्ञान पर कई किताबें लिखीं। इब्नेशिना ने दस लाख शब्दों का विश्वकोष कानून बनाया। चीन में ईसा पूर्व 'मोचिंग' ग्रंथ का पता चला जिसमें कैमरे का उल्लेख मिला। यूनान का विज्ञान अनूदित होकर अरब पहुंचा, जहां आधुनिक विज्ञान पनपा। स्पेन के चिकित्सक आबू मखा हवन जहर ने चिकित्साशास्त्र पर कई पुस्तकें लिखीं।

12वीं शताब्दी में सिसली के सम्राट फ्रैड्रिक द्वितीय ने अरस्तू और इबनरशीर का साहित्य अनूदित करके पेरिस विवि को भेंट किया। उसने स्वयं पक्षीशास्त्र पर ग्रंथ लिखा। भारतीय शून्य अरब से अनूदित होकर यूरोप पहुंचा। 1316 में ज्योति विज्ञान पर इंग्लैंड के जॉन होलीवुड ने किताब लिखी। कार्डीनल निकोलस (1401-1464) ने भार व समय मापन के लिए तुला और जलघड़ी पर ग्रंथ लिखा। 14वीं शताब्दी में ग्रीक के वैज्ञानिक ग्रंथों का सीधे लैटिन में अनुवाद करने का बड़ा आंदोलन चला। 1476 में छापाखाना आने के बाद 15वीं शताब्दी में पश्चिमी जगत आधुनिक विज्ञान और साहित्य का केन्द्र बन गया। 1540 में वानाशियो और विरन-गुशियो ने धातु शोधन पर ग्रंथ लिखा। 1546 में जॉर्ज अगरीकोला ने खनिज विज्ञान पर कइ ग्रंथ लिखे। 1543 में बेसेलियस ने 'ऑन दि फैब्रिक ऑफ ह्यूमन बॉडी' नामक ग्रंथ

लिखा। 1600 में रानी एलिजाबेथ के निजी चिकित्सक विलियम गिल्बर्ट ने चुंबकीय सिद्धांत पर लैटिन में पुस्तक लिखी जो इंग्लैंड की पहली विज्ञान पुस्तक बनी। 1632 में गैलीलियो ने 'जगत की दो पद्धतियों का संवाद' नामक पुस्तक तैयार की। गैलीलियो ने 1610 में दूरवीक्षण पर 24 पृष्ठों की किताब लिखी जो विज्ञान साहित्य की सबसे छोटी पुस्तक है। आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित काने का श्रेय इंग्लैड के फ्रांसिस बेकन (1561-1626) को जाता है, जिन्होंने रॉयल सोसायटी की स्थापना की और कई किताबें भी लिखीं। 1665 में दुनिया की पहली विज्ञान पत्रिका 'जर्नल दैस स्कैवान' मासिक को फ्रेंच एकेडमी ऑफ साइंसेज के द्वारा निकाला गया। इसी समय इंग्लैंड की रायल सोसायटी ने भी फिलॉसफिकल ट्रांजेक्शन नामक विज्ञान पत्रिका आरंभ की और तभी से पूरी दुनिया में विज्ञान की पत्रिकाएं निकल रही हैं।

भारतीय विज्ञान पत्रकारिता: डॉ. ओमप्रकाश शर्मा के अनुसार चरक द्वारा रचित चरक संहिता को ही भारत का प्रथम शुद्ध वैज्ञानिक ग्रंथ कह सकते हैं। वाराहमिहिर ने 500 ई0 में वृहत्संहिता लिखा। नागार्जुन रचित 'रस रत्नाकर' 7-8वीं शताब्दी में लिखा गया है। इसमें रासायनिक विधियों का वर्णन मिलता है। अग्नि पुराण ज्ञानकोश का एक वृहत ग्रंथ है। आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय के अनुसार 'रसार्णव' 12वीं शताब्दी में लिखा गया। हमारे वैदिक और पौराणिक ग्रन्थों में अनेक वैज्ञानिक प्रकरण समाहित हैं। 13वीं सदी में यशोधर ने 'रसप्रकाश सुधाकर' लिखा। 14वीं सदी में 'रसरत्नसमुच्चय' वाग्भट्ट ने लिखा। ये दोनों ग्रंथ आचार्य प्रुफल्लचंद्र राय ने बंगाल की एशियाटिक सोसायटी से छपाए। रसायन शास्त्र में इस अवधि में अनेक ग्रंथ लिखे गए इनमें 'रस कौमुदी' और 'रस प्रदीप' शामिल हैं। उत्तर प्रदेश के भावमिश्र ने 'भाव प्रकाश' में विस्तृत सूचनाएं दीं। 16वीं सदी में धातु क्रिया लिखा गया। इसी वक्त विस्फोटकों पर आकाश भैरवकल्प लिखी गई।

इसके बाद 1800 ई0 में बंगाल में श्रीरामपुर प्रेस मिशन ने अंग्रेजी, बंगला और हिन्दी में विज्ञान की पुस्तकों की छपाई आरंभ की। 1817 में बंगाल में स्कूल बुक सोसायटी बनी जिसमें विज्ञान की पुस्तकें तैयार की गईं। 1819 में फेनलिक्स ने बंगला में शरीर क्रिया विज्ञान पर पुस्तकें लिखीं। 1823 में राजा राममोहन राय ने गवर्नर रग्महर्स्ट को यूरोपीय विज्ञान भारतीयों को उपलब्ध कराने को कहा। बंगाल में वैज्ञानिक साहित्य के विकास में राजशेखर बोस का अप्रतिम योगदान रहा है। मराठी में पहली विज्ञान पुस्तक औषधि कल्पना अनुवाद कर 1815 में लिखी गई। 1834 में कलकत्ता की एशियाटिक सोसायटी ने सर्वप्रथम वैज्ञानिक पत्रिका ''एशियाटिक सोसायटी जर्नल'' अंग्रेजी त्रैमासिक का प्रकाशन किया।

हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता: वैसे तो हिन्दी विज्ञान लेखन की शुरुआत उन पुराग्रंथों से मानी जा सकती है, जिनमें चिकित्सा, रसायन, खगोल और गणितीय प्रकरणों का समावेश है। लेकिन आधुनिक हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता की शुरुआत 19वीं शताब्दी से ही मानी जाती है। हिन्दी पत्रकारिता पर पुस्तकों का प्रकाशन तो काफी बाद में हुआ, लेकिन पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञान के लेख आलेख और समाचार पहले से ही प्रकाशित होने लगे। वैसे यूं कहा जाए कि जैसे-जैसे हिन्दी पत्रकारिता परवान चढ़ी वैसे-वैसे हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता की शुरुआत हुई।

अप्रैल 1818 में श्रीरामपुर जिला हुगली से बंगाल के बैपटिस्ट मिशनरियों ने बंगला और अंग्रेजी में मासिक दिग्दर्शन शुरू किया। इसके संपादक क्लार्क मार्शमैन थे, बाद में इसका हिन्दी रूपांतर भी प्रकाशित किया जाने लगा। इसके पहले अंक में दो विज्ञानपरक लेख छपे। पहला, अमेरिका की खोज और दूसरा, बैलून द्वारा आकाश यात्रा। दूसरे अंक में दो और लेख छपे जिसमें भारत में उगने वाले तथा इंग्लैंड में न उगने वाले वृक्ष और दूसरा भाप की शक्ति से चलने वाली नाव (स्टीमबोट) के बारे में। उन दिनों किताबों की कमी होने के कारण कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी ने दिग्दर्शन के बहुत से अंक खरीदकर स्कूलों में बंटवाए। क्योंकि इनमें विज्ञान से जुड़ी जानकारियां थीं। इस प्रकार दिग्दर्शन ही हिन्दी और बंगला में ऐसा अखबार था जिसमें सबसे पहले हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता का प्रादुर्भाव हुआ। कुछ लोग उदंत मार्तंड को हिन्दी पत्रकारिता का पहला अखबार मानते हैं, लेकिन उसमें विज्ञान प्रकरणों के उल्लेख नहीं मिलते।

उन्नीसवीं शताब्दी: आगरा की स्कूल बुक सोसायटी ने 1847 में 'रसायन प्रकाश' प्रश्नोत्तर नामक पुस्तक का प्रकाशन किया। 1860 में 'सरल विज्ञान विटप' पुस्तक प्रकाशित हुई। 1875 में प्रयाग से कुंज बिहारी लाल की 'सुलभ बीजगणित' प्रकाशित हुई। बनारस के पं लक्ष्मीशंकर मिश्र ने 1885 में 'गति विज्ञान' पर पुस्तक लिखी। 1883 में मुंशी नवल किशोर ने एक लेख रसायन पर अपने प्रेस से छपवाया। 1896 में विशंभरनाथ शर्मा ने 'रसायन संग्रह' नामक पुस्तक कलकत्ता से प्रकाशित की। 1862 में अलीगढ़ में साइंटिफिक सोसायटी नामक संस्था बनी जिसका कार्य यूरोपीय विज्ञान साहित्य को यूरोपीय से हिन्दी, उर्दू और फारसी में अनुवाद करना था। 1898 में काशी की नागरी प्रचारिणी सभा ने विज्ञान के विविध विषयों पर वैज्ञानिक शब्द निर्माण के लिए एक समिति बनाई। इससे विज्ञान साहित्य के सृजन में काफी मदद मिली। 1852 में आगरा से 'बुद्धिप्रकाश' नामक पत्र शुरू हुआ जिसमें अन्य विषयों के अलावा विज्ञान पर भी काफी रोचक सामग्री प्रकाशित होती थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 1873 में 'हरिश्चंद्र मैगजीन' शुरू की जिसका नाम बाद में 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' हो गया था। इसमें भी तमाम वैज्ञानिक

जानकारियां मिलती थीं। 1877 में प्रयाग से 'हिन्दी प्रदीप' निकाला गया, जिसमें भी विज्ञान से जुड़े समाचार छपते थे। 1854 में कलकत्ता से प्रकाशित 'समाचार सुधावर्षण' को हिन्दी का प्रथम दैनिक पत्र होने का गौरव है। लेकिन 1885 में कालाकांकर, प्रतापगढ़ यूपी के राजा रामपाल सिंह ने हिन्दी दैनिक 'हिन्दोस्तान' को प्रकाशित किया था। इसका संपादन मालवीय जी ने किया था। इसमें विशुद्ध विज्ञान तो नहीं छपता था, लेकिन ग्रामीण, शारीरिक उन्नति और शैक्षिक विषयों का समावेश था। 1879 में मेवाड़ से प्रकाशित 'सज्जनकीर्ति सुधाकर' में पुरातत्व विषयों पर लेख छपते थे। 1871 में 'अल्मोड़ा अखबार' निकाला गया जिसमें वन प्रबंध, बाल शिक्षा और मद्य निषेध पर खबरें छपा करती थीं। अलीगढ़ से 1877 में बाबू तोताराम ने साप्ताहिक 'भारत बंधु' नामक पत्र का प्रकाश आरंभ किया, जिसमें विज्ञान की भरपूर जानकारियां छपती थीं। इसके मास्टहेड में लिखा रहता था-ए वीकली जर्नल ऑफ लिटरेचर, साइंस न्यूज एंड पॉलिटिक्स। 1900 में सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन में बाबू श्यामसुन्दर दास फोटोग्राफी पर एक लेख लिखा। इसी अंक में कई एक विज्ञान के लेख प्रकाशित हुए। 1866 में अलीगढ़ से 'अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गजट' नामक साप्ताहिक पत्र शुरू किया गया, जिसमें कृषि विज्ञान पर काफी सामग्री छपती थी। 1882 में पं लक्ष्मीशंकर मिश्र ने 'काशी पत्रिका' का प्रकाशन शुरू किया। इसमें भी हिन्दी विज्ञान के क्षेत्र काफी कार्य हुआ। लेकिन सही मायनों में संपूर्ण हिन्दी विज्ञान पत्रिका का स्वप्न बीसवीं सदी के आरंभ में 1915 में विज्ञान परिषद प्रयाग से शुरू की गई पत्रिका 'विज्ञान' के प्रकाशन से पूरा हो सका।

स्वतंत्रता पूर्व बीसवीं शताब्दी: सबसे पहले 1900 में गुरुकुल कांगड़ी ने हिन्दी में विज्ञान लेखन को अपनाया। इसमें गणित, रसायन, भौतिकी और चिकित्सा आदि विधाओं पर लेखनी चलाई गई। वहीं काशी की नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा विज्ञान की कई पुस्तकें लिखी गईं। इसमें महेश शरण द्वारा लिखी रसायन शास्त्र (1909), विद्युत शास्त्र (1912), गुणात्मक विश्लेषण (1919) और गोवर्धन द्वारा भौतिकी (1910) लिखी गई। 1910 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने हिन्दी विज्ञान साहित्य में खासा काम किया। 1913 में प्रयाग में विज्ञान परिषद की स्थापना हुई। 1916-1932 में नगेन्द्र नाथ बसु ने हिन्दी विश्वकोश प्रकाशित किया। 1925 में बनारस हिन्दू विवि ने वैज्ञानिक शब्दकोश प्रकाशित किया। 1930-31 में प्रयाग की विज्ञान परिषद ने 4821 शब्दों का विज्ञान कोश बनाया। 1939 में कृष्णबल्लभ द्विवेदी के संचालन में ज्ञान-विज्ञान को हिन्दी विश्व भारती नामक विश्वकोश बनाया गया। हिन्दी का यह पहला संदर्भ ग्रंथ है। हिन्दी वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रकाशन निर्देशिका 1966 के अनुसार स्वतंत्रता पूर्व बीसवीं शताब्दी में अनेक विज्ञान की पुस्तकें लिखी गईं। 1901 में हेमचन्द्र मिश्र की कृषि दर्शन कलकत्ता से छपी। 1921 में हिन्दी साहित्य सभा राजपूताना ने व्यावहारिक विज्ञान प्रकाशित की। विज्ञान की विचित्र

कहानी 1941 में कलकत्ता से छपी। 1925 में सृष्टि जीव विज्ञान, श्री सत्यपाल द्वारा लिखी गई। वैसे राहुल सांकृत्यान द्वारा लिखी गई पुस्तक विश्व विज्ञान, हिन्दी में लोक विज्ञान की आरंभिक पुस्तक मानी जाती है।

1928 में इंडियन प्रेस इलाहाबाद से प्राकृतिक विज्ञान छपी। 1942 में महाजनी गणित कलकत्ता से छपी। रवीन्द्र नाथ ठाकुर की पुस्तक 'विश्व परिचय' का हिन्दी अनुवाद डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने किया, जो 1947 में इंडियन प्रेस इलाहाबाद से प्रकाशित किया गया। इसके अलावा इंडियन प्रेस इलाहाबाद ने कई विज्ञान की पुस्तकें प्रकाशित कीं। इनमें 1934 में होम्योपैथिक की मैटेरिया मेडिका, 1944 में श्रीनाथ सिंह द्वारा लिखित आविष्कारों की कथा छापी। 1919 में हरिद्वार से गुणात्मक विश्लेषण का प्रकाशन किया गया। 1940 में कृष्णकांत गुप्ता की जीव की कहानी वैज्ञानिक साहित्य मंदिर इलाहाबाद ने प्रकाशित की। एलोपैथिक सार संग्रह झांसी से प्रकाशित हुई। परमाणु बम 1947 में वाराणसी से छापा गया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दुस्तान एकेडमी और विज्ञान परिषद प्रयाग, इन चार संस्थाओं की आरंभिक विज्ञान साहित्य के निर्माण में उल्लेखनीय भूमिका रही।

1913 में अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन ने दिल्ली से मासिक आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका आरंभ की। इसे हिन्दी की प्रथम विज्ञान पत्रिका माना जाता है। पर पहली विज्ञान पत्रिका होने का श्रेय 'विज्ञान' को जाता है जो विज्ञान परिषद प्रयाग से 1915 में आरंभ की गई। इसके बाद 1924 में धन्वंतरि अलीगढ़ से, 1946 में भोपाल से कृषि जगत, 1947 में इंडियन मिनरल्स प्रकाशित हुई। 1942 में झांसी से प्रकाशित दैनिक जागरण में भी विज्ञान लेख छपते थे। 1947 में कानपुर से पूर्णचंद्र गुप्त ने दैनिक जागरण का प्रकाशन किया, जिसमें विज्ञान लेखों का समायोजन किया जाता था। 1934 में बड़ौदा व इंदौर से प्रकाशित हिन्दी शिक्षण पत्रिका में विज्ञान लेख छपते थे। 1919 में नागपुर से उद्यम मासिक पत्रिका निकाली गई। जिसमें प्रचुर विज्ञान सामग्री छपती थी। 1914 में विद्यार्थी पत्रिका में विज्ञान लेखों का समायोजन किया जाता था। स्वतंत्रता पूर्व लगभग 250 हिन्दी विज्ञान की पुस्तकें प्रकाशित की गई। इससे पूरे देश में हिन्दी विज्ञान लेखन में एक नया वातावरण तैयार हो सका।

स्वतंत्रता के बाद विज्ञान लेखन: स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, राजकमल प्रकाशन, राजपाल एंड संस, आत्माराम एंड संस, तक्षशिला प्रकाशन, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, हिन्दी समिति उप्र, देहाती पुस्तक भंडार, किताब महल, सस्ता साहित्य मंडल, सर्वोदय प्रकाशन, ग्रामोदय प्रकाशन आदि ने इस दिशा में उल्लेखनीय पहल की है। 1948 में इलाहाबाद से साइंस की कहानी और प्रारंभिक आकलन, आकाश से झांकी: लेखक देवनाथ उपाध्याय तथा 1949 में इलाहाबाद से ही गृह

नक्षत्र, इसी वर्ष लखनऊ से प्रायोगिक रसायन तथा 1959 में नई दिल्ली से आविष्कार कथा प्रकाशित की है। 1948 में देहाती पुस्तक भंडार ने लोकोपयोगी विज्ञान और तकनीकी पर पुस्तकें शुरू कीं और रेडियो सर्विसिंग पुस्तक भी छापी। सीएसआईआर की हिन्दी वैज्ञानिक प्रकाशन निदेशिका के अनुसार - वर्ष 1966 तक विविध विज्ञान विषयों पर 2,256 पुस्तकें छप चुकी थीं। इसके अलावा प्रांतीय स्तरों पर ग्रंथ अकादमियों ने काफी विज्ञान साहित्य रचा। 1960 में वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की गई, जिसने कई प्रामाणिक शब्दावलियां प्रकाशित कीं। 1966 से 1980 के बीच विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर 2,870 किताबें लिखीं गईं, तथा 474 किताबों का अनुवाद कराया गया। ऐसे में कुल 3,344 पुस्तकों का प्रकाशन किया गया। 1966 से पहले प्रकाशित किताबों को जोड़कर कुल 5,600 किताबों को छापा गया।

पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन: आजादी के बाद देश में कई एक हिन्दी पत्रिकाओं का प्रकाशन किया गया। 1934 में प्रो फूलदेव सहाय वर्मा ने 'गंगा' नामक पत्रिका में विज्ञान का पूरा अंक निकाला। 1948 में लखनऊ से प्राकृतिक जीवन पत्रिका निकली तो इसी साल पटना से 'आयुर्वेद' पत्रिका भी सामने आई। होमियोपैथिक संदेश 1948 में दिल्ली से छपी। 1948 में आईसीएआर ने खेती पत्रिका आरंभ की। मध्यप्रदेश में कृषि विभाग ने 1948 में किसानी समाचार, 1950 में लखनऊ से कृषि और पशुपालन, 1952 में विस्तार निदेशालय दिल्ली से उन्नत कृषि, फार्म सूचना एकक से गोसंवर्द्धन आदि पत्रिकाएं निकलीं।

1952 में वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद ने विज्ञान प्रगति का ऐतिहासिक प्रकाशन शुरू किया। 1964 में इसका कायाकल्प करके इसे लोक विज्ञान पत्रिका बना दिया गया। 1960 में विज्ञान समिति उदयपुर ने डॉ. केएल कोठारी के संपादकत्व में 'लोक विज्ञान' मासिक पत्रिका निकाली। इसके बाद 1961 में दो विज्ञान पत्रिकाएं निकाली गईं जिसमें 'विज्ञान लोक' के संपादक शंकर मेहरा (आगरा) बने और विज्ञान जगत जिसके संपादक आरडी विद्यार्थी (इलाहाबाद) रहे। दोनों में खूब सारी विज्ञान सामग्री छपती थी। 'विज्ञान लोक' का प्रकाशन 15 साल तक चला। वर्ष 1964 में सूरज कुमार पापा के संपादन में जयपुर से 'वैज्ञानिक बालक' पत्रिका निकाली। 1969 में भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र के वैज्ञानिकों ने विज्ञान साहित्य परिषद का गठन किया और 'वैज्ञानिक' नामक पत्रिका निकाली। 1971 में राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम ने नई दिल्ली से 'आविष्कार' पत्रिका निकाली जिसके संपादक बदीउद्दीन खां थे। 1975 में नैनीताल से 'विज्ञान डाइजेस्ट' का मासिक प्रकाशन आरंभ किया। 1979 में यूपी के महोबा से विज्ञान परिषद द्वारा 'ज्ञान-विज्ञान' मासिक पत्रिका का प्रकाशन मनोज कुमार पटैरिया

के संपादकत्व में आरंभ हो सका। 1978 में इलाहाबाद से शुकदेव प्रसाद ने विज्ञान भारती त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। 1979 में भारतीय विज्ञान संस्थान ने 'विज्ञान परिचय' नामक त्रैमासिकी आरंभ की। 1981 में विज्ञानपुरी त्रैमासिक, ग्रामशिल्प त्रैमासिक और जूनियर साइंस डाइजेस्ट मासिक पत्रिका निकाली गई। विज्ञानपुरी के संपादक मनोज पटैरिया बने और इस पत्रिका ने विज्ञान के क्षेत्र में फैली गड़बड़ियों पर भी कलम चलाई। कई विधाओं में विज्ञान सामग्री यह पत्रिका परोसती थी। ग्राम शिल्प के संपादक देवेन्द्रनाथ भटनागर बने। इसे राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम द्वारा निकाला गया। 1982 में बैरकपुर पं बंगाल से 'विज्ञानदूत' पत्रिका शुरू की गई। इस मासिक पत्रिका के संपादक डॉ गोविंद प्रसाद यादव थे।

1983 में डॉ ओमप्रकाश शर्मा ने 'विज्ञान प्रवाह' नामक मासिक पत्रिका आरंभ की, इसके संपादक लीलाधर काला थे। 1985 में यह पत्रिका बंद भी हो गई। 1985 में डीएसटी के सहयोग से भोपाल की संस्था एकलव्य ने 'चकमक' नामक पत्रिका निकाली। इसमें बच्चों के लिए काफी सामग्री छापी गई। 1986 में प्रेमचंद्र श्रीवास्तव के संपादकत्व में 'विज्ञान वीथिका' द्वैमासिक पत्रिका इलाहाबाद से निकाली गई। 1986 में मुंबई से ही बाल विज्ञान पत्रिका 'साइफन' निकाली गई। 1985 में ब्रिटिश दूतावास के सहयोग से 'ब्रिटिश वैज्ञानिक एवं आर्थिक समीक्षा' पत्रिका निकाली गई। आईआईटी दिल्ली ने 1987 में अर्द्धवार्षिक पत्रिका 'जिज्ञासा' आरंभ की। इसके संपादक प्रो वंश बहादुर त्रिपाठी है। बंगलौर से 'स्पेस इंडिया' का प्रकाशन भी इसी साल शुरू किया गया। 1988 में 'विज्ञान गंगा' का प्रकाशन भगवान दास पटैरिया के सौजन्य से हुआ। इसे केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद ने निकाला। 1988 में ही वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने 'विज्ञान गरिमा सिंधु' का प्रकाशन किया। इसके संपादक प्रेमानंद चंदोला हैं। इस तरह समय-समय पर हिन्दी में विज्ञान पत्रिकाएं प्रकाशित होती रहीं और अब भी निकल रही हैं जिससे लोगों को विज्ञान की सूचनाएं और जानकारियां बराबर मिल रही हैं।

1.5 विज्ञान रिपोर्टिंग

भारत में विज्ञान समाचारों की रिपोर्टिंग की विधिवत् शुरुआत वर्ष 1940 में शुरू हुई। दिनोंदिन विज्ञान का विस्तार जीवन विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, संचार, इलेक्ट्रॉनिकी, अंतरिक्ष, परमाणु ऊर्जा आदि क्षेत्रों के माध्यम से हो रहा है। इसकी जानकारी आम आदमी को मीडिया के माध्यम से होती है। मसलन पत्रकार इन क्षेत्रों की खबरों, समाचारों और जानकारियों को आलेखबद्ध करके उसे या तो अखबार/मैगजीन में प्रकाशित करता है, या फिर उसे टीवी/रेडियो चैनल से प्रसारित कर आम जनमानस

तक पहुंचाता है। दरअसल, विकास के परिप्रेक्ष्य में देश की जनता यह जानना चाहती है कि आखिर हमारे द्वारा टैक्स के रूप में दिए गए पैसों का प्रयोग देश की सरकार किस प्रकार कर रही है और हमारे वैज्ञानिक विकास में उसका कितना योगदान हो रहा है।

विज्ञान रिपोर्टिंग: विज्ञान के क्षेत्र में प्रत्येक गतिविधि की जानकारी एकत्र कर उस पर रिपोर्ट तैयार करना या रिपोर्ट पर आधारित समाचार कथा तैयार करना विज्ञान रिपोर्टिंग के अंतर्गत आता है। हां एक खास बात और कि विज्ञान रिपोर्टिंग में उन पांच ककारों (क्या, कहां, कौन, कब, कैसे) की आवश्यकता नहीं होती है जिनकी सामान्य रिपोर्टिंग में मदद ली जाती है।

किसी भी तरह की पत्रकारिता के लिए स्रोतों की जरूरत होती है। विज्ञान रिपोर्टिंग के लिए प्रारंभिक सूचना का स्रोत पत्र-पत्रिकाएं ही होती हैं। अंतरराष्ट्रीय विज्ञान पत्रिकाएं साइंटिफिक अमेरिकन, साइंस, नेचर, वर्ल्ड साइंटिस्ट, लैसेंट, न्यूसाइंटिस्ट, डिस्कवर आदि अनेक विज्ञान पत्रिकाएं काफी उपयोगी हैं। साइंटिफिक अमेरिकन का भारत संस्करण भी 'विज्ञान' के नाम से निकलने लगा।

वैज्ञानिक सूचनाओं का दूसरा स्रोत संगोष्ठी, व्याख्यान या पत्रकार सम्मेलन हो सकता है। इसमें विज्ञान से जुड़ी सूचनाओं की जानकारी के अलावा अन्य जरूरी सूचनाएं भी मुहैया कराई जाती हैं। इसके अलावा सेमिनार किट या सेमिनार बैग में संगोष्ठी से जुड़ी सारी सामग्री मौजूद रहती है जिसके आधार पर रिपोर्ट तैयार करने में मदद मिलती है। प्रेस वार्ता में भी विशेषज्ञों से प्रश्न पूछकर उस पर रिपोर्ट बनाई जा सकती है। इसके अलावा वैज्ञानिकों से बातचीत पर आधारित समाचार भी बनेंगे।

विज्ञान सूचनाओं का तीसरा और महत्वपूर्ण साधन है वैज्ञानिक संस्थानों का भ्रमण करना। यहां पर शोधकर्ता अपना शोध कार्य कर रहे होते हैं। विज्ञान पत्रकार का दायित्व है कि वह इन लोगों से बातचीत कर खबर बना सकता है। कभी-कभी गोपनीयता की वजह से पत्रकारों को कोई भी जानकारी नहीं मिल पाती, लेकिन सरलता और सहजता से वैज्ञानिक सारी जानकारियां पत्रकार से शेयर कर लेता है। इसके अलावा विज्ञान पत्रकार को वैज्ञानिक क्षेत्र से निकलने वाली नियमित निविदाएं, सूचनाएं, प्रेस विज्ञप्तियों और क्रय आदेशों तथा विज्ञापन आदि की जानकारी लेते रहना चाहिए। इससे भी कई खबरें निकलकर सामने आ सकती हैं। इसके अलावा वैज्ञानिक संस्थानों ओर सरकारी विज्ञान विषयक विभागों की वार्षिक रिपोर्ट, प्रचार सामाग्री, पोस्टर, फोल्डर, चार्ट, पुस्तिका, विवरणिका के अलावा रेडियो और दूरदर्शन के विज्ञान कार्यक्रमों से भी महत्वपूर्ण सूत्र हाथ लग सकते हैं, जिससे आगे चलकर काफी प्रभावी विज्ञान रिपोर्टिंग तैयार हो सकती है।

उदाहरण: अमेरिका में एक विज्ञान पत्रकार ने सेना द्वारा जारी की गई दो निविदाएं पढ़ीं। उसने कुछ दिन बाद एक और निविदा पढ़ी जो पहली दोनों निविदाओं से संपर्क खाती थी। पहली दो निविदाएं दो ऐसी गैसों के लिए थीं जिनके मिलने पर विस्फोट हो सकता था। और तीसरी निविदा ऐसे आवरण की थी जो विस्फोट को रोकने में सहायक थी। पत्रकार ने तीनों निविदाओं को मिलाकर एक जोरदार रिपोर्ट तैयार की जिसने पूरे विश्व समुदाय को चकित कर दिया। इसी प्रकार पाकिस्तान के परमाणु कार्यक्रम की जानकारी उसके द्वारा खरीद किए जाने वाले आर्डर से पता चली। दरअसल पाक सरकार ने एक मिश्रधातु और एक फ्रीक्वेन्सी कन्वर्टर की खरीद के लिए आर्डर दिया था। इसी से उसकी मंशा लीक हो गई।

लखनऊ में आईटीआरसी (औद्धोगिक विष विज्ञान अनुसंधान केन्द्र) में एक कार्यक्रम के दौरान कुछ वैज्ञानिकों ने एक दूसरे से पूछा कि क्या वे कुंभ में जाना चाहते हैं। विज्ञान पत्रकार का माथा ठनका कि वे कुंभ में इलाहाबाद क्यों जाना चाहते हैं। बाद में पता चला कि आईटीआरसी के वैज्ञानिकों का दल कुंभ में हवा और पानी में गंदगी की जांच कर रहा है। साथ ही खाद्य पदार्थों में प्रदूषण की जांच के लिए वैज्ञानिक अपनी परीक्षण किट सहित मेला स्थल पर मौजूद हैं। हिन्दुस्तान के विज्ञान पत्रकार सुबोध कुमार ने यह खबर निकाली जो स्कूप साबित हुई।

विज्ञान रिपोर्टिंग की कठिनाइयां और समाधान- विज्ञान की रिपोर्टिंग में कई प्रकार की दिक्कतें सामने आ सकती है।, लेकिन विज्ञान पत्रकार को रिपोर्टिंग के वक्त धैर्य रखना होगा और निम्न बिंदुओं पर ध्यान देना होगा-

1. विज्ञान पत्रकार किसी भी रिपोर्ट को भ्रामक तथ्यों के आधार पर न प्रकाशित करे। वर्ना उसे आगे रिपोर्टिंग में अपना सूत्र खो देना पड़ेगा और उसकी विश्वसनीयता पर प्रश्नचिन्ह लग जाएगा।

2. विज्ञान पत्रकार की गलती से वैज्ञानिक के कामकाज पर असर पड़ेगा और वह अपना कार्य उन्मुक्त ढंग से नहीं कर पाएगा।

3. जल्दबाजी के चक्कर में अधकचरी विज्ञान रिपोर्ट को प्रकाशित करना, लोगों को बेवकूफ बनाने जैसा होगा और ऐसे अपराध की सजा बहुत कड़ी होती है।

4. वैज्ञानिकों के दावों के प्रति विज्ञान पत्रकार को सचेत रहना होगा और जब तक वह उन्हें पुख्ता न कर ले तब तक अपनी रिपोर्ट में न छापे।

5. देश के प्रमुख वैज्ञानिक संस्थानों से प्राप्त रिपोर्ट को बिना किसी अनुमति के प्रकाशित कर देना पत्रकार को सेंसरशिप के दायरे में खड़ा कर सकता है। ऐसे में बिना नीतिगत पॉलिसी का अवलोकन किए खबर छापने से बचना होगा।

6. विज्ञान पत्रकारों को जागरूक होकर वैज्ञानिक संस्थानों के प्रमुखों से वार्ता कर खबर पर पकड़ बनानी चाहिए। कभी-कभी उन्हें अपेक्षित सूचना नहीं मिल पाती लिहाजा संस्थानों के सूचना एवं जनसंपर्क विभाग से समन्वय करना अपेक्षित होगा।

7. अंग्रेजी में जो वैज्ञानिक सूचनाएं दी जाती है उनके अनुवाद में दिक्कतें आती हैं, लिहाजा लोगों तक समय से सूचना नहीं पहुंच पाती है। ऐसे में जब तक विज्ञान का साहित्य भरपूर मात्रा में हिन्दी में नहीं उपलब्ध होगा तब तक दिक्कतें होना स्वाभाविक है।

हिन्दी में विज्ञान लेखन:

इसके लिए चार प्रमुख तत्वों पर ध्यान देना होगा-हिन्दी भाषा का ज्ञान, लेखन क्षमता और वैज्ञानिक जानकारी तथा हिन्दी में विज्ञान का प्रचार-प्रसार की तीव्र अभिलाषा। अच्छे लेखन के लिए कुछ प्रमुख सूत्र बताए गए हैं-

पहला, पाठक को केन्द्र में रखकर लेखन कार्य किया जाए। दूसरा, एक बात एक ही बार लिखी जाए, यानी रिपीटीशन न किया जाए। तीसरा, लिखने के बाद उसे पढ़ा जाए और गलतियां सुधार दी जाएं। कुछ अन्य बिंदु भी महत्वपूर्ण हैं।

1. विज्ञान लेखन किसके लिए किया जाना है और किस विधा के माध्यम से यह लोगों तक सहजता से पहुंच सकता है।

2. लिखित विज्ञान सामग्री को परोसने का एक कच्चा खाका बनाना पड़ सकता है, जिससे शीर्षक और उपशीर्षक स्पष्ट हो सकें और लोगों के समझ में जानकारियां आ सकें।

3. विज्ञान की सामग्री को पढ़ना, देखना और समझना तथा उसे सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने से ही लेखन प्रभावकारी हो सकेगा।

4. विज्ञान सामग्री को बोझिल और नीरस न बनाएं बल्कि उसकी जानकारियों को रुचिकर तथा आसान ढंग से परोसा जाए जिससे लोगों को भार न लगे। भाषा की जटिलता से बचें तथा आंकड़ेबाजी के फेर में

न पड़ें। अर्थपूर्ण आंकड़ों पर जोर रहना चाहिए मसलन दुर्घटना या बाढ़ से मरने वालों की संख्या लोग जानना चाहते हैं ऐसे में उचित संख्या पर ज्यादा जोर होना चाहिए।

5. विज्ञान लेखन में प्रामाणिकता पर ज्यादा जार होना चाहिए। अप्रामाणिक और अपुष्ट लेखन में लोगों को भ्रम तो होगा ही लेखक की गरिमा पर भी चोट लगेगी। सुनी-सुनाई बातों को नजरअंदाज करें।

6. नवांकुर या नए लेखक विज्ञान लेखन करते समय कुछ बातों का ध्यान रखें जैसे- संक्षेप में लिखें, लेखक का औचित्य स्पष्ट हो, लेखक की योग्यता उपयुक्त हो। रचना की संक्षिप्त रूपरेखा स्पष्ट करें। इसके लिए सामग्री और स्रोत कैसे जुटाएंगे, वह भी बताएं तथा रचना कार्य में कितना समय लगेगा, इसे भी लिखें।

1.6 विज्ञान पत्रकारिता : विभिन्न विधाएं

विज्ञान पत्रकारिता के अंतर्गत विभिन्न विधाओं के तहत कार्य किया जा सकता है। इसमें विज्ञान समाचारों के अलावा रिपोर्ताज और लेख, विज्ञान कथाएं, उपन्यास और कविताएं शामिल हैं। विज्ञान नाटक और रूपक, विज्ञान चित्र कथाएं, व्यंग्य चित्र और हास्य व्यंग्य के अलावा हिन्दी में वैज्ञानिक समीक्षाएं शामिल हैं। वैज्ञानिक साक्षात्कार, भेंटवार्ता के अलावा परिचर्चाएं भी इसके तहत कवर की जाती हैं।

समाचार और विज्ञान: समाचार शीघ्रता से लिखा जाने वाला इतिहास है। जेजे सिंडलर के अनुसार पर्याप्त संख्या में मनुष्य जिसे जानना चाहे वह समाचार है। पर शर्त यह है कि वह सुरुचि तथा प्रतिष्ठा के नियमों का उल्लंघन न करे। वहीं विज्ञान समाचार वह वैज्ञानिक जानकारी है जिसके बारे में पाठक उसके पहले न जानते हों, विज्ञान संवाददाता को हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि विज्ञान समाचार, विज्ञान व प्रोद्यौगिकी की जानकारी देता है न कि वैज्ञानिक की। वैज्ञानिकों के भाषणों, वक्तव्यों व अन्य कार्यक्रमों पर बहुत से रिपोर्ताज विज्ञान के नाम पर छपते रहते हैं वे वास्तव में विज्ञान समाचार नहीं कहे जा सकते हैं। नार्थ, ईस्ट, वेस्ट व साउथ यानी चारों दिशाओं से कहीं भी विज्ञान के किसी क्षेत्र में जो घटना या दुर्घटना होती है, वह विज्ञान समाचार है। विज्ञान के क्षेत्र में कोई भी खोज, अनुसंधान या आविष्कार विज्ञान समाचार है। अनुसंधान की शुरुआत, प्रगति और उसके परिणाम भी विज्ञान समाचार हैं। अंतरिक्ष के लिए तैयार किए जाने वाले उपग्रह भी विज्ञान समाचार हैं।

कई सामान्य समाचारों में भी वैज्ञानिकता का पुट देकर उन्हें भी विज्ञान समाचार बनाया जा सकता है। जैसे पुल का निर्माण और उससे जुड़ी विशेष स्थितियां। विज्ञान समाचार प्रायः संक्षिप्त और गठे होने चाहिए। ये किसी महत्वपूर्ण वैज्ञानिक घटना से आरंभ होते हैं और बाद में घटना का संक्षिप्त वर्णन भी दिया जाता है। अगर पहले से कोई संगत जानकारी मौजूद है तो उसे भी दिया जाता है। विज्ञान समाचारों में उपयुक्त शीर्षक भी दिया जाता है। बड़े समाचार में तो उपशीर्षक भी दिया जाता है। वेस्टली ने शीर्षक की चार खूबियां भी बताई हैं-शीर्षक एकदम स्पष्ट व अर्थपूर्ण हो। उपयुक्त और जानदार सरल शब्दों में लिखा जाए, समाचार के प्रमुख तथ्यों पर आधारित हो और समाचार का अच्छे से अच्छा संक्षिप्त सारांश दे। विज्ञान समाचारों को भी सुर्खियों में स्थान मिलना चाहिए, क्योंकि राजनीतिक और अपराध समाचारों के बीच में विज्ञान समाचार दब जाते हैं।

वैज्ञानिक रिपोर्ताज: वैज्ञानिक समाचार रूपक और रिपोर्ताज में कोई विशेष अंतर नहीं जान पड़ता। रूपक में विषय के विभिन्न पक्षों का विस्तृत विश्लेषण किया जाता है जो कि रिपोर्ताज में संभव नहीं है। रिपोर्ताज पूर्णरूप से समाचार प्रधान होता है और समाचार उद्गम के इर्द-गिर्द घूमता रहता है। इस तरह से समाचारों का विस्तृत प्रस्तुतिकरण ही रिपोर्ताज कहलाता है। वैज्ञानिक रिपोर्ताज प्रायः विज्ञान संगोष्ठी, पुरस्कार, उद्घाटन, विमोचन समारोह या किसी वैज्ञानिक घटना पर तैयार किए जा सकते हैं। रिपोर्ताज के लिए कोई निर्धारित फार्मूला नहीं है, लेकिन लेखक को इसके सभी पहलुओं पर नजर रखनी होगी। रिपोर्ताज के लिए उपयुक्त विषय पर विशेषज्ञों से वार्तालाप कर जानकारी दी जाती है। व्यवस्थागत समालोचना भी रिपोर्ताज में की जाती है। कार्यक्रम के दौरान घटित झलकियां भी रिपोर्ताज में कवर की जाती हैं, जिससे उसमें रोचकता बढ़ जाती है। समाचार और रिपोर्ताज में गहराई से देखने पर ही अंतर पता चलता है कि रिपोर्ताज समाचार के अलावा भी बहुत कुछ है जबकि समाचार केवल समाचार होता है। सरस विज्ञान पत्रकारिता के लिए रिपोर्ताज एक स्वस्थ परंपरा है और पाठक इसे काफी पसंद करेंगे।

वैज्ञानिक लेख: विज्ञान के किसी पहलू पर गहराई से जानकारी देने वाले गद्य लेख को विज्ञान लेख की परंपरा में शामिल कर सकते हैं। मोटे तौर पर इन्हें दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है-शोध लेख व समीक्षा लेख और लोकप्रिय लेख। वैज्ञानिकों द्वारा किए गए अनुसंधान कार्य का ब्योरा देने वाला लेख शोध लेख या शोध पत्र कहलाता है। इसे तकनीकी पत्र भी कहा जाता है। इसके लेखक वे व्यक्ति होते हैं जो अनुसंधान कार्य में सहभागी होते हैं। इसके अलावा समीक्षा लेख (रिव्यू आर्टिकिल) किसी अनुसंधान कार्य की वैज्ञानिक समीक्षा होती है और उस पर अन्य कार्यों की ओर भी संकेत होते हैं। ये लेख प्रायः

विशेषज्ञों द्वारा लिखे जाते हैं। शोध लेख सीधे और सपाट लिखे जाते हैं। इनमें नाटकीयता भरे शीर्षक नहीं लिखे जाते हैं।

शोध पत्र की शुरुआत में ही सारांश दिया जाता है। इसके अलावा इसमें प्रस्तावना, प्रयोग की प्रकृति, सामग्री और सिद्धांत, प्राप्त परिणाम, विवेचना, उपसंहार, कृतज्ञता ज्ञापन, संदर्भ सूत्र, उदाहरण, फुटनोट, सारणी, रेखाचित्र और फोटोग्राफ आदि शामिल किए जाते हैं। लोकप्रिय विज्ञान लेख जो साधारण पढ़े-लिखे पाठकों, विद्यार्थियों, कारीगरों तथा आम जनता के लिए लिखे जाते हैं, जबकि शोध लेख या समीक्षा लेख वैज्ञानिकों या अनुसंधानकर्ताओं के प्रयोग के लिए होते हैं और इसीलिए वे गूढ़ वैज्ञानिक भाषा में लिखे होते हैं। जबकि लोकप्रिय लेख, सरल और आम बोलचाल की भाषा में होते हैं। इनका उद्देश्य विज्ञान की जटिलताओं को सरल बनाकर जनसामान्य के लिए रोचक तरीके से पेश करना हैं।

विषयपरक लेख: ऐसे लेख जो किसी व्यावहारोपयोगी वैज्ञानिक अनुसंधान या आविष्कार के वर्णन के रूप में लिखे जाते हैं। इनका विषय विज्ञान ओर प्रौद्योगिकी की किसी भी शाखा के तकनीकी पक्ष से संबंधित हो सकता है। इनका विषय जनरूचि का कोई पुराना या नया विषय हो सकता है। जैसे-बायोटेक्नोलॉजी, उपग्रह, परिवहन, कार्बन, प्रशीतन, परिवहन तंत्र आदि। ऐसे लेखों में पाठकों को किसी नए विज्ञान समाचार से अवगत कराना है, ताकि पाठक उसके बारे में और अधिक जानना चाहें। यह भी बताना जरूरी है कि लेख में वर्णित विज्ञान लोगों को किस तरह से प्रभावित करेगा। उसके सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव क्या होंगे, इसकी भी चर्चा आगे की जाती है। विशेष जानकारी वाले लेखों को बाक्स में देते हैं और उनमें ग्राफ तथा चित्रों का प्रयोग भी किया जाता है। वैज्ञानिक उपकरणों, विधियों, कार्यों आदि पर लिखे जाने वाले लेख भी इसी श्रेणी में आते हैं। विज्ञान लेखन की इस सशक्त विधा का प्रयोग आज काफी हो रहा है।

विचारपूर्ण लेख: ऐसे लेख विज्ञान के तकनीकी पक्ष पर कम उसके सहयोगी पक्ष पर ज्यादा आधारित होते हैं। इनमें वैज्ञानिक व्याख्यानों, वक्तव्यों, टिप्पणियों का समावेश होता है। जैसे-वन संरक्षण की जरूरत, विज्ञान शिक्षा की दिशा, प्रतिभा पलायन, विज्ञान का प्रभाव, वैज्ञानिक अभिरूचि आदि। इनमें योजनाओं का ब्योरा होता है जबकि विज्ञान गौण होता है।

खोजपूर्ण लेख - खोजी विज्ञान पत्रकार का कार्य है कि वह विज्ञान के उन क्षेत्रों में हाथ डाले जहां ढेरों गड़बड़ियां हैं जैसे-वैज्ञानिकों की आत्महत्या, प्रतिभा दमन, प्रतिभा पलायन, उपकरणों का पैसा न मिलना, अनुसंधान परियोजना का लंबा खिंचना, नियुक्तियों और पदोन्नतियों में धांधली, वैज्ञानिकों को

प्रताड़ना, अरुचिकर कार्य सौंपना, विदेश यात्राओं और पुरस्कारों में गड़बड़ी, बेदम अनुसंधान परियोजनाएं आदि। विज्ञान के क्षेत्र में भला-बुरा जो भी हो रहा है, उसे केवल विज्ञान पत्रकार ही खोजकर सामने ला सकता है।

जीवनी- किसी वैज्ञानिक की जीवनी में केवल उसके जन्म, मरण, शिक्षा, परिवार या व्यवसाय का विवरण देना ही काफी नहीं बल्कि उसके उन पहलुओं पर खास कर फोकस किया जाना चाहिए जिन्हें पढ़कर पाठक आत्मसात कर सके। विज्ञान के क्षेत्र में वह वैज्ञानिक कैसे आगे आया और किस तरीके से आगे बढ़ा इसका वर्णन जरूरी है।

संपादकीय, अग्रलेख व टिप्पणियां- कुछ लोग अग्रलेख को पत्र-पत्रिका का प्रथम लेख मानते हैं तो कुछ प्रमुख लेख को ही अग्रलेख कहते हैं। कुछ लोग पाठकों का नियमित दिशा निर्देशन करने वाले लेख को ही अग्रलेख कहते हैं। अग्रलेख संपादक या संपादकीय कर्मियों द्वारा लिखा जाता है। लगभग सभी समाचार पत्र किसी घटना विशेष पर संपादकीय लिखते हैं। संपादकीय टिप्पणी पत्र-पत्रिका की नीति-रीति स्पष्ट करती है। इसमें भ्रम पैदा करने वाली बातें न लिखी जाएं। बहुत महत्वपूर्ण और लोकहित का विषय ही संपादकीय में उठाना चाहिए। टिप्पणियों को संक्षिपत लिखा जाए और उनका निरर्थक विस्तार न किया जाए।

विशेष लेख-इसे आवरण लेख भी कहा जाता है। इसमें किसी वैज्ञानिक विषय या घटना को लेकर उसके विविध पहलुओं का विश्लेषण किया जाता है। ये लेख तीन से दस पृष्ठों के होते हैं। इनके विषय विस्तार या विशेषता के कारण इसे फीचर लेख भी कहा जाता है। पूरे लेख में कई तरह के लघु लेख समाहित किए जाते हैं। लेख की प्रकृति बहुआयामी होती है।

स्तंभ-पाठकों की रुचियां भिन्न होती हैं, जिसके चलते वे अपनी रुचि की सामग्री को अखबार या पत्रिका में एक निर्धारित स्थान पर पढ़ना चाहते हैं । कुछ पत्र-पत्रिकाएं एक निश्चित शीर्षक के साथ नियमित स्तंभों का प्रकाशन करती हैं। इनमें काफी रोचक सामग्री होती है। हिन्दी अखबारों में विज्ञान, कृषि और स्वास्थ्य विषयों पर अनेक स्तंभ प्रकाशित किए जाते हैं। स्तंभों में प्रकाशित होने वाली सामग्री ज्यादातर बाहर के लेखकों द्वारा प्राप्त होती है। अगर बाहर से सामग्री नहीं मिली तो उसे संपादकीय विभागखुद तैयार करेगा। क्योंकि नियमित स्तंभ न छपने से पाठकों को बेचैनी हो जाती है। इससे अखबार या पत्र-पत्रिका की साख भी खतरे में पड़ जाती है। ऐसे में पत्र-पत्रिका के कर्ताधर्ताओं को सोच समझकर ही कदम उठाने चाहिए।

विज्ञान कथा, उपन्यास और कविताएं- विज्ञान कथाएं समाज में न केवल विज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए बल्कि सामाजिक परिवर्तनों और भविष्य की तस्वीर उतारने में भी उपयोगी हैं। केवल विज्ञान जानने वाले ही इन कथाओं की ओर आकर्षित नहीं हो रहे हैं, विज्ञान न जानने वाले भी इसका मजा ले रहे हैं। विज्ञान कथाओं का सामाजिक उद्देश्य व्यापक एवं उत्तरदायित्वपूर्ण है, क्योंकि इनमें भविष्य का दर्शन किया जा सकता है। विज्ञान कथा लेखन में पृष्ठभूमि और पात्रों के चारित्रिक विकास को लेकर दिक्कतें बनीं रहती हैं।

हिन्दी वैज्ञानिक उपन्यासों की शुरुआत वर्ष 1888 से मानी जाती है,जब देवकी नंदन खत्री ने "चंद्रकांता" लिखा। आधुनिक विज्ञान उपन्यास की शुरुआत वर्ष 1935 से हुई जब डॉ संपूर्णानंद ने "पृथ्वी से सप्तर्षि मंडल" नामक लघु उपन्यास लिखा। 1956 में विज्ञान पत्रकार डॉ ओम प्रकाश शर्मा ने मंगल यात्रा नामक उपन्यास लिखा। निस्संदेह यह हिन्दी का पहला वैज्ञानिक उपन्यास है।

काफी समय पहले मौसम के पूर्वानुमान को लेकर कवि भड्डरी ने कई कविताएं लिखीं। इन्हें हिन्दी में वैज्ञानिक कविता की शुरुआत करने वाला मान सकते हैं। बाद में 1966 में वैज्ञानिक एवं औद्वोगिक अनुसंधान परिषद ने बच्चों के लिए विज्ञान विनोद पुस्तक माला का प्रकाशन किया। इसमें कई विषयों की कुल 13 पुस्तकों का प्रकाशन किया गया। इनमें जल का चमत्कार, वायुयान की कथा, टीवी की कथा आदि शामिल हैं। कविता के माध्यम से बच्चों और नवसाक्षरों में विज्ञान का प्रचार-प्रसार आसानी से किया जाता है। अनेक पत्र-पत्रिकाएं जैसे विज्ञान प्रगति, चकमक, पराग, विज्ञानपुरी में काफी विज्ञान कविताएं छपती रहती हैं। विज्ञान कविताओं के रचनाकारों में अखिलेश कुमार सिंह, रमेश दत्त शर्मा, निशीत अग्निहोत्री व नरविजय सिंह प्रमुख हैं। लखनउ निवासी रसायन शास्त्र में पीजी कर चुके निशीत ने वर्ष 2005 में "विज्ञान चालीसा" लिखी जो विज्ञान प्रगति में प्रकाशित हुई। इसके बाद वर्ष 2007 में उन्होंने "विज्ञान शिक्षारंजन" नामक कविता संकलन लिखा, जिसमें हाईस्कूल स्तर के भौतिक विज्ञान के पाठ शामिल हैं जैसे-कार्य, बल, उर्जा, सामर्थ्य, त्वरण, उत्प्लावन बल आदि। डॉ सुबोध कुमार के संपादन में छपी इस किताब का पेटेंट भी हो चुका है।

विज्ञान नाटक और रूपक-विज्ञान नाटक दरअसल विज्ञान कथा का ही बदला रूप है। विज्ञान कथा में जहां पात्र, घटनाक्रम और देशकाल कथा की निरंतर भाषा का हिस्सा होते हैं वहीं नाटक में देशकाल, घटनाक्रम और अन्य परिस्थितियों का वर्णन कोष्ठक के अंदर करके बातचीत सीधे कथोपकथन द्वारा दर्शाई जाती है। जबकि रूपक दोनों ही प्रकारक के हो सकते हैं, निरंतर भाषाई तथा नाटकीय

कथोपकथन। वैसे नाटक या कथा जहां कल्पना आधारित होते हैं वहीं रूपक किसी भी वास्तविक सच के रोचक उद्घाटन के लिए होता है।

विज्ञान चित्र कथाएं, व्यंग्य चित्र और हास्य व्यंग्य – *विज्ञान चित्र कथा* अंग्रेजी के कॉमिक शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। इसका उद्देश्य लोगों को विशेषकर बच्चों को मनोरंजक ढंग से विज्ञान की जानकारी देना तथा उनमें वैज्ञानिक अभिरुचि विकसित करना। वर्तमान में ये चित्रकथाएं काफी लोकप्रिय हैं। हंसाने और कटाक्ष करने वाले रेखाचित्र *कार्टून* कहलाते हैं । एक व्यंग्य चित्र हजारों शब्दों के बराबर होता है। कार्टून में विज्ञान नामक व्यंग्य चित्र विज्ञान प्रगति में 1977 में छापे गए थे। हालांकि यह विधा विज्ञान में अभी तक पूरी तरह विकसित नहीं हो पाई है।

हास्य व्यंग्य का विज्ञान पत्रकारिता में खास महत्व है। हालांकि इसका प्रचार-प्रसार कम होने से शायद विज्ञान लेखन आज भी उबाउ और नीरस बना हुआ है। वैज्ञानिक पुस्तक समीक्षा से भी पाठकों को अमुक किताब के बारे में काफी कुछ रोचक जानकारियां मिल जाती हैं। इसके अलावा आकाशवाणी से भी विज्ञान की कृति की समीक्षा समय-समय पर प्रसारित होती रहती है।

वैज्ञानिक साक्षात्कार या भेंटवार्ता और परिचर्चा-समाज के लिए हुई बड़ी खोज या किसी आपदा-दुर्घटना के वक्त वैज्ञानिक विषयों पर विशेष टिप्पणी या नई जानकारियों की जरूरत होती है। यह कार्य विज्ञान पत्रकार द्वारा किया जाता है। भाषा की बड़ी भूमिका अहम होती है और विज्ञान पत्रकार वैज्ञानिक से अंग्रेजी में बात करके सभी जरूरी सूचनाएं इकट्ठा करके उन्हें बाद में हिन्दी में लिखकर पाठकों तक पहुंचाता है। पत्रकार को साक्षात्कार के लिए पूरी तैयारी करके जाना चाहिए, जिससे कोई बिंदु छूट न जाए। परिचर्चा में किसी विषय विशेष पर कई विशेषज्ञों द्वारा चर्चा की जाती है। इस विधा में ज्वलंत विषय पर ही विशेषज्ञों के विचार सुनने को मिलते हैं। वैसे विशषज्ञों के आपस में विचार भिन्न हो सकते हैं।

1.7 पर्यावरण से जुड़े मसले और मीडिया

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। पृथ्वी पर जीवों और वनस्पतियों के बीच में हमेशा से ही एक सामंजस्य बना रहा है। अगर कभी हमारे चारों ओर के वातावरण में मौजूद प्राकृतिक चीजों में असंतुलन पैदा हो जाए तो मनुष्य का दायित्व है कि वह उन्हें दूर करने का प्रयास करे। पृथ्वी पर जब हम संपूर्ण पर्यावरण की बात करते हैं तो इसमें जल, जंगल, पहाड़, नदियां, मैदान, जीव, पशु-पक्षी, हवा ही नहीं शामिल होते

हैं बल्कि देश से जुड़े सामाजिक, आर्थिक , सांस्कृतिक और राजनीतिक सरोकारों को भी समाहित किया जाता है। वास्तव में पर्यावरण में शामिल किसी भी घटक का अपने अनुपात से बढ़ जाना ही प्रदूषण को जन्म देता है। आजकल वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण की चिंता सता रही है।

आग लगने से, मोटर-कारों के धुएं से या वातावरण में कार्बन डाइ आक्साइड बढ़ने से वायु प्रदूषण होता है। जल में घरों की गंदगी, मल-मूत्र, रासायनिक खादें आदि पड़ने से प्रदूषण हो जाता है। 80 डेसीबल से ज्यादा तीव्रता होने पर ध्वनि प्रदूषण के दायरे में आ जाएंगे। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के चलते मृदा प्रदूषण लगाता बढ़ता ही जा रहा है। परमाणु कार्यक्रमों के दौरान रेडियोधर्मी पदार्थ वायुमंडल में हवा के संपर्क में आ जाते हैं। इससे पानी में भी खतरे पैदा हो जाते हैं तथा भूमि में भी प्रदूषण अपनी जगह बना लेता है।

पर्यावरण प्रदूषण के कुछ अहम बिंदु हैं-

- गंगा और यमुना समेत देश की कई नदियों में कल-कारखानों और शहरों का गंदा पानी तथा अपशिष्ट पदार्थ लगातार बह रहा है, जिससे जीवनदायिनी नदियों का जीवन भी खतरे में हो गया है।

- नदियों की कटान से जमीन को नुकसान भी होता है और ऐसे अनेक स्थान हैं जहां ऐसा हो रहा है। ब्रह्मपुत्र नदी इसका जीता-जागता प्रमाण है।

- सड़कों पर दौड़ रहे वाहनों से पर्यावरण को नुकसान पहुंच रहा है, क्योंकि धुएं से प्लैटिनम के कण सभी जगह पहुंच रहे हैं।

- रेडियोधर्मी क्रिया-कलापों से वातावरण का तापमान भी बढ़ रहा है जिससे ग्लेशियर भी पिघल रहे हैं और पर्यावरण में एक प्रकार का असंतुलन पनप रहा है।

- समुद्री तटों पर मौजूद वनों का तापमान भी बढ़ता जा रहा है और इससे काफी दिक्कतें आने वाले समय में पैदा होने वाली हैं।

1.8 पर्यावरण पत्रकारिता की चुनौतियां

पर्यावरण संरक्षण की दिशा में पत्रकारिता के लिए लगातार चुनौतियां बढ़ती जा रही हैं। लगभग हर खतरे को लेकर आगाह करने की जरूरत है। चाहे पहाड़ हो या नदी नाले सभी जगह प्रदूषण बढ़ता ही जा रहा है। नदियों के किनारों पर बसे शहरों के हालात भी बिगड़ रहे हैं, ऐसे में पत्रकारिता ही ऐसा माध्यम है जो लोगों को जागरूक और सचेत बना सकती है। अखबार से लेकर टीवी चैनलों और पत्र-पत्रिकाओं ने पर्यावरण को लेकर काफी लंबी मुहिम चलाई है। हालांकि कई स्तरों पर पत्रकारिता के लिए चुनौतियां भी खड़ी होती हैं। एक नजर डालते हैं-

1- स्थानीयता पर ध्यान जरूरी-गैर सरकारी संगठनों की भी मदद से स्थानीय स्तर के छोटे मसलों को निस्तारित करने में मदद मिलेगी। पत्रकारिता में स्थानीयता को ध्यान में रखते हुए पत्रकार को कार्य करना चाहिए।

2-विश्वसनीयता न खोएं- भ्रामक खबरों से पत्रकार को बचना होगा। पत्रकारों को मनोरंजक या सनसनी पैदा करने वाली पत्रकारिता से बचना होगा।

3-पर्यावरण से जुड़े हर पहलू की समीक्षा जरूरी-लोगों को भागीदार बनाने के लिए प्रेरित करना जरूरी होता है, ऐसे में उनकी सक्रियता को उभारना प्रमुख होगा। जानकारी देकर जनता को शिक्षित करना भी सकारात्मक पत्रकारिता माना जाएगा।

4-पत्रकार गहराई में जाकर रिपोर्टिंग करे-उथले ज्ञान पर आधारित खबरें लिखने से जो बात पाठकों या दर्शकों तक पहुंचनी चाहिए वह नहीं पहुंच पाती।

5-पाठकों की इच्छा सर्वोपरि- पत्रकारों को पाठकों की रुचि के हिसाब से कार्य करना होगा। उन्हें इसके लिए जागरूक करना होगा जिससे कि पर्यावरण के मसलों पर ढंग से कार्य हो सके।

6-चटपटा न बनाएं-पर्यावरण के समाचारों में बहुत चटपटा मसाला न लगाकर उनके मूल स्वरूप में ही परोसा जाए। पर्यावरण के मामलों पर लिखने वाले पत्रकारों की खासा कमी है, क्योंकि इसमें कॅरियर की अनिश्चितता है।

7- प्रशिक्षण अनिवार्य हो- पर्यावरण की विशेषज्ञता हासिल करने के लिए सामान्य पत्रकारों को ट्रेनिंग की सुविधा दी जाए। पर्यावरण विषय को सामान्य पत्रकारिता की श्रेणी में ही रखा जाना चाहिए। बहुत विशेषीकृत बनाने के फेर में इसकी रिपोर्ट केवल कुछ खास पाठक वर्ग तक ही सीमित रह जाती है। इससे बचना होगा।

1.9 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. विज्ञान पत्रकारिता क्या है, समझाइए ?

प्रश्न 2. विज्ञान पत्रकारिता के महत्व को स्पष्ट करें?

प्रश्न 3. आजादी के बाद हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता पर लेख लिखें?

प्रश्न 4. हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता की वर्तमान स्थिति पर विचार करें?

प्रश्न 5. अपने शहर की विज्ञान पत्रकारिता पर एक टिप्पणी लिखें?

प्रश्न 6. अपने शहर के पर्यावरण की दशा पर ज्वलंत कमेंट करें।

बहुविकल्पीय प्रश्न:

1. विश्व में पहली विज्ञान पत्रिका प्रकाशित हुई!

अ-फ्रांस ब-जर्मनी स-रूस द-इंग्लैंड

2. छापाखाना इंग्लैड में कब आया!

अ-1476 ब-1488 स-1495 द-1456

3. भारत में पहला छापाखाना कब लगाया गया!

अ-1557 ब-1560 स-1565 द-1570

4. देश का पहला समाचार पत्र प्रकाशित हुआ!

अ-1782 ब-1780 स-1785 द-1798

5. भोपाल में गैस दुर्घटना किस वर्ष हुई थी।

अ-1982 ब-1984 स-1985 द-1986

1.10 सारांश

विज्ञान के क्षेत्र में नित नवीन अनुसंधान हो रहे हैं। आम जन जीवन में विज्ञान का इतना हस्तक्षेप हो गया है कि उसके बिना जीवन की कल्पना भी मुश्किल है। आम लोगों तक वैज्ञानिक खोजों और जानकारियों को पहुंचाने के उद्देश्य से विज्ञान पत्रकार पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी होती है। इसी के उद्देश्य से हर भारतीय भाषा में वैज्ञानिक जानकारियों के प्रचार प्रसार की शुरुआत की गई। विज्ञान के क्षेत्र में जानकारियों का अपार भंडार है और उसे लोगों तक सरल भाषा में पहुंचाने का कार्य विज्ञान पत्रकारों द्वारा किया जा रहा है। हर भारतीय भाषा में अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं ने विज्ञान संबंधी खबरों को प्राथमिकता से छापना शुरू किया है। शुरुआती दौर में यह कार्य बहुत कम पत्र पत्रिकाओं द्वारा किया जाता था, लेकिन आज के

दौर में इस क्षेत्र में काफी क्रांति आ चुकी है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के अलावा प्रिंट मीडिया भी दिनोंदिन विज्ञान और तकनीक से जुड़ी चीजें लोगों तक पहुंचा रहा है, चाहे वह चिकित्सा अनुसंधान का क्षेत्र हो या फिर कंप्यूटर या तकनीकी से जुड़ा मामला हो। मनुष्य की जीवन शैली भी पूरी तरह से वैज्ञानिक खोजों और अनुसंधानों के सहारे चल रही है। निश्चित ही विज्ञान पत्रकारिता दिनोंदिन नए कीर्तिमान और प्रतिमान स्थापित कर रही है। नए विज्ञान लेखक भी इस दिशा में अच्छा कार्य कर रहे हैं। जरूरत है कि विज्ञान लेखन को और बढ़ावा दिया जाए।

1.11 शब्दावली:

विज्ञान पत्रकारिता: वैज्ञानिक विषयों पर क्रमबद्ध, सुव्यवस्थित ढंग से जानकारियां पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से लोगों तक पहुंचाना। **विज्ञान प्रौद्योगिकी:** तकनीकी ज्ञान द्वारा लोगों को जानकारियां देना।

1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पटैरिया, डॉ मनोज कुमार, (2000), हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली

2. पाण्डेय, डॉ. पृथ्वीनाथ, (2004), पत्रकारिता: परिवेश एवं प्रवृत्तियां, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

1.13 सहायक उपयोगी सामग्री

1. यूपीआरटीओयू, (2010), विशेषीकृत रिपोर्टिंग, द्वितीय खंड, इलाहाबाद
2. समाचार पत्रों में प्रकाशित लेखों के संकलन के आधार पर इनपुट

1.14 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. विश्व विज्ञान पत्रकारिता पर एक निबंध लिखिए!

प्रश्न 2. भारत में हिन्दी पत्रकारिता की बयार कब पहुंची, उदाहरणों का उल्लेख करें !

प्रश्न 3. हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता पर प्रकाश डालें!

प्रश्न 4. स्वतंत्रता के बाद लोकप्रिय विज्ञान लेखन से जुड़ी पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति स्पष्ट करें!

प्रश्न 5. पर्यावरण पत्रकारिता के लिए कौन-कौन सी चुनौतियां सामने आती हैं। समझाकर लिखें।

इकाई-2

धर्म, आध्यात्म और मीडिया

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 धार्मिक मसले : मीडिया कवरेज
2.3 कैसी-कैसी कवरेज
2.4 कैसे करें कवरेज
2.5 क्या धार्मिक होना जरूरी है
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्न
2.9 संदर्भ ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद

●बता सकेंगे कि धार्मिक मामलों में कैसी कवरेज मीडिया में हो रही है।

●समझा सकेंगे कि धार्मिक मामलों की रिपोर्टिंग करने में किन-किन खास बिंदुओं का ख्याल रखें।

2.1 प्रस्तावना

वर्तमान समय में अखबार हो या न्यूज चैनल हर जगह धर्म और आस्था की खबरों का संगम दिखाई पड़ रहा है। ज्योतिष को लेकर कई चैनल लोगों का भाग्य बांच रहे हैं। अखबारों में भी धर्म, आस्था से जुड़े समागमों के बारे में खूब कवरेज किया जा रहा है। आस्था की बात करें तो केवल हिन्दू धर्म ही नहीं अन्य धर्मों के पैरबगारों के प्रवचन और व्याख्यान टीवी रेडियो पर खूब सुनाई दिखाई देते हैं। जन भावनाओं को ध्यान में रखकर ही मीडिया संस्थान अपने कवरेज की सीमारेखा तय करते हैं।

2.2 धार्मिक मसले : मीडिया कवरेज

अपना देश स्वभाव से ही धार्मिक है। यहां का आम जन धर्म में गहरी आस्था रखता है। दुनिया के तकरीबन हर प्रमुख धर्म को मानने वाले लोग यहां हैं। मीडिया तो आमजन के लिए ही होता है। उसे जन जन की भावनाओं की कद्र करनी होती है। अगर हम आम आदमी की फिक्र करेंगे, तो धर्म से जुड़ी गतिविधियों को दरकिनार नहीं कर सकते। हो सकता है कि कुछ लोग अपने को धार्मिक कहलाने में हिचकें। वे धर्म को संगठन या संस्थान के तौर पर पसंद न करते हों। या परहेज करते हों। लेकिन वे भी नास्तिक हों। यह जरूरी नहीं है। ये लोग परंपरागत अर्थ में धार्मिक भले ही न हों, लेकिन आध्यात्मिक तो हैं ही। सो, धर्म अध्यात्म को अगर साथ मिला कर चलें तो इस देश की 95 फीसदी जनता आस्तिक है। यही वजह क्या काफी नहीं है कि धर्म अध्यात्म से जुड़ी गतिविधियों को अखबार में जगह दी जाए।

2.3 कैसी-कैसी कवरेज

आमतौर पर धर्म-अध्यात्म पर सामग्री विशेष फीचर पेज पर जाती है। यहां पर ज्यादातर फीचर ही होते हैं। शहर से जुड़े पन्नों पर रिपोर्ट होती हैं। संपादकीय पन्ने पर भी कुछ न कुछ जाता ही है। लेकिन वहां वह

लेख की शक्ल में होता है। यानी लेख, फीचर और रिपोर्टिंग इन तीनों में धर्म अध्यात्म को जगह मिल जाती है।

2.3.1 रिपोर्टिंग-

●**खोजी**-कोई मंदिर मिल गया। कोई मसजिद मिल गई। किसी सभ्यता के मिल जाने पर उसमें धर्म की जगह को ढूंढ़ने पर काम हो सकता है। पूजा स्थल कैसे थे? वे किस देवता की पूजा करते थे? किस तरह करते थे? वगैरह-वगैरह। कुछ ढूंढ़ने की कोशिश ही तो रिपोर्ट करती है।

●**सम्मेलन-** मान लो हमें किसी विश्व धार्मिक सम्मेलन की रिपोर्टिंग करनी है। जाहिर है उसमें तमाम धर्मों के गुरु आएंगे। इस तरह की रिपोर्टिंग बहुत ध्यान से करनी चाहिए। एक-एक वक्ता को कायदे से सुनना चाहिए। अगर हो सके तो अपने साथ टेपरिकॉर्डर रखें। उसे पूरे ध्यान से सुन कर अपनी रिपोर्ट तैयार करें। इस तरह की रिपोर्टिंग में कोशिश करनी चाहिए कि आपके अपने विचार हावी न हों। वहां जो भी कहा जा रहा है या वहां जो भी हो रहा है। उसी को सीधा-सीधा रिपोर्ट करने की कोशिश होनी चाहिए। कभी-कभी आपके अपने विचार से चीजें बिगड़ सकती हैं। इस तरह की रिपोर्टिंग पूरी तरह तटस्थता की मांग करती है। अगर पांच लोगों ने अपनी बात कही है, तो हमें उनकी बात उद्धरण देते हुए उठानी चाहिए। हां, जो सबसे अहम बात हो उससे रिपोर्ट की शुरुआत होनी चाहिए। और यह जानने की कोशिश करनी चाहिए कि आखिर मुद्दा क्या था? क्या सहमति के बिंदु थे? असहमति के स्वर क्या थे? हां, अपने को किसी भी तरह हावी नहीं करना चाहिए।

●**प्रवचन-** हम किसी भी शहर में रहते हों, वहां पर धर्मगुरुओं के प्रवचन होते ही हैं। उन्हें सुनने के लिए भारी भीड़ भी होती है। अगले दिन लोग उसकी रिपोर्टिंग भी पढ़ना चाहते हैं। यह रिपोर्टिंग कभी-कभी खासा टेढ़ी हो जाती है। खासतौर पर जब प्रवचन देर रात तक चलता हो। अखबार तो एक सीमा तक ही रुक सकता है। अगर ज्यादा देर होती है, तो उसकी रिपोर्ट करना नामुमकिन हो जाता है। देर रात में तो बड़ी खबरों के लिए ही जगह निकल पाती है। अंगरेजी के मशहूर अखबार चेन्नई के 'द हिंदू' में प्रवचन की रिपोर्टिंग का कॉलम अरसे से चल रहा है। उसे एक खास अंदाज देने वाले एम. सी. संपत ने हाल ही में पत्रकारिता से संन्यास लिया है। 1964 में उन्हें प्रवचनों की रिपोर्टिंग का काम दिया गया। उनके ही शब्दों में 'ज्यादातर रामायण और महाभारत के लेक्चर देर शाम में शुरू होते थे। खत्म होते-होते काफी रात हो जाती थी। उनके खत्म होने के बाद मैं ट्रेन पकड़ कर घर पहुंचता था। तब आधी रात हो जाती थी। ऐसे में वह रिपोर्ट एक दिन बाद ही अखबार में आती थी।' बाद में यही तरीका अपनाया जाने लगा।

एक बार हमारे मुख्य नगर संवाददाता के पास एक शख्स आया। वह अपने गुरुजी के प्रवचन की खबर अगले दिन छपवाना चाहता था। मुझे याद है हमारे साथी ने उन्हें सलाह दी कि भाई प्रवचन को आठ-साढ़े आठ तक खत्म कर दो, तो उसकी रिपोर्ट हो सकती है। वैसे भी उसके बाद शहर की बड़ी खबरों के लिए ही जगह बचती है। हालांकि अब लैपटॉप वगैरह आने के बाद रिपोर्टिंग आसान हो गई है। किसी भी वक्त कहीं से भी रिपोर्ट भेजी जा सकती है। अब उसके लिए संपत साहब की तरह ऑफिस पहुंच कर लिखना जरूरी नहीं है। लेकिन आज भी उस तरह की खबरें अगले दिन ही लगती हैं। उन्हें 'सॉफ्ट रिपोर्टिंग' जो माना जाता है। कभी-कभी यही समय उस रिपोर्टिंग के लिए दिक्कत पैदा करता है।

अखबार के लिए यह बहुत मुश्किल होता है कि अपने किसी रिपोर्टर को पूरी शाम के लिए एक प्रवचन के लिए खुला छोड़ दे। अक्सर उस चक्कर में पूरी रिपोर्टिंग ही रह जाती है। लेकिन समझदार लोग मीडिया के समय के साथ अपनी लय ताल बिठा ही लेते हैं। और उनकी रिपोर्ट कभी गायब नहीं होतीं।

जयंती, जुलूस या यात्रा

अपने यहां दिवसों की अलग ही महिमा है। अपने भगवान या महात्माओं से जुड़े इन दिवसों से लोग जुड़ना चाहते हैं। ये दिवस ही समाज के उत्सवों का कारण हैं। अपना समाज उत्सवधर्मी है। सो, उन्हें जम कर मनाता है। जाहिर है इन खास दिवसों पर सबका खास ध्यान रहता है। अच्छे-खासे लोग इनमें हिस्सेदारी करते हैं। अगले दिन उनसे जुड़ी खबरों को वे अखबार में देखना चाहते हैं। हर धर्म संप्रदाय में खास दिवसों की अहमियत है। दरअसल, धर्म बिना इन दिवसों के चल ही नहीं सकता। दीवाली, होली, रामनवमी, कृष्ण जन्माष्टमी, वाल्मीकि जयंती, बुद्ध पूर्णिमा, महावीर जयंती, गुरुनानक जयंती, रैदास जयंती वगैरह- वगैरह।

ये दिवसीय उत्सव कई तरह से मनाए जाते हैं। उनमें प्रार्थना सभाएं हो सकती हैं। कीर्तन हो सकता है। जुलूस निकाले जा सकते हैं। एक रिपोर्टर के तौर पर किसी भी तरह की रिपोर्टिंग करनी पड़ सकती है। किसी भी किस्म की रिपोर्ट की तरह एक बुनियादी बात ध्यान में रखनी चाहिए कि वह खुले दिमाग से हो। और अपने विचार उस पर हावी न हों। हम जो देखें उसे लिखें। उसे अपने विचार के लिहाज से तोड़ें-मोड़ें नहीं। यह जेहन में रहना चाहिए कि हमें प्रयोग करने की तो छूट है, लेकिन वैचारिक मतभेदों की नहीं।

आखिर किस तरह के प्रयोग हो सकते हैं, उसका एक उदाहरण देना चाहूंगा। हिंदुस्तान अखबार ने एक प्रयोग कांवड़ियों के समय में किया। उसमें एक रिपोर्टर और फोटोग्राफर को कांवड़ियों का जामा पहना

कर हरिद्वार से दिल्ली तक की यात्रा कराई गई। रिपोर्टर बिना किसी को बताए सब देखता था। और धीरे से शाम को रिपोर्ट भेज देता था। कांवड़ियों के इतने आयाम उससे समझ में आए, जो हम आमतौर पर देख समझ ही नहीं पाते। इसी कांवड़ यात्रा पर कोई रिपोर्टर अपनी पहचान बता कर भी अपना काम कर सकता है। तब शायद हम वह 'इनसाइट' नहीं दे पाएंगे। हम यह कतई नहीं बता पाएंगे कि कांवड़िए खुल कर क्या सोच रहे हैं? उनके बीच का अनुभव ही उस रिपोर्ट को एक्सक्लूसिव बनाएगा।

2.3.2 लेख

संपादकीय पन्ने पर लिखे जाने वाले और लेखों की तरह यह भी हो सकते हैं। यानी विचार और विश्लेषण से भरपूर। लेकिन इस तरह के लेख वहां भी बहुत कम ही छपते हैं। आमतौर पर प्रवचन छाप देने की परिपाटी चल निकली है। हर रोज किसी धर्मगुरु का प्रवचन ही अखबार देना चाहते हैं। इसके अलावा उस पर लिखने वाले छोटे लेखों को प्रमुखता दी जाती है। एक अध्यात्मिक विचार पर छोटा सा लेख हर अखबार छापना चाहता है। कुछ लोग तो दंत कथाओं से ही काम चला लेते हैं। लेकिन धीरे-धीरे एक अध्यात्मिक कोना अखबारों में बनता चला जा रहा है। 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' का 'स्पीकिंग ट्री' फिलहाल सबसे ज्यादा लोकप्रिय है। उस कॉलम की लोकप्रियता से प्रेरित होकर रविवार के दिन उन्होंने आठ पन्ने का स्पीकिंग ट्री निकालना शुरू कर दिया है। उसमें लेख, फीचर और प्रवचनों पर जोर होता है। उसका भी अच्छा-खासा बाजार हो गया है।

2.3.3 फीचर

आमतौर पर अखबार धर्म अध्यात्म पर फीचर छापते रहते हैं। हर त्योहार पर कुछ न कुछ सामग्री का आयोजन हो जाता है। दीवाली, होली, ईद, क्रिसमस, गुरु नानक जयंती वगैरह-वगैरह। समय-समय पर उसमें लेख छपते रहते हैं। सप्ताह में एक पन्ना तो धर्म के लिए निकाल ही लिया जाता है। यह पन्ना धर्म पर फीचर के लिए ही होता है। इसमें अक्सर रिपोर्टिंग नहीं होती। कुल मिलाकर यह पन्ना आने वाले सप्ताह के तीज-त्योहारों पर टिका होता है। उस सप्ताह में पड़ने वाले खास त्योहार पर उसका जोर होता है।

मान लीजिए ईद आ रही है। तब उस पन्ने की लीड ईद पर होगी। वहां किसीका लेख भी हो सकता है। या फिर उस पर कोई फीचर भी लिखा जा सकता है। फीचर करने वाला ईद पर कुछ खास लोगों के और कुछ आम लोगों के विचारों को पिरो सकता है। ईद से जुड़ी यादों पर कुछ हो सकता है। तब और अब की ईद पर भी लिखा जा सकता है। यों चंद लोगों से बात करने पर एक बेहतरीन फीचर लिखा जा सकता है।

एक बार किसी अखबार में हमने ईद पर कुछ अलग करने का विचार किया। ईद के बाजार पर हमने खासा जोर दिया। खान-पान पर तो लिखा ही गया। ईद से एक दिन पहले पूरी रात चलने वाले बाजार का भी जायजा लिया गया। हमारे रिपोर्टर ने जब उस पर फीचर लिखा तो उसकी खूब चर्चा हुई। सीधे जुड़ कर फीचर करने की बात ही कुछ और है। पाठक ऐसे फीचर से सीधा जुड़ जाता है।

तीर्थ यात्रा पर फीचर भी काफी पढ़े जाते हैं। दुनियाभर में तीर्थ यात्रा को अलग तरह से देखा जाता है। उसे आम पर्यटन से अलग माना जाता है। तीर्थों से जुड़े फीचर अगर अनुभव से जुड़े होते हैं, तो ज्यादा पसंद किए जाते हैं।

इतिहास और पुराण का मिश्रण होता है तीर्थों की यात्रा। इतिहास से भी ज्यादा हम पुराण पर निर्भर करते हैं। इतिहास तो यहीं तक कि फलाना मंदिर उस वक्त बना। या बना होगा। हालांकि यह भी जान लेना आसान नहीं होता। दिल्ली में एक भैरव मंदिर है। अब उसे पांडव कालीन कहा जाता है। लेकिन दिक्कत यह है कि पांडवों का काल कैसे निर्धारित किया जाए? उस हाल में हम दंत कथाओं का सहारा लेंगे। अपने पाठक को बताएंगे कि पुराण क्या कहते हैं?

हमारे सभी मंदिर प्राचीन कालीन होते हैं। हों या न हों लेकिन उनकी मंशा तो यही रहती है। प्राचीन कालीन होते ही उस मंदिर सब कुछ बदल जाता है। दंत कथाओं की बात कहने के अलावा हमें यह भी जानने की कोशिश करनी चाहिए कि आखिर यह मंदिर बना कब था? इतिहास का कुछ तो पता चल ही जाता है। यही पता चले कि मंदिर तो पुराना था लेकिन उसका पुनरुद्धार सत्रहवीं सदी में फलाने राजा ने किया। तो इतिहास पुराण जो भी मिल सके उसमें अपना अनुभव जोड़ कर तीर्थों पर फीचर हो सकता है। उस धार्मिक स्थल की मान्यता के भी मायने होते हैं। उसके बारे में भी लोग जानना चाहते हैं।

फीचर में हम धर्मगुरुओं की बातचीत भी छाप सकते हैं। अलग- अलग विषयों पर अलग-अलग समय पर उनसे बातचीत हो सकती है। बातचीत करने के लिए थोड़ी तैयारी जरूरी है। हम जिससे भी बात करने जा रहे हैं, उसके बारे में कुछ जानना ही चाहिए। फिर जिस पर बात करनी है, उसकी भी थोड़ी सी जानकारी अच्छी रहती है। ऐसा नहीं होना चाहिए कि हम शुरू करें कि आप अपने बारे में जरा बताइए? कभी-कभी कुछ खास शख्स इसी बात पर बात करने से मना कर देते हैं। उनका भी कहना सही है कि आप कुछ जानते ही नहीं तो आपसे क्या बात की जाए?

खास पन्ना

आमतौर पर अखबारों में साप्ताहिक पन्ना तय रहता है। श्रद्धा, आस्था, धर्मक्षेत्रे, अनंत जैसे उनके नाम होते हैं। किसी आनेवाले त्योहार या जयंती पर लेख या फीचर। प्रवचन, दंत कथा, धर्मग्रंथ से, व्रत, त्योहार या किसी पूजा स्थल, आश्रम, संप्रदाय पर फीचर।

एक बानगी *कुछ अखबारों के खास पन्ने*

अमर उजाला का 9 जुलाई 2002 का श्रद्धा का पन्ना।

-जगन्नाथ रथ यात्रा पर फीचर, जगन्नाथ से जुड़ी दंत कथा, आचार्य वल्लभ के आखिरी दिन पर लेख, प्रार्थना समाज पर फीचर, अप्पर के दो पद, सप्ताह के व्रत त्योहार

हिंदुस्तान का 30 जुलाई 2007 में अनंत का पन्ना

-सावन पर फीचर, कांवड़ पर फीचर, इंद्र पर लेख

हिंदुस्तान का 26 नवंबर 2007 में अनंत का पन्ना

-ईद पर लेख, ग्रेट मदर बेंडिस पर लेख, तरलोचन दर्शनदास का प्रवचन, ध्यान की विधि

-बोध कथा, -विवेक चूड़ामणि से अंश, व्रत त्योहार

स्पीकिंग ट्री का 29 जनवरी 2012 का अंक

अतिथि संपादक-दीपक चोपड़ा, ईश्वर क्या भ्रम है-फीचर, संक्षिप्त खबरें, बदलाव पर दीपक चोपड़ा का लेख, अमर वाणी, गुस्से और भावनाओं पर लेख, बेन ऑकरी से बातचीत, मुल्ला नसीरुद्दीन के किस्से, ब्रह्मांड के रहस्यों पर लेख, ओशो प्रवचन, बोध कथाएं, विज्ञान और आत्मा पर लेख, दादा वासवानी और जया राव का प्रवचन, तीर्थ यात्रा पर आलेख, देवदत्त पटनायक का विश्वास पर लेख, किताब की समीक्षा, योग

नवभारत टाइम्स 16 मार्च 2012 में धर्म-अध्यात्म

भगवान महावीर जयंती समारोह पर एक कॉलम की खबर, धर्म कर्म में तीन प्रवचनों पर रिपोर्ट, धार्मिक गतिविधियों में उस दिन के कार्यक्रम

2.4 कैसे करें कवरेज

धार्मिक मामलों की कवरेज में निम्न बातों का ख्याल रखें

2.4.1 विविधता का खयाल करें

हम देश के तौर पर सेकुलर हैं। यह देश तो विविधता की मिसाल है। यानी इस देश की प्रकृति ही विविध है। उस प्रकृति का हमें हर हाल में खयाल रखना है। यहां कोई एक धर्म तो है नहीं। अलग-अलग धर्मों को कैसे हम जगह दें इसका खास खयाल तो रखना ही होगा। फिर किसी धर्म के लिए हमारे खास आग्रह न हों यह भी देखना होगा। कुल मिलाकर हमें पाठकों के लिहाज से सोचना पड़ेगा। अपनी रुचियों या सोच के हिसाब से नहीं।

2.4.2 सर्वधर्म समभाव

हमारा देश दुनियाभर के धर्मों की झलक देता है। यह कहना तो शायद ठीक नहीं होगा कि यहां पर हर किस्म के धर्म को देखा जा सकता है। लेकिन दुनिया के जितने धर्मों को यहां जगह मिली है, उतनी शायद ही किसी देश में हो। हर बड़े धर्म को मानने वाले तो यहां हैं ही। हमारा देश अपनी प्रकृति से ही सेकुलर है। अपने देसी शब्दों में तो यहां पर सर्वधर्म समभाव रहा है। हर धर्म को हमें इज्जत देनी है। किसी को आहत नहीं करना है। कोई जिस तरह के धर्म को चाहता है या जिसको तरजीह देता है। उसके विश्वास पर हमें सवाल नहीं खड़े करने हैं। हमें उसके विश्वास का सम्मान करना है। मेरा मानना है कि अगर किसी संप्रदाय के चंद लोग हैं तब भी हमें उनका खयाल रखना है। हम कुछ भी दें लेकिन वह किसीके खिलाफ नहीं होना चाहिए।

हर अखबार या पत्रिका को अपने पाठकों का खयाल रखना होता है। पाठकों के लिहाज से ही धर्म-अध्यात्म की कवरेज तय होती है। उनकी चाहत का खयाल तो रखना ही पड़ेगा। अब वे जिस तरह के प्रवचन चाहते हैं उन्हें देने चाहिए। वे जिस तरह की रिपोर्टिंग चाहते हैं, वह करनी चाहिए। उन्हें जिस तरह के लेख पसंद हैं, वह देने की कोशिश करनी चाहिए। लेकिन यह खयाल रखना बेहद जरूरी है कि अलग-अलग धर्मों को जगह मिले। हम किसी एक को बेवजह तरजीह न दें। अगर तरजीह जरूरी भी हो, तो आहत वाली बात को जरूर ध्यान में रखें।

2.4.3 विशेषज्ञ की जरूरत

अखबार में काम करने वाले शख्स के लिए हर विषय का जानकार होना नामुमकिन होता है। हां, एक बुनियादी जानकारी जरूरी होती है। और फिर जहां भी कोई उलझन होती है। उसके लिए विशेषज्ञ होते हैं। रिपोर्टर या फीचर लेखक को हर क्षेत्र के विशेषज्ञों से बात करने की कोशिश करनी चाहिए। जहां भी शंका हो उनसे बात की और ठीक कर लिया। अगर हमारे पास विशेषज्ञों का पूरा अनौपचारिक पैनल है, तो उससे हमें बहुत मदद मिलती है। तेजी से रिपोर्ट लिखते हुए भी खट से बात हो सकती है। लेकिन यह संपर्कों पर निर्भर है। जिस रिपोर्टर के संपर्क जितने बेहतर होते हैं, उतना ही उसके लिए रिपोर्ट लेना आसान होता है। यह तो रिपोर्टिंग के हर मसले पर लागू होता है।

कुछ सालों पहले की बात है। एक अमेरिकी विद्वान ने सूरदास पर कुछ काम किया। उन पर फीचर करने की बात हुई। धार्मिक बीट पर नया-नया काम करने वाले शख्स ने उनसे मिल कर एक फीचर तैयार किया। वह जब उनसे मिल कर आया तो बहुत खुश था। उसे लगा कि कोई बड़ी खबर हो जाएगी। उन अमेरिकी विद्वान का मानना था कि सूरदास के ज्यादातर पद प्रक्षिप्त हैं। उसने रिपोर्ट अपने वरिष्ठ साथी को दिखाई। दोनों को ही धर्म या साहित्य की कम ही जानकारी थी। लिखने वाले ने शीर्षक दिया 'सूरदास के ज्यादातर पद प्रक्षिप्त हैं।' अब इस शीर्षक में तो मजा ही नहीं आ रहा था। तब उन वरिष्ठ ने शीर्षक लगाया, 'सूरदास के तमाम पद फर्जी हैं।' अगले दिन यह छप भी गया। उसी दिन अखबार की कॉपी को लिए हुए अमेरिकी शख्स ऑफिस चले आए। वह हत्थे से उखड़े हुए थे। उनका कहना था कि यह तो उन्होंने कहा ही नहीं । ऐसा वह कैसे कह सकते हैं? वह तो ज्यादातर पदों के प्रक्षिप्त होने की बात कह रहे थे। और यहां तो तमाम पद फर्जी हो गए। यानी सूरदास का लिखा हुआ कुछ भी ठीक नहीं है। उनका लिखा हुआ मूल वहां है ही नहीं। खैर, किसी तरह उन्हें समझा कर विदा किया गया। बाद में सफाई छापनी पड़ी।

दरअसल, इस मामले में दो शब्दों की वजह से बवाल हुआ। एक तो इधर हम ज्यादातर की जगह 'तमाम' का इस्तेमाल बेवजह करने लगे हैं। ज्यादातर में कुछ फिर भी बच जाता है। यानी कुछ पद जरूर मौलिक हैं। ज्यादातर भले ही न हों। असली चूक तो प्रक्षिप्त में हुई। प्रक्षिप्त का मतलब होता है पीछे से जोड़ा हुआ या मिलाया हुआ। यानी बाद के दौर में उनमें कुछ-कुछ जोड़ दिया गया। असल में पूरा का पूरा पद गड़बड़ नहीं होता। एक दो शब्द या लाइन इधर-उधर जरूर हो जाती हैं। अगर उस रिपोर्टर ने किसी से प्रक्षिप्त का मतलब जान लिया होता, तो इतनी बड़ी गड़बड़ नहीं होती।

यों साहित्य समझने वाले इसे जानते हैं। सदियों से चली आ रही रचनाओं में कुछ न कुछ जुड़ ही जाता है। वैसे भी बहुत सारी चीजें वाचिक परंपरा से ही यहां तक पहुंच पाई हैं। वाचिक परंपरा में ऐसा होना अनहोनी नहीं है। लेकिन इसके लिए विषय की कुछ समझ तो चाहिए ही।

2.4.4 भावनाओं का खयाल

एक बार ब्रह्मर्षि नारद पर लेख लिखा। उसमें मैंने उस कथा का जिक्र किया जिसमें नारद ने वाल्मीकि को डाकू से संत बनने का रास्ता दिखाया था। कथा यह है- एक बार नारदजी घूमते हुए डाकू रत्नाकर के इलाके में पहुंचे। रत्नाकर ने उन्हें लूटने के लिए रोका। नारदजी बोले, 'भैया मेरे पास तो यह वीणा है, इसे ही रख लो। लेकिन एक बात तो बतलाओ, तुम यह पाप क्यों कर रहे हो?' रत्नाकर ने कहा, 'अपने परिवार के लिए।' तब नारदजी बोले, 'अच्छा, लेकिन लूटने से पहले एक सवाल जरा अपने परिवार वालों से पूछ आओ। यह कि क्या वे भी तुम्हारे पापों में हिस्सेदार हैं।' रत्नाकर दौड़े-दौड़े घर पहुंचे। जवाब मिला, 'हमारी देखभाल तो आपका कर्तव्य है। लेकिन हम आपके पापों में भागीदार नहीं हैं।' लुटे पिटे रत्नाकर लौट कर नारदजी के पास आए और डाकू रत्नाकर से वाल्मीकि हो गए। वह संत बन गए। बाद में महान रामायण की रचना की। नारद यही सीख देना चाहते थे। मेरा लेख हिंदुस्तान में छपा था। कुछ दिन के बाद एक सज्जन मेरे पास आए। वह वाल्मीकि समाज से थे। खासा उखड़े हुए थे। उन्होंने मुझसे कहा कि आपने वाल्मीकि को डाकू क्यों लिख दिया? वह तो डाकू नहीं थे। मेरा जवाब था कि भई मैंने तो दंत कथा लिखी है। बचपन से यही सुनता आया हूं। लेकिन वह मानने को तैयार ही नहीं थे। उनकी और उनके समाज की भावनाएं आहत हो गई थीं। उस लेख का आशय भी कोई वाल्मीकि को नीचा दिखाना नहीं था। उसमें तो वाल्मीकि को महान ही कहा गया था। लेकिन फिर भी कोई आहत हो गया।

सो, धार्मिक लेख हो या रिपोर्टिंग उसे लिखते हुए हमें भावनाओं का खयाल रखना चाहिए। हमें कोशिश करनी चाहिए कि किसी भी वर्ग या समाज की भावनाएं आहत न हों। धर्म के पन्ने को देखते हुए हमें कई ऐसे लेख वापस करने पड़े जो अच्छे तो थे। तार्किक भी थे। लेकिन उससे किसी न किसी की भावना आहत हो रही थी। हमें लेख और रिपोर्टिंग में इसका खयाल करना बेहद जरूरी है। दरअसल, किसीभी गुरु या संप्रदाय को अपनी बात कहने का अधिकार तो है। लेकिन किसी को नीचा दिखाने का अधिकार नहीं है। अखबार या पत्रिका में काम करते हुए हम चाह कर किसीकी भावनाएं आहत करने की सोच नहीं सकते। हम किसीकी बात से सहमत हों तब भी हमें उस आहत के पहलू को ध्यान में रखना ही होगा।

2.5 क्या धार्मिक होना जरूरी है

किसी भी धार्मिक घटना की रिपोर्टिंग करने के लिए हमारा धार्मिक होना जरूरी नहीं है। हम उसी विश्वास या मत को मानने वाले हों यह तो कतई जरूरी नहीं है। यों भी किसी अखबार पत्रिका या चैनल में धार्मिक आयोजन को कवर करने के लिए एक-दो लोग ही होते हैं। आमतौर पर तो सिर्फ धर्म कवर करने के लिए एक रिपोर्टर आमतौर पर नहीं होता।

हालांकि साल भर कुछ न कुछ धार्मिक गतिविधियां चलती रहती हैं। लेकिन कोई एक खास रिपोर्टर का एक बड़े अखबार में भी होना आसान नहीं है। अक्सर किसी एक रिपोर्टर को यह धर्म का मामला भी थमा दिया जाता है। उसे धर्म के अलावा और भी किस्म की रिपोर्टिंग करनी होती है। अगर हम यह कोशिश करें कि हर धर्म संप्रदाय के लिए अलग-अलग रिपोर्टर हों तो यह लगभग नामुमकिन है। हालांकि यह विचार बुरा नहीं है। लेकिन इतने रिपोर्टर लेकर कहां से आएंगे? इसीलिए एक रिपोर्टर भी तय हो जाए तो बड़ी बात है। हां, इतना ध्यान जरूर रखा जा सकता है कि उसकी ट्रेनिंग कायदे से कराई जाए। ताकि वह धर्म संबंधी संवेदनाओं को समझ सके। यह रिपोर्टिंग बेहद नाजुक काम है। जरा सी गड़बड़ी से किसी भी किस्म का हंगामा हो सकता है।

रिपोर्टर लगातार धर्म पर पढ़े। कोशिश हो कि कुछ बड़े धर्मों की बुनियादी जानकारी उसे हो। अगर वह हर धर्म के बारे में थोड़ा सा पढ़ ले, तो उसे रिपोर्ट करना बहुत आसान हो जाएगा। रिपोर्ट करते हुए वह उस धर्म के विशेषज्ञों से लगातार संपर्क में रहे। बेहतर होता है कि कोई रिपोर्ट करने से पहले उसकी बुनियादी जानकारी हासिल कर ली जाए। मसलन, हमें अगर गुरु नानक जयंती कवर करनी है। तब हमें गुरु नानक के बारे में कुछ जानकारी तो होनी ही चाहिए। उसे कवर करने से पहले हम पहले सिख गुरु के बारे में जान लें तो बेहतर होगा। यह जानना भी जरूरी होता है कि आखिर गुरु का यह आयोजन किस दिवस से जुड़ा हुआ है। या मान लीजिए हम सद्गुरु का कोई प्रवचन कवर करने जा रहे हैं, तो हमें उनके बारे में जानकारी होगी तो सचमुच हमें लिखने में आसानी होगी । हमारी रिपोर्ट भी बेहतर होगी। कोई शंका हो तो किसी से सलाह-मशविरा करने में कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए।

एक अलग तरह की रिपोर्टिंग रमजान के दिनों में होती है। उन दिनों इफ्तार पार्टी का जोर रहता है। दिल्ली में तो राजनीतिक इफ्तार पार्टियों का बोलबाला होता है। कुछ अखबार तो उसे खासा कवरेज देते हैं। हालांकि यह कवरेज ईद और रमजान से जुड़ी होती है। लेकिन कुल मिलाकर यह राजनीतिक कवरेज ही है। दरअसल, इफ्तार की अलग राजनीति है। उसमें धर्म ढूंढ़ना आसान काम नहीं है। वहां तो राजनीतिक

समीकरण ही हावी होते हैं। यानी किसी नेता के यहां कौन पहुंचा? कौन नहीं पहुंचा? किसी को बुलावा गया? किसको नहीं बुलाया गया? इन सब पहलुओं को ध्यान में रखकर रिपोर्ट तैयार की जा सकती है।

2.6 सारांश

एक बात जरूर कहना चाहूंगा कि धर्म-अध्यात्म की रिपोर्टिंग अभी एक बंधे-बंधाए ढर्रे पर हो रही है। उसे तोड़ना भी आने वाली पीढ़ी का काम है। उन्हें अपने देश की प्रकृति को समझते हुए धर्म-अध्यात्म की रिपोर्टिंग को अहमियत देनी होगी। उसके लिए बेहतरीन रिपोर्टर तैयार करने होंगे। इस तरफ रुझान रखने वाले रिपोर्टर को ढूंढ़-ढूंढ़ कर उनसे अलग तरह की रिपोर्टिंग की मांग करनी होगी। अभी जो हाल हैं उसमें हम सोच भी नहीं सकते कि कोई संपादक, धर्म-अध्यात्म भी हो सकता है। आज तो धर्म-अध्यात्म के विशेष संवाददाता की बात भी नहीं सोची जा रही है। आज नहीं कल हालात बदलेंगे। तमाम संभावनाएं हमारा इंतजार कर रही हैं।

2.7 शब्दावली

प्रवचन – धर्मगुरुओं और संत महात्माओं द्वारा जनता के बीच नीति वचनों का प्रचार प्रसार भाषण या वक्तव्य देकर किया जाता है।

सम्मेलन- जब किसी विषय पर कई धर्मों के गुरुओं को व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया जाता है तो ऐसा आयोजन एक सम्मेलन का रूप ले लेता है।

2.8 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1- धार्मिक मामलों की कवरेज क्यों जरूरी है। स्पष्ट करें।

प्रश्न 2- सम्मेलन की कवरेज में क्या बातें अहम होती हैं, लिखें।

प्रश्न 3- धार्मिक विषयों पर लेख लिखना कितना अहम है, स्पष्ट करें।

प्रश्न 4 – जुलूस और धार्मिक यात्राओं की रिपोर्टिंग में क्या सावधानियां बरती जाएं, लिखें।

प्रश्न 5 – अखबारों में धर्म-अध्यात्म पर विशेष पेज देने की परंपरा पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न-6- अपने शहर के किसी नामी संत-महात्मा का साक्षात्कार करें।

2.9 संदर्भ ग्रंथ

1. पाण्डेय, डॉ. पृथ्वीनाथ, (2004), पत्रकारिता: परिवेश एवं प्रवृत्तियां, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

2. विभिन्न समाचार पत्रों की कतरनें।

इकाई-3

स्वास्थ्य जगत और मीडिया

इकाई की रूपरेखा

3.0 प्रस्तावना

3.1 स्वास्थ्य पत्रकारिता के उद्देश्य

3.2 भारत में स्वास्थ्य पत्रकारिता

3.3 डेस्क की भूमिका

3.4 संवाददाता का काम

3.5 विशेष स्वास्थ्य परिशिष्ट

3.6 ऑनलाइन संसाधन

3.7 स्वास्थ्य पर केंद्रित पत्र-पत्रिकाएं

3.8 उपसंहार

3.9 शब्दावली

3.10 संदर्भ ग्रंथ/पुस्तकें

3.11 लघु उत्तरीय प्रश्न

3.12 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

जिस तरह से किसी भी देश में लोकतंत्र के स्वस्थ रहने और सरकार और प्रशासन के सुचारू रूप से काम करने के लिए स्वतंत्र और निष्पक्ष राजनीतिक और सामाजिक पत्रकारिता की आवश्यकता होती है, उसी तरह से किसी भी देश और पूरी दुनिया में सेहत से संबंधित मसलों को सरकारों, नीति-निर्माताओं के सामने प्रस्तुत करने और जनता को इनके बारे में जागरूक करने में स्वास्थ्य पत्रकारिता की बड़ी भूमिका होती है।

एक अच्छा स्वास्थ्य पत्रकार स्वास्थ्य और चिकित्सा क्षेत्र में व्याप्त गड़बडिय़ों को उजागर कर सकता है, जनता को जागरूक बना सकता है जिससे कि लोग खुद को रोगों से बचाने के लिए चौकस रहें और तरह-तरह के खाद्य पदार्थ बनाने वाली कंपनियों और दवा कंपनियों के भ्रामक दावों पर विश्वास न करें। एक अच्छे स्वास्थ्य पत्रकार का यह भी दायित्व है कि वह स्वास्थ्य और चिकित्सा संबंधी नीतियों का सही विश्लेषण कर उनकी खामियों का लेखाजोखा प्रस्तुत करे जिससे कि नागरिक समाज नीति निर्माताओं पर दबाव बनाकर सही स्वास्थ्य और चिकित्सा नीतियां बनाने के लिए अपनी ओर से पहले कर सके।

स्वास्थ्य पत्रकारिता का क्षेत्र इतना व्यापक है कि यदि स्वास्थ्य पत्रकार अपने कार्य को अच्छी तरह से अंजाम दें तो वे किसी भी क्षेत्र, देश और दुनिया के स्वास्थ्य परिदृश्य पर अहम प्रभाव डाल सकते हैं। स्वास्थ्य पत्रकारिता का दायरा सिर्फ अस्पतालों, डॉक्टरों और दवा कंपनियों तक ही सीमित नहीं है। खानपान की शैली, गुणवत्ता और हमारे स्वास्थ्य पर उनके प्रभाव, खानपान के क्षेत्र में सक्रिय कारोबारियों के गलत दावों की पोल खोलने, स्वच्छ जल की उपलब्धता न होने के कारण महामारियों के फैलने की आशंका से लेकर मच्छरों की रोकथाम के जरिये डेंगू और मलेरिया जैसी बीमारियों से बचाव भी इसके दायरे में आते हैं। चूंकि हर व्यक्ति चाहे वह गरीब हो या अमीर, अच्छी सेहत चाहता है, इसलिए सेहत का कारोबार भी उतना ही बड़ा है और इसमें हजारों कारोबारी लगे हैं जिनका सालाना कारोबार हज़ारों अरबों रूपये का है। स्वास्थ्य पत्रकार के लिए जहां एक तरफ ज़रूरत इस बात की होती है कि वह डॉक्टरों, दवा उद्योग और चिकित्सा परीक्षण उद्योग और चिकित्सा नियमन अधिकारियों की अपने-अपने लाभ के लिए साठगांठ को रोकने के लिए पाठकों के सामने तथ्य प्रस्तुत करे, वहीं उसकी

यह भी ज़िममेदारी हो जाती है कि वह हज़ारों अरबों के खानपान और जीवनशैली कारोबार में लागों के सेहत से जुड़े मुद्दों को समय-समय पर उजागर करे।

अपनी भूमिका का निर्वाह करते वक्त एक स्वास्थ्य पत्रकार को किसी खास अस्पताल, डॉक्टर, दवा, खाद्य पदार्थ आदि की सिफारिश करने से बचना चाहिए और उसे ज़्यादा से ज़्यादा वस्तुनिष्ठ भूमिका अदा करते हुए लोगों के सामने संपूर्ण तथ्य और विभिन्न विशेषज्ञों की राय प्रस्तुत करनी चाहिए। राय के लिए विशेषज्ञों का चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे विभिन्न धाराओं का प्रतिनिधित्व करते हों लेकिन उनमें से कुछ ज़रूर ऐसे हों जो किसी भी तरह के कारोबारी हित के बजाय सीधे जनता के हितों की परवाह करते हों। ऐसे लोग किसी गैरसरकारी संगठन के हो सकते हैं या फिर प्रोफेशनल स्तर पर सक्रिय लोग।

एक अच्छे स्वास्थ्य पत्रकार को स्वास्थ्य क्षेत्र में कार्यरत विभिन्न लोगों से नियमित तौर पर संपर्क में रहना चाहिए। इनमें स्वास्थ्य और चिकित्सा क्षेत्र में नीति निर्धारित करने वाले अधिकारी, एलोपैथिक, आयुर्वेदिक और होमयोपैथिक डॉक्टर, अस्पतालों के संचालनकर्ता, सामुदायिक लीडर और क्षेत्र के नागरिक संगठनों के प्रमुख शामिल हैं।

3.1 स्वास्थ्य पत्रकारिता के उद्देश्य

स्वास्थ्य पत्रकारिता से जुड़े किसी भी पत्रकार के लिए ज़रूरी है कि वह स्पष्टï रूप से जाने कि वह जो कुछ लिख रहा है उसका क्या प्रयोजन है। स्वास्थ्य पत्रकारिता मूलत: इन लक्ष्यों को सामने रखकर की जाती है:

●जनता को स्वास्थ्य संबंधी मसलों के बारे में जागरूक बनाना:

इसमें वे तमाम बातें शामिल हैं जिन्हें मीडिया प्रचारित-प्रसारित कर लोगों तक स्वास्थ्य शिक्षा पहुंचा सकता है और उन्हें विभिन्न रोगों से बचने और उनके प्रभावी इलाज के लिए बरते जाने वाली सावधानियों के बारे में जानकारी प्रदान कर सकता है। लेकिन किसी भी पत्रकार के लिए यहां सबसे बड़ी ध्यान रखने की बात यह है कि जनता तक स्वास्थ्य संबंधी सूचना पहुंचाई जाए वह प्रामाणिक स्रोतों से हो। झोलाछाप डॉक्टरों, तथाकथित अधकचरे स्वास्थ्य विशेषज्ञों, धार्मिर्क बाबाओं आदि के द्वारा दी जाने वाली सलाहों को प्रचार देने से उन्हें बचना चाहिए। स्वास्थ्य संबंधी मसलों पर कलम चलाने वाले

पत्रकार को इस बात का अहसास होना चाहिए कि वह जो कुछ भी लिखेगा उससे लाखों लोगों की सेहत प्रभावित हो सकती है, इसलिए किसी भी तरह के अंधविश्वास को बढ़ावा न दिया जाए। स्वास्थ्य संबंधी सूचनाओं और प्रतिक्रियाओं के लिए प्रामाणिक स्रोतों का इस्तेमाल किया जाना चाहिए जिनमें स्वास्थ्य एवं चिकित्सा से जुड़े वरिष्ठ सरकारी अधिकारी, विभिन्न विधाओं के अनुभवी प्रशिक्षित डॉक्टर, आहार विशेषज्ञ, औषध निर्माता कंपनियों के वरिष्ठ अधिकारी, सामुदायिक स्वास्थ्य के लिए काम करने वाले गैरसरकारी संगठनों के प्रतिनिधि, चिकित्सा शोध संस्थानों के शोधकर्मी आदि शामिल हैं।

●स्वास्थ्य एवं चिकित्सा से जुड़े ढांचे में खामियों को उजागर करना:

स्वास्थ्य पत्रकारों के लिए ज़रूरी है कि वे अपने कार्यक्षेत्र के अनुरू प अपने क्षेत्र या पूरे देश में स्वास्थ्य और चिकित्सा संबंधी ढांचे पर पैनी निगाह रखें। इस बात पर गौर करें कि क्या यह ढांचा वहां के नागरिकों की चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम है। ऐसा आकलन करते समय भविष्य की ज़रूरतों पर भी गौर करना चाहिए कि क्या चिकित्सा सुविधा विस्तार योजनाएं भविष्य में आने वाली चुनौतियों से निपट पाएंगीं। इसके मद्देनज़र इलाके में मौजूद प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों, अस्पतालों और विशेष चिकित्सा संस्थानों द्वारा प्रदान की जा रही सुविधाओं का आकलन करते हुए खामियों को उजागर करना चाहिए। कुछ इस तरह के सवाल पत्रकार के मन में उठने चाहिए: क्या इलाके में रोगियों की संखया के मद्देनज़र यह व्यवस्था पर्याप्त है? क्या मौजूदा सुविधाओं का सही तरीके से लाभ मिल रहा है? क्या गुणवत्ता का ध्यान रखा जा रहा है? कहीं ऐसा तो नहीं कि लापरवाही के चलते चिकित्सा संस्थान ही लोगों की सेहत से खिलवाड़ कर रहे हों? इनमें संक्रमण के मसले से लेकर सही औषधि और मरीज़ों की सही तरीके से देखभाल का मसला शामिल है। क्या अस्पताल में गंभीर मरीजों की जान बचाने के लिए ज़रूरी इंतजाम हैं? और क्या मरीजों के इलाज के लिए पर्याप्त डॉक्टर और कर्मचारी हैं? इन मसलों पर गौर कर और खामियों को सार्वजनिक करने से एक दबाव बनता है और खामियों को दूर करने में मदद मिलती है।

●स्वास्थ्य पत्रकार अपने कार्यक्षेत्र के अंतर्गत आने वाली चिकित्सा सुविधाओं और वहां स्वास्थ्य और चिकित्सा के मद में हो रहे खर्च के बारे में सूचना के अधिकार के तहत भी जानकारी मांग सकता है या फिर इलाके में अन्य लोगों द्वारा इस प्रकार हासिल की गई अहम जानकारियों को पाठकों के सामने प्रस्तुत कर सकता है। इस तरह की जानकारी से कई बार महत्वपूर्ण तथ्य सामने आ सकते हैं।

●स्वास्थ्य पत्रकार के लिए आवश्यक है कि वह चिकित्सा से जुड़े हर पहलू से खुद को रूबरू करे और चिकित्सा संस्थानों में अपने संपर्क बनाए जिससे कि उसे तुरंत ही किसी भी तरह के घटनाक्रम की जानकारी मिल सके। क्षेत्र में किसी बीमारी के अचानक दस्तक देने या फिर अस्पताल में किसी संक्रमण के चलते अचानक मरीजों की संखया में भी वृद्धि के मामलों में इस तरह के संपर्क ही सबसे पहले जानकारी मुहैया कराते हैं।

3.2 भारत में स्वास्थ्य पत्रकारिता

भारत में स्वास्थ्य पत्रकारिता आजादी से पहले और आजादी के बाद भी लंबे समय तक उपेक्षित रही और अखबारों में राजनीतिक मसले ही छाए रहे। इसी के चलते स्वास्थ्य पत्रकारिता एक खास विधा के रूप में उभरने के बजाय हाशिए पर ही रही। अखबारों में शुरुआत हुई स्वास्थ्य संबंधी गोष्ठियों और कार्यशालाओं की रिपोर्टिंग के साथ। प्रारंभ में इनकी खबरें सिर्फ ये बताती थीं कि स्वास्थ्य या चिकित्सा के किसी पहलू पर गोष्ठी हुई है लेकिन उसमें किस तरह की क्या चर्चा हुई, इसे खबर में शामिल नहीं किया जाता था। गोष्ठी के विषय को दुरूह मानते हुए उसे अखबारी चर्चा से दूर रखा जाता था।

बाद में अखबारों में, खासकर अंग्रेजी के अखबारों में विज्ञान पत्रकारिता और उसी के साथ स्वास्थ्य पत्रकारिता ने भी अपनी जगह बनानी शुरू की। विज्ञान और चिकित्सा में दिलचस्पी रखने वाले पत्रकार इन विषयों पर खबरें और लेख लिखने लगे। संपादक भी इन विषयों में विशेषज्ञता का प्रयास करने वालों को प्रोत्साहित करने लगे। पहले अंग्रेजी अखबारों और बाद में हिंदी अखबारों में स्वास्थ्य संबंधी खबरें लगातार आने लगीं और समय-समय पर स्वास्थ्य संबंधी लेख भी प्रकाशित होने लगे। स्वास्थ्य और चिकित्सा विशेषज्ञों के इंटरव्यू प्रकाशित करने की परंपरा ने इस धारा को और मजबूत किया और पाठकों को प्रामाणिक स्वास्थ्य संबंधी जानकारी प्रदान करने की सकारात्मक पहल हुई। कई अखबारों और पत्रिकाओं ने स्वास्थ्य संबंधी कॉलम शुरू किए जिनकी बेहद लोकप्रियता ने इस बात को स्थापित किया कि पाठकों में सेहत संबंधी सामग्री की भारी मांग है।

लेकिन इस मांग को पूरी करने के क्रम में कुछ अखबारों और पत्रिकाओं ने अधकचरे विशेषज्ञों के लेखों को प्रकाशित करना शुरू किया जो अनुचित था। देसी नुस्खों के नाम पर कुछ भी प्रकाशित करने की इस परंपरा ने वही काम किया जो अंधविश्वास बढ़ाने वाले तथाकथित बाबाओं के नुस्खे करते हैं। लेकिन समय के साथ ही संपादकों ने स्वास्थ्य पत्रकारिता को गुणवत्तापूर्ण बनाने की पहल की और हिंदी के

अखबारों और पत्रिकाओं ने भी सेहत से जुड़े मसलों पर अच्छी सामग्री देना शुरू की। हिंदी के अखबारों की खासियत यह भी रही कि उनमें दूरदराज की आम जनता से जुड़े सेहत संबंधी मसले भी शामिल किए जो अंग्रेजी के अखबारों और पत्रिकाओं से नदारद थे।

नब्बे दशक के बाद स्वास्थ्य पत्रकारिता ने हिंदी क्षेत्र में गति पकड़ी है। मीडिया में यह राय बनी है कि राजनीतिक लेखों के बजाय पाठक की दिलचस्पी अपने से सीधे जुड़े मसलों में बढ़ रही है। इनमें सेहत और शिक्षा संबंधी मसले प्रमुख हैं। हिंदी पत्रिकाएं अब अपने हर अंक में अमूमन किसी न किसी स्वास्थ्य संबंधी मसले पर सामग्री प्रस्तुत करती हैं और विशेषज्ञों के इंटरव्यू इन लेखों का अहम हिस्सा होते हैं।

इंटरनेट ने भी स्वास्थ्य पत्रकारिता को नया आयाम देना शुरू किया है। अब लोग ब्लॉग के जरिये अपनी बात कह रहे हैं, कई स्वतंत्र चिकित्सा विशेषज्ञ सेहत से जुड़े मसलों को इंटरनेट के जरिये सार्वजनिक कर रहे हैं।

3.3 डेस्क की भूमिका

स्वास्थ्य पत्रकारिता में अखबारों के अंदर डेस्क की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण है। डेस्क पर कार्यरत जो भी पत्रकार स्वास्थ्य संबंधी खबरों का संपादन करे, उसे स्वास्थ्य से जुड़ी मूल बातों की जानकारी होनी चाहिए। डेस्ककर्मी खबर में दिए गए तथ्यों पर नज़र दौड़ाकर इस बात की पुष्टि कर सकता है कि कोई गलत जानकारी तो नहीं जा रही है। वह खबर के कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं को सरल भाषा में समझाकर खबर को और मूल्यवान बना सकता है या फिर खबर को उसकी पृष्ठiभूमि से संबद्ध कर उसे नया आयाम प्रदान कर सकता है। एक अच्छा डेस्ककर्मी खबर की खामी को दूर कर सकता है और यदि उसे लगे कि खबर में कोई अहम चीज़ छूट गई है तो वह संवाददाता से मिलकर उसमें सुधार कर सकता है। एक अच्छे अखबार में एक या दो डेस्ककर्मियों को स्वास्थ्य संबंधी खबरों के क्षेत्र में विशेषज्ञता हासिल करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इससे स्वास्थ्य और चिकित्सा संबंधी खबरों की गुणवत्ता बेहतर बनती है।

डेस्ककर्मी में इस बात की क्षमता होनी चाहिए कि वह यह पहचान कर सके कि स्वास्थ्य से जुड़े मसलों पर एजेंसी से आने वाली खबरों में कौनसी खबरें ज़्यादा महत्वपूर्ण हैं और उन्हें उसी क्रम में महत्व देते हुए संपादित करवाना चाहिए। यदि कोई खबर इतने ज़्यादा महत्व की है कि उसे पहले पन्ने पर स्थान

दिया जाना चाए या फिर उसे पूर्ण पैकेज के साथ पृष्ठभूमि से संबंधित सामग्री देते हुए उससे जुड़ी सहायक खबरों के बॉक्स के साथ प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत करना चाहिए। उस खबर के बारे में संपादक और समाचार संपादक को अलर्ट कर देना चाहिए जिससे कि खबर को अच्छी तरह से डिस्पले किया जा सके और उससे संबंधित फोटोग्राफ तलाश किए जा सकें और लाइब्रेरी से या इंटरनेट सर्च के जरिये उस खबर में दिए गए पहलुओं से संबंधित आंकड़े तलाश कर ग्राफिक बनवाया जा सके। खबर की पहचान कर उसके तुरंत बाद सक्रिय होने से ही इस तरह की प्लानिंग संभव है। संपादकीय स्तर पर इस बारे में कोई फैसला लेने के तुरंत बाद इस मसले पर लेआउट आर्टिस्ट को भी विशेष लेआउट तैयार करने के लिए कहा जा सकता है।

अखबार में अक्सर ही स्पेस की कमी होती है और कई बार स्वास्थ्य संबंधी खबरों के लिए उतनी जगह नहीं मिल पाती जितना कि हम चाहें। ऐसे में खबरों का कुशल संपादन बहुत ही आवश्यक हो जाता है। खबरों को इस तरह से संक्षिप्त और संपादित किया जाना चाहिए कि उनमें मूल और महत्वपूर्ण बातें बनी रहें।

एक अच्छे डेस्ककर्मी में इस बात की भी योग्यता होनी चाहिए कि वह किसी विषय पर विभिन्न स्थानों से आने वाली खबरों को एकसाथ मिलाकर उसे राष्ट्रीय स्तर की संपूर्ण खबर का स्वरूप दे सके। उदाहरण के लिए यदि नकली दवाइयों के बारे में देश के विभिन्न केंद्रों से रिपोर्ट मंगाई गई हैं तो उन्हें एक साथ क्लब कर राष्ट्रीय स्तर की खबर बनानी चाहिए जिससे कि विभिन्न केंद्रों से प्राप्त जानकारियों को एक ही खबर में प्रस्तुत किया जा सके।

एक अच्छे डेस्कर्मी का यह दायित्व है कि वह स्वास्थ्य से संबंधित किसी खबर में भ्रामक तथ्य न जाने दें। उसमें दिए गए तथ्यों और आंकड़ों की भलीभांति पड़ताल करे जिससे कि पाठक तक किसी भी तरीके से भ्रामक जानकारी न पहुंचे। किसी भी खबर की तरह स्वास्थ्य संबंधी खबरों की प्रामाणिकता की मूल जिममेदारी संवाददाताओं की होती है लेकिन यह डेस्क पर कार्यरत कॉपी संपादकों की भी जिममेदारी है कि वे जल्दबाजी में लिखे गए गलत तथ्यों को सुधारें। एक कॉपी संपादक यह कहकर अपनी जिममेदारी से नहीं बच सकता कि संवाददाता ने गलत तथ्य लिखा था, इसलिए वह कुछ नहीं कर सकता।

3.4 संवाददाता का काम

स्वास्थ्य संबंधी खबरें देने वाले संवाददाता की भूमिका बड़ी ही महत्वपूर्ण होती है। किसी भी अखबार या पत्रिका में उसी की कार्यशैली तय करती है कि वह अखबार स्वास्थ्य पत्रकारिता के लिहाज से किस गुणवत्ता का है।

एक अच्छे स्वास्थ्य संवाददाता को चाहिए कि वह सबसे पहले अपनी बीट यानी कार्यक्षेत्र से से संबंधित सरकारी विभागों, गैरसरकारी संगठनों, शोध संस्थानों, विभिन्न अस्पतालों और विशेषज्ञों और चिकत्सा और स्वास्थ्य से जुड़े विभिन्न लोगों के बारे में जाने और इनमें से बहुत से लोगों के साथ अपना संपर्क बनाए। यही जानकारी संवाददाता को अपना काम भलीभांति अंजाम देने में मदद करती है और वह बड़ी तेजी के साथ किसी भी खबर की तह तक पहुंच सकता है।

संवाददाता के लिए ज़रूरी है कि वह जाने कि स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय किस तरह से काम करता है। स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के चारों विभाग अपने-अपने सचिवों के तहत किस तरह से काम करते हैं और उनकी जिममेदारियां क्या हैं। संवाददाता को स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग, आयुष विभाग, स्वास्थ्य शोध विभाग और एड्स नियंत्रण विभाग के कामकाज की जानकारी लेने के साथ ही और उनमें कार्यरत अधिकारियों से संपर्क भी साधना चाहिए जिससे कि इन विभागों के फैसले और उनमें चल रही गतिविधियों की उन्हें समय रहते ही जानकारी मिल सके। संवाददाता को स्वासथ्य सेवाओं के महानिदेशक कार्यालय से भी संपर्क रखना चाहिए क्योंकि उसके दफ्तर पूरे देश में हैं और वह ही चिकित्सा और जन स्वास्थ्य के मसलों पर तकनीकी परामर्श देता है और विभिन्न सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं पर अमल में उसकी भूमिका होती है।

संवाददाता को यह भी याद रखना चाहिए कि भारत में स्वास्थ्य का मसला राज्यों के अधीन है हालांकि मुखय नीति, ढांचा और सहयोग केंद्र द्वारा प्रदान किया जाता है। हर राज्य अपने क्षेत्र में लोगों के स्वास्थ्य की देखभाल और विभिन्न स्वास्थ्य योजनाओं पर अमल के लिए उत्तरदायी होता है। केंद्र द्वारा तय स्वास्थ्य लक्ष्यों को हासिल करने के क्रम में राज्य अपने खुद का मॉडल तैयार करते हैं। संवाददाताओं को अपने इलाके के कुछ प्रमुख अस्पतालों के संचालकों और वहां के विशेषज्ञ डॉक्टरों से भी संपर्क में रहना चाहिए जिससे कि किसी भी नई गतिविधि की जानकारी मिलने के साथ ही संवाददाता किसी भी मसले पर उनकी राय को तुरंत जान सके।

चिकित्सा परामर्श से जुड़े किसी भी मसले पर सामग्री देते वक्त संवाददाताओं को चाहिए कि वे तथ्यों की अच्छी तरह से पड़ताल कर लें। यदि किसी जानकारी को लेकर भ्रम है तो उस बारे में विशेषज्ञ से

ज़रूर संपर्क करना चाहिए क्योंकि गलत जानकारी के चलते लाखों पाठकों तक भ्रामक जानकारी पहुंच सकती है।

गोष्ठी और कार्यशालाओं की रिपोर्टिंग करते वक्त संवाददाता को ध्यान में रखना चाहिए कि वह गोष्ठी में उद्घाटन भाषण को अपनी रिपोर्ट का विषय बनाने के साथ ही उस विषय को भी प्रमुखता के साथ उठाए जिस पर गोष्ठी की जा रही है। ऐसे विषयों में गोष्ठी में शामिल विशेषज्ञों बातचीत के आधार पर गोष्ठी के महत्वपूर्ण पहलुओं और उनका आम पाठकों के लिए क्या महत्व है, इस पर चर्चा की जा सकती है।

किसी भी क्षेत्र में लगातार आने वाली तब्दीलियां खबर बनती हैं। संवाददाता को चिकित्सा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में आ रहे निरंतर परिवर्तनों पर अपनी नज़र रखनी चाहिए। इस क्षेत्र में बाज़ार में आने वाली नई दवाएं और उनके परीक्षण, प्रतिकूल परीक्षणों के चलते प्रतिबंधित की जाने वाली दवाओं के विवरण, विभिन्न दवाओं के बारे में विश्व के अन्य देशों की दवा नियमन एजेंसियों का रूख और भारत में मौजूदा स्थिति की जानकारी रखनी चाहिए और पाठकों को इन दवाओं से जुड़े लाभ और खतरों से सावधान करने में सक्रियता दिखानी चाहिए।

लीक से हटकर सोचें: एक अमेरिकी अखबार ने शहर में तेज़ी से बन रहे बहुत से अस्पतालों पर एक नए नज़रिये से खबर प्रकाशित की। जहां दूसरे अखबार इस कदम की यह कहकर प्रशंसा कर रहे थे कि इससे मरीजों को उनके घर के पास ही ज़्यादा चिकित्सा सुविधाएं हासिल होंगीं, वहीं इस अखबार ने पूरे मसले का विश्लेषण इस नज़रिये से किया कि क्या उस इलाके को इतने अस्पतालों की और उनमें उपलब्ध कराए जा रहे बेड की ज़रूरत है। इस अखबार के अनुसार इलाके को शुरुआती चिकित्सा सुविधाओं की ज्यादा आवश्यकता थी न कि इन अस्पतालों द्वारा उपलब्ध कराई जा रहे विशेषज्ञ सेवाओं की। अखबार ने अपने विश्लेषण में साबित किया कि ये अस्पताल इलाके में उसी हालत में लाभ में चल सकते हैं जब ये अपने बेड को खाली न रखने के लिए गैर ज़रूरी ऑपरेशन करें और मरीजों को ज़रूरत न होते हुए भी भर्ती करें। इस तरह के चिकित्सा साधन बढ़ने से इलाके के आम लोगों को फायदा होने के बजाय नुकसान ही होने की आशंका ज़्यादा है। अखबार के विश्लेषण का लाभ हुआ कि अस्पतालों के अंधाधुंध विस्तार कार्यक्रमों पर अंकुश लगा और इस बात पर भी चर्चा की शुरुआत हुई कि कॉरपोरेट अस्पतालों को किस तरह से गैर ज़रूरी ऑपेरशन करने से रोका जाए और इसके लिए किस तरह की आचार संहिता तैयार की जाए।

3.5 विशेष स्वास्थ्य परिशिष्ट

पिछले एक दशक में अखबारों में स्वास्थ्य से ज़ड़े मसलों पर अलग से स्वास्थ्य परिशिष्ट देने की भी शुरुआत हुई है। अंग्रेजी अखबारों में चूंकि पृष्ठ ज़्यादा होते हैं, इसलिए वे इस मामले में हिंदी और अन्य भाषाओं के अखबारों से आगे हैं लेकिन हिंदी अखबार भी स्वास्थ्य से जुड़े मसलों पर खास पृष्ठ पर विशेष सामग्री प्रकाशित करते हैं।

जाहिर है कि विशेष रूप से प्रकाशित किए जाने वाले स्वास्थ्य पृष्ठों की सामग्री आम खबरों से हटकर होती है। हर परिशिष्ट चाहे वह दो या चार पृष्ठ का हो या फिर मात्र एक पृष्ठ का, उसमें एक मुखय फीचर होता है जिसमें चिकित्सा, स्वास्थ्य, फिटनेस आदि से संबंधित किसी मसले को संपूर्ण रूप में उठाया जाता है। उदाहरण के तौर पर समुदाय में लड़कियों द्वारा दुबली-पतली बने रहने के लिए खानपान पर नियंत्रण करने, इसके लिए दवाएं खाने आदि के बढ़ते ट्रेंड पर फीचर जो इस बात की पड़ताल करे कि यह ट्रेंड कितना उचित है और कितना अनुचित। कौन से कारण हैं जिनके चलते यह जोर पकड़ रहा है और कहीं ऐसा तो नहीं कि कुछ खास कंपनियां अपने पैकेज बेचने या अपनी दवाओं की बिक्री बढ़ाने के लिए गलत तरीकों से इस प्रवृत्ति को बढ़ावा दे रही हैं। स्वास्थ्य विशेषज्ञों, मनोवैज्ञानिकों, स्वयं लड़कियों, उनके माता-पिताओं, छरहरी काया के दावा करने वाले लोगों आदि से बातचीत कर और संपूर्ण प्रक्रिया की जानकारी लेकर इस ट्रेंड में छिपे खतरों को उजागर करना और किस तरीके से यह स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं हैं, उन पहलुओं को उजागर करना एक अच्छा स्वास्थ्य फीचर तैयार करेगा जो लोगों की आंखें खोलने का काम करेगा। इस तरह के फीचर के साथ उन लोगों के अनुभव भी साथ में देने चाहिए जो खुद इस तरह के प्रचार का शिकार होकर अपना स्वास्थ्य और धन चौपट कर चुके हों। लेकिन इस तरह के फीचर करते वक्त लेखक या रिपोर्टर को ध्यान रखना चाहिए कि वह खुद किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर अपना लेखन न करें। उसका लेख ज्यादा से ज्यादा लोगों से बातचीत और इंटरव्यू के आधार पर लिखा जाना चाहिए और फिर उन्हें सही स्वरूप में पाठकों के समक्ष रखा जाना चाहिए।

स्वास्थ्य पत्रकारिता चूंकि सनसनीखेज पत्रकारिता से हटकर है, इसलिए ज़रूरी है कि पत्रकार इस तरह के लेख लिखते वक्त उसे रोचक अंदाज में प्रस्तुत करे लेकिन इस क्रम मे तथ्यों से छेड़छाड़ नहीं होनी चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि स्वास्थ्य पत्रकारिता करते वक्त अपनी बात को मनोरंजन पत्रकारिता की तरह मिर्च-मसाला लगाकर पेश न किया जाए।

परिशिष्ट की योजना बनाते समय उसमें मुख्य लेख का साथ देने वाले अन्य छोटे लेख, फोटो, ग्राफिक्स आदि का भी समावेश करना चाहिए। उदाहरण के तौर पर यदि भारत में हृदय रोगों की ताजा सिथति पर

मुख्य लेख है तो साथ में छोटे लेखों के रूप में उन लोगों के अनुभव हो सकते हैं जिन्होंने हृदय रोग होने के बावजूद अपनी जीवनशैली के बूते उसमें सुधार किया। उन लोगों के अनुभव भी हो सकते हैं जिन्होंने लापरवाही बरती ओर उन्हें इसका खामियाजा रोग के और बढ़ने से चुकाना पड़ा। किसी हृदय रोग विशेष का इंटरव्यू साथ में हो सकता है, जिसमें कई तरह के परामर्श दिए जा सकते हैं और पाठकों की भ्रांतियों का समाधान किया जा सकता है।

किसी एक स्तंभ के तहत विशेषज्ञ ऐसे सवालों के जवाब दे सकते हैं जो पाठकों से उस विषय के तहत पहले से ही आमंत्रित कर लिए गए हों। कुछ ऐसे ग्राफिक्स दिए जा सकते हैं जो बताए कि स्थिति कैसे बिगड़ रही है या बेहतर हो रही है। या फिर किस तरह से कौन-सा खानपान रोगों को बढ़ा रहा है या किस तरह के खानपान से हृदय रोग पर अंकुश पाया जा सकता है। दिल का दौरा पड़ने पर तुरंत क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए इस तरह की सामग्री विशेषज्ञ से बातचीत के आधार पर दी जा सकती है। यहां हृदय रोग का उदाहरण दिया गया है लेकिन किसी भी मसले पर योजना बनाते समय इस तरह के छोटे लेखों के बारे में प्लानिंग की जा सकती है। तभी लोगों को कारगर जानकारियां दी जा सकती हैं।

3.6 ऑनलाइन संसाधन

स्वास्थ्य पत्रकारिता के लिहाज से मौजूदा दौर में एक और बड़ा खजाना है ऑनलाइन संसाधन का। याद रहे कि इस संसाधन का इस्तेमाल नकल करने के बजाय आइडिया विकसित करने, तथ्यों की पुष्टि करने, विभिन्न तरह के आंकड़े हासिल करने, चिकित्सा सुविधाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने, विकसित देशों की श्रेष्ठ परिपाटियों को भारत में भी प्रचारित करने के प्रयास और विभिन्न स्वास्थ्य मसलों पर लोगों की राय जानने के लिए किया जा सकता है।

इंटरनेट पर बिखरे चिकत्सा और स्वास्थ्य संबंधी ज्ञान को बिना पुष्टि किए कभी भी प्रकाशित नहीं किया जाना चाहिए। यह ज़रूरी है कि आप तथ्यों की जानकारी किसी आधिकारिक वेबसाइट से ही लें। किसी भी तरह का संशय होने पर उस संगठन से ई-मेल, फोन आदि के जरिये इसकी पुष्टि करें।

स्वास्थ्य पत्रकारिता में संलग्न पत्रकारों, डेस्क और संवाददाताओं, दोनों को ही अपने देश, राज्य और इलाके में सक्रिय चिकत्सा और सेहत से जुड़े संगठनों की वेबसाइट के बारे में जानकारी होनी चाहिए। इससे उन्हें इन संगठनों से जुड़े किसी भी तथ्य की पुष्टि करने में मदद मिलती है। हालांकि नवीनतम तथ्यों

के लिए संगठन से सीधे संपर्क हमेशा बेहतर रहता है क्योंकि कई बार वेबसाइट पर जानकारी पुरानी होने का अंदेशा रहता है। लेकिन इन वेबसाइटों पर इन संगठनों द्वारा पूर्व में किए गए कार्य, योजनाओं का लेखाजोखा, विभिन्न चिकित्सा सुविधाओं और बीमारियों से संबंधित आंकड़े दिए होते हैं जो किसी भी स्वास्थ्य पत्रकार के लिए मददगार हैं।

कुछ प्रमुख वेबसाइटें

http://mohfw.nic.in/, http://en.wikipedia.org/wiki/Healthcare_in_India, http://india.gov.in/citizen/health/health.php

http://www.vhai.org/, http://www.phfi.org/, http://www.unicef.org/india/health.html, http://www.who.int/countries/ind/en/, http://www.mrcindia.org/, http://www.aiims.edu/, http://www.icmr.nic.in/, http://www.cdriindia.org/home.asp, http://www.nacoonline.org/NACO, http://www.idma-assn.org/, http://www.indiaoppi.com/, http://www.tbalertindia.org/, http://www.unaids.org/en/, http://www.npspindia.org/, http://www.ebai.org/html/index.htm, http://www.sankaranethralaya.org/, http://whoindia.org/en/index.htm, http://nlep.nic.in/, http://www.hhs.gov/, http://www.cdc.gov/, http://www.hrsa.gov/index.html

3.7 स्वास्थ्य पर केंद्रित पत्र-पत्रिकाएं

दुनियाभर में स्वास्थ्य और चिकित्सा के मसलों को लेकर बहुत सी पत्रिकाएं प्रकाशित की जा रही हैं। मेन्स हेल्थ और वीमेन्स हेल्थ पत्रिकाएं लोकप्रिय स्वास्थ्य पत्रिकाओं में हैं।

मेन्स हेल्थ पत्रिका अमेरिका और भारत समेत दो दजर्न से ज़्यादा देशों से प्रकाशित हो रही हैं। इसमें पुरुषों के जीवन और स्वास्थ्य से जुड़े मसलों के साथ ही फिटनेस, पोषाहार, सेक्सुएलिटी और जीवनशैली के पहलुओं की भी पड़ताल की जाती है। इन्हें पेन्सिलवैनिया, अमेरिका से रोडेल कंपनी प्रकाशित करती है। इसकी शुरुआत मार्क बिकलिन ने 1987 में की थी। कंपनी की नीति है कि पत्रिका में न तो तंबाकू के विज्ञापन दिए जाएं और न ही शराब के। भारत में इसका संस्करण इंडिया टुडे ग्रुप प्रकाशित कर रहा है। इस पत्रिका के इंटरनेट संस्करण के तीन करोड़ 80 लाख पृष्ठ हर माह देखे जाते हैं

जो इस बात का सबूत है कि पत्रिका प्रिंट संस्करण ही नहीं, ऑनलाइन संस्करण भी बेहद लोकप्रिय है। यह पत्रिका दो दर्जन से जयादा देशों में प्रकाशित की जा रही है जो इसकी बढ़ती लोकप्रियता का सबूत है। इसी तरह रोडेल कंपनी द्वारा ही वीमेन्स हेल्थ पत्रिका की शुरुआत 2005 में की गई। पुरुषों की स्वास्थ्य पत्रिका की तरह यह भी बेहद लोकप्रिय है। इसी की लोकप्रियता को भारत में भी आगे बढ़ाने के लिए इंडिया टुडे ग्रुप ने हाल ही में इसके भारतीय संस्करण का प्रकाशन शुरू किया है।

अमेरिका से ही एक और लोकप्रिय स्वास्थ्य पत्रिका हेल्थ का प्रकाशन होता है। यह पत्रिका जीवन को सेहतमंद रखने के बारे में बहुत सी अहम जानकारियां प्रदान करती है। अमेरिका से ही प्रकाशित होने वाली एक और पत्रिका है प्रवेंशन। इस पत्रिका में स्वस्थ जीवनशैली के अलावा भावनात्मक स्वास्थ्य, प्राकृतिक उपचार, आपसी संबंधों के तानेबाने, पोषक आहार, फिटनेस आदि सभी विषयों पर सामग्री दी जाती है। कनाडा से स्वास्थ्य के मोर्चे पर अलाइव नामक पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है। हर माह प्रकाशित होने वाली इस पत्रिका में स्वस्थ जीवन शैली से संबंधित सभी तरह की सामग्री प्रदान की जाती है। कुछ पत्रिकाएं किसी खास रोग के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से जानकारी प्रदान करती हैं। इनमें डायबिटिक पत्रिका उन रोगियों के लिए लाभकारी सामग्री देती है जो डायबिटीज के शिकार हैं। ऐसे रोगियों को इस बीमारी के बारे में होने वाले नए शोध, सावधानियों आदि के बारे में तुरंत ही जानकारी मिल जाती है। आर्थिराइटिस नामक पत्रिका गठिया रोग से जुड़े विभिन्न पहलुओं को लोगों के सामने प्रस्तुत करती है। इसी तरह से वेट नामक पत्रिका में मोटापे के शकार लोगों के लिए वजन कम करने के तरीके सुझाए गए होते हैं। क्योर नामक पत्रिका कैंसर रोगियों को अहम जानकारी प्रदान करती है।

ज़्यादातर लोकप्रिय पत्रिकाओं की अपनी वेबसाइट भी है जिससे इंटरनेट के जरिये भी लोग इन पत्रिकाओं के सदस्य बन सकते हैं। हेल्थ डॉट कॉम सरल भाषा में लोगों को सेहत से जुड़ी बारिकियों के बारे में बताती है। हर मसल पर यह चिकित्सकीय जानकारी के साथ-साथ विशेषज्ञों के नजरिये, मरीजों के अनुभव, ताज़ा खबरें, कोई भी रोग कैसे और क्यों होता है, इसका अर्थ क्या है और इससे कैसे बचा जा सकता है, आदि जानकारियां देती है। इसमें प्रामाणिक सामग्री देने के लिए संपादक और संवाददाता प्रयासरत रहते हैं जिससे कि बीमारी के संकटपूर्ण और मुश्किल समय के दौरान मरीज और उसके परिवार के लोग सही फैसले ले पाएं। भारत में भी इंटरनेट पर स्वास्थ्य और चिकित्सा के पहलुओं पर सामग्री देने की परंपरा प्रारंभ हो चुकी है। तमाम अखबार और पत्रिकाएं अपनी सामग्री इंटरनेट पर डाल रहे हैं।

3.8 उपसंहार

स्वास्थ्य पत्रकारिता करने वाले पत्रकार को स्थानीय स्तर पर तो पूर्णत: सक्रिय रहना ही होता है, उसे राष्ट्रीय स्तर और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वास्थ्य और चिकित्सा के क्षेत्र में घट रहे घटनाक्रम पर भी नज़र रखनी होती है। इस काम के लिए पत्रकारों को नए मीडिया का इस्तेमाल करने से नहीं चूकना चाहिए। बहुत बार सोशल मीडिया और ई-मेल संपर्क भी पत्रकार को बड़ी खबर की सूचना देने और उसे विकसित करने में सहायक साबित हो सकते हैं।

एक अच्छी हेल्थ रिपोर्ट तैयार करने के लिए किसी भी पत्रकार को पहले स्वास्थ्य से जुड़े उस मसले की मूल बातों को समझना चाहिए जिससे कि वह विशेषज्ञों, सरकारी अधिकारियों, मरीजों से इंटरव्यू करते वक्त सही सवाल पूछ सके। अक्सर एक बढ़िया और कामचलाऊ रिपोर्ट में यही अंतर होता है कि संवाददाता ने रिपोर्ट के लिए जाने से पहले अपना होमवर्क किया या नहीं। होमवर्क न करने की स्थिति में अक्सर पत्रकार वे सवाल नहीं पूछ पाते जो पूछे जाने चाहिए और रिपोर्ट में गहराई नहीं आ पाती। पत्रकारों को इसके लिए व्यापक रूप से तैयारी करनी चाहिए और पहले से पूरी तैयारी करनी चाहिए।

3.9 शब्दावली

स्वास्थ्य पत्रकारिता: इसका दायरा सिर्फ अस्पतालों, डॉक्टरों और दवा कंपनियों तक ही सीमित नहीं है। खानपान की शैली, गुणवत्ता और हमारे स्वास्थ्य पर उनके प्रभाव, खानपान के क्षेत्र में सक्रिय कारोबारियों के गलत दावों की पोल खोलने, स्वच्छ जल की उपलब्धता न होने के कारण महामारियों के फैलने की आशंका से लेकर मच्छरों की रोकथाम के जरिये डेंगू और मलेरिया जैसी बीमारियों से बचाव भी इसके दायरे में आते हैं।

स्वास्थ्य परिशिष्ट : विभिन्न रोगों और बीमारियों की रोकथाम के लिए अखबारों में अलग से कुछ पृष्ठों में जानकारियां दी जाती हैं।

3.10 संदर्भ ग्रंथ/पुस्तकें

1. पाण्डेय, डॉ. पृथ्वीनाथ, (2004), पत्रकारिता: परिवेश एवं प्रवृत्तियां, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

2. विभिन्न समाचार पत्रों की कतरनें।

3. www.youthjournalism.org/

4. www.rakshakfoundation.org/

3.11 लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न-1 स्वास्थ्य पत्रकारिता के प्रमुख उद्देश्यों को रेखांकित करें।

प्रश्न-2 भारत में स्वास्थ्य पत्रकारिता को लेकर टिप्पणी करें।

प्रश्न-3 अखबार में स्वास्थ्य की खबरों को लेकर डेस्क कर्मी को क्या सावधानियां बरतनी चाहिए।

प्रश्न-4 स्वास्थ्य प्रधान खबरों को लेकर संवाददाता को कितना सतर्क रहना चाहिए। स्पष्ट करें।

प्रश्न-5 अखबारों के स्वास्थ्य परिशिष्ट को लेकर कौन-कौन से बिंदुओं का ध्यान रखना चाहिए।

प्रश्न-6 अपने पड़ोस में स्थिति किसी डॉक्टर का साक्षात्कार करें।

3.12 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न-1 स्वास्थ्य पत्रकारिता के लिए वेबसाइटें एक मुफीद हथियार हैं। टिप्पणी करें और उदाहरण दें।

प्रश्न-2 किसी एक स्वास्थ्य पत्रिका में छपने वाली स्वास्थ्य सामग्री का विश्लेषण करें।

प्रश्न-3 क्या स्वास्थ्य पत्रकारिता को सनसनीखेज बनाना उचित रहेगा। उदाहरण देकर स्पष्ट करें।

प्रश्न-4 अपने आसपास फैलने वाली किसी एक संक्रामक बीमारी को दूर करने के लिए एक लेख में आलोचनात्मक टिप्पणी कीजिए।

प्रश्न-5 स्वास्थ्य संबंधी एक टीवी विज्ञापन की लाभ-हानि को लेकर कमेंट करें।

इकाई-4

ग्रामीण जगत और मीडिया

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 ग्रामीण पत्रकारिता : एक परिचय

4.4 ग्रामीण पत्रकारिता का संक्षिप्त इतिहास

4.5 ग्रामीण विकास और पत्रकारिता

4.6 ग्रामीण पत्रकारिता का वर्तमान स्वरूप

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

वर्तमान युग पत्रकारिता का युग है। यह विकास का एक महत्वपूर्ण हथियार है, जिसके माध्यम से हम विकास के सभी पहलुओं को छूने की कोशिश कर सकते हैं। हम यह जानते हैं कि भारत का अधिकतर हिस्सा ग्रामीण है, इसलिए देश की विकास नीतियों पर इसका प्रभाव अधिक है। यदि भारत के ग्रामीण क्षेत्र विकसित होंगे तो देश स्वत: ही विकास की राह में आगे बढ़ेगा। ग्रामीण पत्रकारिता के माध्यम से हम ग्रामीण क्षेत्रों को आज की वैश्विक दुनिया से जोड़ सकते हैं. विश्व की आधुनिक विकास दौड़ में शामिल होने के लिए मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है। और यदि यह भूमिका ग्रामीण स्तर पर हो तो इसका प्रभाव कई गुना बढ़ जाता है. इस इकाई में ग्रामीण पत्रकारिता का संक्षिप्त इतिहास, परिचय एवं वर्तमान स्वरूप के बारे में शिक्षार्थियों को समझाने की कोशिश की जायेगी।

4.2 उद्देश्य

ग्रामीण पत्रकारिता, पत्रकारिता की एक महत्वपूर्ण विधा है, जिसका प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों के विकास से सीधे रूप से जुड़ा है। इसलिए इस विधा की जानकारी पत्रकारिता के शिक्षार्थियों को देनी आवश्यक है। **इकाई से आप** –

- ग्रामीण पत्रकारिता के स्वरूप के बारे में जान सकेंगे.
- ग्रामीण पत्रकारिता का इतिहास क्या रहा है?
- इस विधा का उद्देश्य क्या है?
- और ग्रामीण पत्रकार बनने के लिए आप क्या कर सकते हैं?

4.3 ग्रामीण पत्रकारिता : एक परिचय

ग्रामीण-पत्रकारिता एक ऐसा विषय है, जिसकी परिभाषा अभी तक स्पष्ट नहीं हो पायी है। गांव से निकलने वाले पत्रों को ग्रामीण-पत्रकारिता के अंतर्गत रखा जाय या गांवों में पढ़े जाने वाले पत्रों को या फिर गांवों के बारे में छापे जाने वाले पत्रों को? हो सकता है कि गांव से निकलने वाले पत्र गांव के समाचार न छापकर अपराध व राजनीति की ही चर्चा करते हों या शहर से प्रकाशित होने वाले कुछ पत्र ऐसे हों कि जिनकी पाठक-संख्या गांवों में ही हो। तीसरी श्रेणी में वे पत्र आते हैं जो खेती, किसानी, पशुपालन, पंचायती राज, सहकारिता आदि के बारे में लेख व समाचार प्रकाशित करते हैं, चाहे वे कहीं

भी पढ़े जाते हों। पिछले कुछ दशकों में कुछ प्रमुख कृषि पत्रकारों ने इस परिभाषा को स्पष्ट किया था। पत्रकारिता के जानकारों का मानना है कि जिन समाचार-पत्रों में 40 प्रतिशत से अधिक सामग्री, गांवों के बारे में प्रकाशित हो, उसे ग्रामीण पत्रकारिता कहेंगे। ये समाचार कृषि, पशुपालन, बीज, खाद, कीटनाशक, पंचायती राज, सहकारिता और ग्राम्य जीवन आदि विषयों पर हों या गांव की अन्य मूलभूत समस्याओं पर।

यह जरूर है कि कृषि पत्रकारिता का स्वरूप ग्रामीण पत्रकारिता से अलग है लेकिन यह भी सत्य है कि ग्रामीण पत्रकारिता का उद्भव कृषि पत्रकारिता से ही हुआ है। इसका कारण यही है कि पहले ग्रामीण परिवेश पूर्णत: कृषि पर ही आधारित होता था। ग्रामीण विकास कृषि पर निर्भर करता था और गांव के जीवन को आवाज देना ही ग्रामीण पत्रकारिता का उद्देश्य रहा है, इसलिए कृषि से सम्बन्धित समाचारों/सूचनाओं व जानकारियों को पत्रों के माध्यम से किसानों तक पहुंचाया जाना भी अब ग्रामीण पत्रकारिता के अंतर्गत आता है।

4.4 ग्रामीण पत्रकारिता का संक्षिप्त इतिहास

ग्रामीण पत्रकारिता की शुरूआत कृषि विकास को लेकर हुई है, इसलिए ग्रामीण पत्रकारिता का इतिहास भी कृषि पत्रकारिता से जुड़ा है। विश्व में सर्वप्रथम वर्ष 1743 में फ्रांस ने 'पेरिस किसानी गजट' नाम से फ्रांसीसी भाषा में ग्रामीण पत्र प्रकाशित किया। इसी प्रकार भारत में पहला कृषि पत्र 'कृषि सुधार' वर्ष 1914 में और 'कृषि' वर्ष 1918 में पहली बार आगरा से प्रकाशित हुये। पहले पत्र के संपादक बंशीधर तिवारी थे। वर्ष 1918 के बाद वर्ष 1934-35 में बंगाल में कृषि संबंधी पत्र-पत्रिकाएं बंगला भाषा में छपी और अंग्रेजी में वर्ष 1940 में 'फार्मर' तथा 'एग्रीकल्चर गजट' नामक पत्र निकले। इसके बाद तो कृषि-शोध और वैज्ञानिक तथ्यों, किसान संबंधी कानूनों, पंचायती राज, सहकारिता आदि विषयों के प्रचार-प्रसार के लिए विभिन्न भाषाओं में और हिंदी में भी कृषि-पत्रों का प्रकाशन आरंभ हो गया। इनमें सरकारी और गैर-सरकारी दोनों ही प्रकार के पत्र थे। सरकारी पत्रों में 1946 में 'खेती' और 1950 में 'कुरूक्षेत्र' पत्रों का प्रकाशन हुआ।

उधर, गैर सरकारी क्षेत्र में 1946 में नागपुर से 'कृषक जगत' और 1948 में बंगाल में 'फार्म जर्नल' का कलकत्ता से प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। नई दिल्ली से प्रकाशित 'आज की खेती', विस्तार निदेशालय, कृषि मंत्रालय, नई दिल्ली से प्रकाशित 'गोसंवर्द्धन' मासिक पत्रिका, बिहार राज्य सहकारी संघ पटना द्वारा

प्रकाशित 'गांव', इलाहाबाद से प्रकाशित मासिक 'ग्राम भूमि', जयपुर से प्रकाशित 'कृषि विकास', उत्तर प्रदेश सहकारी संघ द्वारा लखनऊ से प्रकाशित 'किसानोत्थान' मासिक, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद नई दिल्ली से प्रकाशित 'खेती', कानपुर से प्रकाशित पाक्षिक 'कृषि प्रगति', दिल्ली से प्रकाशित 'प्रौढ़ शिक्षा', 'सेवाग्राम' आदि पत्रों ने ग्रामीणों के लिए उपयोगी सामग्री प्रदान की है।

1970 से दैनिक पत्रों में भी 'कृषि स्तम्भ' चलाने की होड़-सी लग गयी। राज्यों में प्रकाशित होने वाले लगभग सभी बड़े दैनिकों ने कृषि पृष्ठ और 'स्तंभ छापने शुरू कर दिये। 'आज', 'अमर उजाला', 'नवभारत', 'नई दुनिया', 'देशबंधु', नवज्योति', 'राजस्थान पत्रिका' और 'दैनिक आर्यावर्त' आदि पत्रों ने खेती के स्तंभ साप्ताहिक रूप से छापे तो देश के शीर्ष दैनिक 'नवभारत टाइम्स' और 'हिंदुस्तान' ने भी ग्राम जगत, कृषि-चर्चा और कृषि-उद्योग स्तंभों को चलाकर इस परंपरा को जीवित रखा। इनके प्रकाशन का उद्देश्य किसानों को उचित सूचनाएं देना और ग्राम जीवन को उभारना है। मगर इनसे गांवों तक कृषि तकनीक का प्रचार भी निरंतर हुआ।

1973 में 'ग्रामीण समाचार पत्र संघ' की स्थापना हुई। इसके सदस्य केवल ग्रामीण समाचार पत्र के प्रकाशक ही बन सकते हैं। इसका उद्देश्य ग्रामीण पत्रों के स्तर को ऊंचा करना, विज्ञापन के लिए सामूहिक प्रयत्न करना तथा सभी कठिनाइयों पर एक साथ बैठकर विचार करना है। उत्तराखण्ड में यदि देखा जाय तो यहां भी 'उत्तराखण्ड ग्रामीण पत्रकार संघ' है जो पहाड़ी व ग्रामीण क्षेत्र से प्रकाशित पत्र/पत्रिकाओं से जुड़े पत्रकारों का संगठन है। आज तो अधिकतर पत्र/पत्रिकाएं ग्रामीण क्षेत्रों से प्रकाशित हो रही हैं। इसके साथ ही सभी समाचार पत्रों में स्थानीयकरण की जो परम्परा चली है उसने ग्रामीण क्षेत्र की सभी पहलुओं को छूने की कोशिश की है। पत्रों के स्थानीयकरण से आज ग्रामीण क्षेत्र की सभी समस्याएं इनमें प्रकाशित होती रहती हैं। जिससे सरकार और जनता के बीच एक संवाद बना रहता है, जिसके चलते इन समस्याओं का निराकरण भी होता रहता है।

4.5 ग्रामीण विकास और पत्रकारिता

ग्रामीण विकास का प्रश्न हमारे देश के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अभी भी तीन चैथाई के लगभग भारत को ग्रामीण भारत के रूप में निरूपित किया जाता है। ग्रामीण समाजिक-आर्थिक परिस्थितियां राष्ट्रीय सूचकांकों को भी प्रभावित करती हैं। कृषि की विकास दर और उत्पादकता से देश की जीडीपी प्रभावित होती है। ग्रामीण आबादी की गतिशीलता से शहरी भारत की जनसंख्या संरचना निर्धारित की

जाती है। ग्रामीण विकास किसी भी सरकारी बजट या पंचवर्षीय योजना की सर्वोच्च प्राथमिकता के रूप में निरूपित किया जाता है।

ग्रमीण विकास का प्रश्न स्वतन्त्रता के पश्चात से ही हमारे नीति नियन्ताओं के लिए महत्वपूर्ण रहा है। स्वतंत्रता से पूर्व महात्मा गांधी ने स्वराज्य की परिकल्पना को ग्राम स्वराज से जोड़कर देखा था। ग्रामीण स्वावलम्बन को देश के विकास के मूलमंत्र के रूप में देखा जाता है। ग्रामीण विकास के लक्ष्यों को हासिल करने में जनसहभागिता और जन जागरूकता की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसमें जनमाध्यमों की भूमिका अत्यन्त उपयोगी है। ग्रामीण विकास तथा रूपान्तरण में जनमाध्यमों ने अपनी प्रभावी भूमिका सिद्ध की है। साइट का अनुभव, खेड़ा डेवलपमेन्ट प्रोग्राम, झाबुआ बस्तर प्रोजेक्टर सामुदायिक टीवी तथा रेडियो का विकास तथा जनसूचना में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अभी भी हम ग्रामीण विकास के लक्ष्यों से दूर हैं। तमाम प्रयत्नों के बावजूद बहुत से गाँव बुनियादी सुविधाओं- सड़क परिवहन, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा, कुटीर उद्योग व विपणन सुविधाएं बैंकिंग सेवा शिक्षा बिजली एवं परिष्कृत ऊर्जा, स्वच्छ पेयजल से वंचित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की सम्भावनाएं भी असंगठित तथा प्रारम्भिक अवस्था में हैं।

1- ग्रामीण विकास का अर्थ

ग्रामीण विकास में ग्रामीण जनसंख्या एवं ग्रामीण क्षेत्र, कृषिक्षेत्र तथा कृषि आधारित उद्योग धन्धों का विकास समाहित है। ग्रामीण विकास के विविध पक्षों को हम निम्न रूप से स्पष्ट कर सकते हैं।

क. सांस्कृतिक विकास: इसमें साक्षरता में वृद्धि, जातीय व क्षेत्रीय मानसिकता का निर्मूलन, रूढ़ियों से मुक्ति, जनमाध्यमों का प्रचार-प्रसार, वैज्ञानिक चेतना का विकास, स्त्री व बाल विकास, महिला शिक्षा आदि समाहित किये जाते हैं।

ख. आर्थिक विकास: ग्रामीण आर्थिक विकास में कृषि को ज्यादा लाभ्दायक बनाना, उर्वरता प्रबंधन, ग्रामीण उद्योग धंधों का विकास, ग्रामीण रोजगार सृजन आर्थिक स्वावलम्बन, कृषि आधारित उद्यमों व व्यवसायों का विकास आदि शामिल किये जाते हैं।

ग. राजनीतिक विकास: इसमें मुख्यरूप से पंचायतीराज व्यवस्था का सशक्तीकरण तथा उसमें सभी वर्गों की भागीदारी समाहित की जाती है.

घ. बुनियादी सुविधाओं का विकास: इसके अंतर्गत सड़क, ग्रामीण परिवहन व्यवस्था का विकास पेयजल उपलब्धता, स्वास्थय सुविधाओं की उपलब्धता, बिजली की उपलब्धता, संचार साधनों की उपलब्धता आदि को शामिल किया जाता है।

ड. कृषि का विकास: इसमें कृषि को व्यापारिक स्वरूप प्रदान करना, सिचाई, सुविधाओं का विस्तार, नवाचारों का प्रसरण, उन्नत खाद व बीज का प्रयोग, कृषि का यंत्रीकरण, कृषि विपणन एवं बैकिंग को बढ़ावा देना, ट्रक फार्मिंग को बढ़ाना, बागवानी, कृषि, कृषि अनुसंधान व उसका क्रियान्वयन आदि समाहित किये जाते हैं।

च. मानव संसाधन विकास: कृषि क्षेत्र में अकुशल श्रम को कुशल श्रम में बदलना पारम्परिक देशों को आधुनिक तकनीकी कौशल से सुसजिज्त करना, कौशल उच्चीकरण, प्रशिक्षण आदि इसमें सम्मिलित किऐ जाते हैं। इनके अतिरिक्त भारत में ग्रामीण क्षेत्र अभी भी तुलनात्मक रूप से पिछड़ा हुआ है। विकास योजनाओं की शुरूआत से ही ग्रामीण क्षेत्रों के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाता है जिससे वहां रहने वालों की सामाजिक आर्थिक स्थिति सुधारी जा सके।

2. ग्रामीण विकास में संचार का उपयोग

ग्रामीण विकास एवं रूपान्तरण की प्रक्रिया में संचार की उपयोगिता अत्यन्त महत्वपूर्ण है। लोगों को शिक्षित करने, चर्चा के उचित बिन्दुओं से परिचित कराने, विकास कार्यक्रमों से जोड़ने के लिए संचार नियोजित व्यवस्था एक अनिवार्य आवश्यकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में विकास के लिए जरूरी जनमत निर्मित करने तथा वैज्ञानिक चेतना के विकास में भी संचार की महत्वपूर्ण भूमिका है। ग्रामीण क्षेत्र और ग्रामीण जनता परम्परागत समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। समाज के नये मूल्यों को स्वीकार करने का कार्य धीरे-धीरे होता है। ऐसे समाज रूढ़ियाँ तो नितान्त असभ्य तथा मानवाधिकारों की विरोधी होती है। रूढ़िवादी समाज अपनी पहले की स्थिति में परिर्वतन के प्रयासों को सहज रूप में स्वीकार नहीं करता। ऐसे में यह आवश्यक होता है कि उनके विचार में परिवर्तन लाया जाये।

वैचारिक परिर्वतन का यह कार्य संचार की प्रभावी रणनीति बनाकर और उसे सफलतापूर्वक क्रियान्वित कर के किया जा सकता है। बेहतर संचार नियोजन से ग्रामीण समाज अपनी बंद खिड़कियां खोलता है। दुनिया में हो रही तरक्की तथा बदलावों को स्वीकार कर स्वयं भी बदलाव की ओर उन्मुख होता है। संचार के बदलाव ने ग्रामीण विकास तथा रूपान्तरण में सदैव अग्रिम भूमिका निभाई है। नवाचारों के प्रसरण में भी संचार की प्रभावी भूमिका रही है। संचार रिक्तता तथा वर्तमान समय में *डिजिटल डिवाइड*

पिछड़ेपन के पर्याय माने जाते हैं। इसलिए विकास कार्यक्रमों का एक प्रमुख लक्ष्य यह भी है कि वह ग्रामीण क्षेत्रों में संचार रिक्तता की स्थिरता की स्थिति को समाप्त करें। सूचना को अब ग्रामीण विकास के लिए भी आवश्यक माना जाने लगा है तथा यह प्रयास किया जा रहा है कि सूचना तथा संचार की प्रभावी व्यवस्था ग्रामीण इलाकों में भी प्रभावी हो।

3. ग्रामीण विकास में संदेश निर्माण

ग्रामीण जनता में जागरूकता लाने तथा उन्हें विकास की जानकारी देने, विकास के लिए प्रेरित करने तथा विकास के लिए जरूरी जनमत तैयार करने की दृष्टि से ग्रामीण संदेशों का अहम स्थान है। सरकार ने हमेशा से ही विविध लोक लुभावन संदेशों के माध्यम से ग्रामीण विकास के विविध कार्यक्रमों के प्रचार प्रसार का संयोजन किया है। कुछ संदेश तो अत्यंत लोकप्रिय रहे हैं। *अधिक अन्न उपजाओ, जय जवान-जय किसान, छोटा परिवार सुखी परिवार, जल ही जीवन है, दो बूंद जिन्दगी की* आदि अनेक लोकप्रिय संदेशों का ग्रामीण चेतना निर्मित करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ग्रामीण संदेश का निर्धारण एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। किस प्रकार संदेश तैयार किया जाए कि ग्रामीण जनता को तुरंत समझ में आ जाये तथा वह उसे आसानी से स्वीकार कर ले। ग्रामीण जनसंख्या की अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषताएं होती हैं। संदेश में यह तथ्य अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। हम संक्षेप में ग्रामीण विकास संदेश के प्रमुख निर्धारक बिन्दुओं को निम्न प्रकार से अभिव्यक्त कर सकते हैं।

1. संदेश सरल तथा सुबोध होना चाहिए।
2. संदेश की पृष्ठभूमि ग्रामीण परिवेश के अनुकूल होनी चाहिए।
3. संदेश के रोल मॉडल या कम्यूनिकेटर ग्रामीण क्षेत्रों में स्वीकार्य होने चाहिए।
4. संदेश की भाषा में स्थानीयता का पुट होना चाहिए।
5. चित्रात्मकता संदेश को और आकर्षक बना सकती है।
6. संदेश को ज्यादा लंबा या जटिल संरचना वाला नहीं होना चाहिए।
7. संदेश को माध्यम के अनुकूल होना चाहिए।

4. ग्रामीण विकास संदेश के लिए माध्यम चयन

ग्रामीण विकास के संदेशों के प्रभावी निरूपण में माध्यमों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। माध्यम चयन करते समय ग्रामीण क्षेत्रों में उनकी स्वीकार्यता तथा पहुंच का ध्यान रखना चाहिए। दृश्य-श्रव्य माध्यम

ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष रूप से उपयोगी होता है। इसके अतिरिक्त स्थानीय स्तर पर प्रभावशाली परम्परागत माध्यमों का भी प्रयोग किया जाना चाहिए।

क. परंपरागत माध्यम: परंपरागत माध्यम अब भी ग्रामीण क्षेत्रों में लोकप्रिय है। चूंकि ये माध्यम लोक से जुड़े हैं, अतः लोक विश्वास भी इन्हें हासिल है। लोक से इन माध्यमों के जुड़ाव का फायदा विकास संदेशों को भी अवश्य उठाना चाहिए। परम्परागत माध्यमों का चयन स्थानीय आधार पर किया जाना चाहिए। इन माध्यमों का चयन कर संदेशों को भी उनके अनुरूप ही विकसित करना चाहिए। यह परम्परागत माध्यम जिस प्रकार की प्रस्तुतियां करते हैं, संदेशों को भी उसी रूप में प्रस्तुत करना चाहिए।

ख. आधुनिक माध्यम: आधुनिक माध्यमों का चयन सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। रेडियो तथा टीवी सर्वग्राह्य माध्यम हैं। इनका उपयोग लाभदायक होता है। जहाँ बिजली नहीं है, वहां रेडियो तथा जहाँ बिजली व टीवी प्रसारण सुविधा उपलब्ध है, वहाँ टीवी प्रभावी माध्यम है। सिनेमा व वीडियो का प्रयोग आउटडोर संदेशों के लिए किया जाना चाहिए, इसके अतिरिक्त आवश्यकतानुसार अखबार, पोस्टर, बैनर, वाल पेन्टिंग, पैनल राइडिंग आदि का भी प्रयोग किया जा सकता है।

5. ग्रामीण विकास एवं आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी:

आधुनिक सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का ग्रामीण विकास में प्रभावी उपयोग शुरू कर दिया गया है। ई-गवर्नेंस के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए यह जरूरी भी है कि आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी का लाभ ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुँचया जाय। ग्रामीण विकास में जहाँ प्रयोग शुरू हुआ है वहाँ सुचना एवं संचार प्रौद्योगिकी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। उपजों की जानकारी, कम्प्यूटरीकृत किसान वही राजस्व की जानकारी, बाजार दर की जानकारी, कृषि सूचना सेवा, भूमि रिकार्डो का लेखा-जोखा आदि कार्य इसके द्वारा प्रभावी ढंग से किए जा रहे हैं। भारत में इस दृष्टि से किये गये प्रयोग उत्साह जनक रहे हैं। केरल, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, तमिलनाडु आदि में भी इसकी प्रभावी व्यवस्था की गयी है।

4.6 ग्रामीण पत्रकारिता का वर्तमान स्वरूप

यह जरूर है कि ग्रामीण पत्रकारिता का उद्भव कृषि विकास को लेकर हुआ है, लेकिन अब यह विस्तृत रूप ले चुका है। आज ग्रामीण पत्रकारिता- गांव की राजनैतिक हलचलें, पंचायती राज, बिजली, पानी, सड़क, शिक्षा, स्वास्थ्य, जन जागरूकता आदि विकास के मुद्दों को लेकर भी कार्य कर रही है। भारत को

जहां एक ओर कृषि प्रधान देश कहा जाता है, वहीं भारत की लगभग 80% आबादी ग्रामीण इलाक़ों में रहती है, देश की बहुसंख्यक आम जनता को खुशहाल और शक्तिसंपन्न बनाने में पत्रकारिता की निर्णायक भूमिका हो सकती है।

सूचना का अधिकार: सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के जरिए नागरिकों को सूचना के अधिकार से लैस करके उन्हें शक्ति-संपन्न बनाने का प्रयास किया गया है। लेकिन जनता इस अधिकार का व्यापक और वास्तविक लाभ पत्रकारिता के माध्यम से ही उठा सकती है, क्योंकि आम जनता अपने दैनिक जीवन के संघर्षों और रोजी-रोटी का जुगाड़ करने में ही इस क़दर उलझी रहती है कि उसे संविधान और कानून द्वारा प्रदत्त अधिकारों का लाभ उठा सकने के उपायों को अमल में लाने की चेष्टा करने का अवसर ही नहीं मिल पाता। सूचना का अधिकार मीडिया के लिए एक जादुई हथियार साबित हुआ है, जिन तथ्यों को जुटाने के लिए उसे कठिन संघर्ष करना पड़ता था, आज वह घर में बैठकर मात्र 10 रूपये में प्राप्त कर लेता है, और ग्रामीण क्षेत्र के पत्रकारों के लिए तो यह वरदान साबित हुआ है क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में सुविधाओं का अधिक टोटा रहता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में अशिक्षा, गरीबी और परिवहन व्यवस्था की बदहाली की वजह से समाचार पत्र-पत्रिकाओं का लाभ सुदूर गाँव-देहात की जनता नहीं उठा पाती। बिजली और केबल कनेक्शन के अभाव में टेलीविज़न भी ग्रामीण क्षेत्रों तक नहीं पहुँच पाता। ऐसे में रेडियो ही एक ऐसा सशक्त माध्यम है जो सुगमता से सुदूर गाँवों-देहातों में रहने वाले जन-जन तक बिना किसी बाधा के पहुँचता है। रेडियो आम जनता का माध्यम है और इसकी पहुँच हर जगह है, इसलिए **ग्रामीण पत्रकारिता के ध्वजवाहक** की भूमिका **रेडियो** को ही निभानी पड़ेगी। रेडियो के माध्यम से ग्रामीण पत्रकारिता को नई बुलंदियों तक पहुँचाया जा सकता है और पत्रकारिता के क्षेत्र में नए-नए आयाम खोले जा सकते हैं। इसके लिए रेडियो को अपना मिशन महात्मा गाँधी के ग्राम स्वराज्य के स्वप्न को साकार करने को बनाना पड़ेगा और उसको ध्यान में रखते हुए अपने कार्यक्रमों के स्वरूप और सामग्री में अनुकूल परिवर्तन करने होंगे। निश्चित रूप से इस अभियान में रेडियो की भूमिका केवल एक उत्प्रेरक की ही होगी। रेडियो एवं अन्य जनसंचार माध्यम सूचना, ज्ञान और मनोरंजन के माध्यम से जनचेतना को जगाने और सक्रिय करने का ही काम कर सकते हैं। लेकिन वास्तविक सक्रियता तो ग्राम पंचायतों और ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले पढ़े-लिखे नौजवानों और विद्यार्थियों को दिखानी होगी। इसके लिए रेडियो को अपने कार्यक्रमों में दोतरफा संवाद को अधिक से अधिक बढ़ाना होगा ताकि ग्रामीण इलाक़ों की जनता पत्रों और टेलीफोन के माध्यम से अपनी बात, अपनी समस्या, अपने सुझाव और अपनी शिकायतें विशेषज्ञों तथा सरकार

एवं जन-प्रतिनिधियों तक पहुँचा सके। खासकर खेती-बाड़ी, स्वास्थ्य, शिक्षा और रोजगार से जुड़े बहुत-से सवाल, बहुत सारी परेशानियाँ ग्रामीण लोगों के पास होती हैं, जिनका संबंधित क्षेत्रों के विशेषज्ञ रेडियो के माध्यम से आसानी से समाधान कर सकते हैं। रेडियो को "इंटरेक्टिव" बनाकर ग्रामीण पत्रकारिता के क्षेत्र में वे मुकाम हासिल किए जा सकते हैं जिसे दिल्ली और मुम्बई से संचालित होने वाले टी.वी. चैनल और राजधानियों तथा महानगरों से निकलने वाले मुख्यधारा के अख़बार और नामी समाचार पत्रिकाएँ अभी तक हासिल नहीं कर पायी हैं। हालांकि अब दूरदर्शन की डीटीएच (डाइरेक्ट टू होम) सेवा, विभिन्न कम्पनियों की डिश सेवा, सामुदायिक रेडियो केन्द्र तथा अखबारों के स्थानीयकरण से ग्रामीण क्षेत्र भी मीडिया से जुड़ा है। लेकिन टी.वी. चैनलों और बड़े अख़बारों की सीमा यह है कि वे ग्रामीण क्षेत्रों में अपने संवाददाताओं और छायाकारों को स्थायी रूप से तैनात नहीं कर पाते। कैरियर की दृष्टि से कोई सुप्रशिक्षित पत्रकार ग्रामीण पत्रकारिता को अपनी विशेषज्ञता का क्षेत्र बनाने के लिए ग्रामीण इलाक़ों में लंबे समय तक कार्य करने के लिए तैयार नहीं होता। कुल मिलाकर, ग्रामीण पत्रकारिता की जो भी झलक विभिन्न समाचार माध्यमों में आज मिल पाती है, उसका श्रेय अधिकांशत: जिला मुख्यालयों में रहकर अंशकालिक रूप से काम करने वाले अप्रशिक्षित पत्रकारों को जाता है, जिन्हें अपनी मेहनत के बदले में समुचित पारिश्रमिक तक नहीं मिल पाता। इसलिए आवश्यक यह है कि नई ऊर्जा से लैस प्रतिभावान युवा पत्रकार अच्छे संसाधनों से प्रशिक्षण हासिल करने के बाद ग्रामीण पत्रकारिता को अपनी विशेषज्ञता का क्षेत्र बनाने के लिए उत्साह से आगे आएँ।

इस क्षेत्र में काम करने और कैरियर बनाने की दृष्टि से भी अपार संभावनाएँ हैं। यह उनका नैतिक दायित्व भी बनता हैं। सरकार ग्रामीण क्षेत्रों के लिए तमाम कार्यक्रम बनाती है; नीतियाँ तैयार करती है; कानून बनाती है; योजनाएँ शुरू करती है; सड़क, बिजली, स्कूल, अस्पताल, सामुदायिक भवन आदि जैसी मूलभूत अवसंरचनाओं के विकास के लिए फंड उपलब्ध कराती है, लेकिन उनका लाभ कैसे उठाना है, उसकी जानकारी ग्रामीण जनता को नहीं होती। आज इन योजनाओं और जानकारियों को जनता तक पहुंचाने में पत्रकारिता महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

4.7 सारांश

ग्रामीण पत्रकारिता सकारात्मक और स्वस्थ पत्रकारिता का क्षेत्र है। भूमण्डलीकरण और सूचना-क्रांति ने जहाँ पूरे विश्व को एक गाँव के रूप में तबदील कर दिया है, वहीं ग्रामीण पत्रकारिता गाँवों को वैश्विक परिदृश्य पर स्थापित कर सकती है। गाँवों में हमारी प्राचीन संस्कृति, पारंपरिक ज्ञान की विरासत, कला

और शिल्प की निपुण कारीगरी आज भी जीवित है, उसे ग्रामीण पत्रकारिता राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पटल पर ला सकती है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ यदि मीडिया के माध्यम से धीरे-धीरे ग्रामीण उपभोक्ताओं में अपनी पैठ जमाने का प्रयास कर रही हैं तो ग्रामीण पत्रकारिता के माध्यम से गाँवों की हस्तकला के लिए बाजार और रोजगार भी जुटाया जा सकता है। ग्रामीण किसानों, घरेलू महिलाओं और छात्रों के लिए बहुत-से उपयोगी कार्यक्रम भी शुरू किए जा सकते हैं जो उनकी शिक्षा और रोजगार को आगे बढ़ाने का माध्यम बन सकते हैं।

4.8 शब्दावली

ग्रामीण पत्रकारिता : जिन समाचार-पत्रों में 40 प्रतिशत से अधिक सामग्री, गांवों के बारे में प्रकाशित हो, उसे ग्रामीण पत्रकारिता कहेंगे। ये समाचार कृषि, पशुपालन, बीज, खाद, कीटनाशक, पंचायती राज, सहकारिता और ग्राम्य जीवन आदि विषयों पर हों या गांव की अन्य मूलभूत समस्याओं पर।

ग्रामीण विकास : ग्रामीण विकास में ग्रामीण जनसंख्या एवं ग्रामीण क्षेत्र, कृषिक्षेत्र तथा कृषि आधारित उद्योग धन्धों का विकास समाहित है।

4.9 संदर्भ ग्रंथ

1. गुप्ता, मदन मोहन : हिन्दी पत्रकारिता विविध आयाम, भाग-1, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।

2. सृजनशिल्पी.कॉम : भारत में ग्रामीण पत्रकारिता का वर्तमान स्वरूप, 17 फरवरी, 2006।

3. कपिल, श्रीवर्धन : जनजीवन में रेडियो का योगदान, जनंसचार, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंजकूला, 199।

4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री :

1. गुप्ता, मदन मोहन : हिन्दी पत्रकारिता विविध आयाम, भाग-1, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।

2. पाण्डेय, डॉ. पृथ्वीनाथ, (2004), पत्रकारिता: परिवेश एवं प्रवृत्तियां, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. क्या समाचार पत्रों के स्थानीयकरण से ग्रामीण पत्रकारिता में मजबूती आई है? व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 2. क्या सामुदायिक रेडियो ग्रामीण पत्रकारिता का मुख्य अंग बन सकता है? यदि बन सकता है तो किस तरह स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 3. क्या ग्रामीण पत्रकारिता की शुरुआत कृषि विकास को लेकर हुई थी? व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 4. ग्रामीण विकास में पत्रकारिता की क्या भूमिका हो सकती है? इस पर एक निबंध लिखिए।

इकाई-5

विधि पत्रकारिता

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 विधि पत्रकारिता क्या है
5.4 विधि पत्रकारिता की जरूरत और उपयोगिता
5.5 विधि पत्रकारिता के रूप
5.6 ध्यान रखने योग्य बातें
5.7 पत्रकारिता से संबंधित जरूरी कानून
5.8 सारांश
5.9 अभ्यास प्रश्न
5.10 संदर्भ ग्रंथ

5.1 प्रस्तावना

लोकतान्त्रिक समाज कानून के शासन से चलता है। पारिवारिक सम्बन्धों से लेकर अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों तक सब कुछ कानून द्वारा तय किये गये मानकों के अनुरूप संचालित होने के लिए नियम बनाये जाते हैं। नियमों के पालन न होने पर या उनके अर्थान्वयन में मतभेद होने पर अदालतों का सहारा लेना पड़ता है। समाज, अदालत तथा राजनैतिक व्यवस्था के बीच के ताने बाने को स्पष्ट करने, उसकी जानकारी देने, उनका विश्लेषण करने तथा उसके सम्बन्ध में जागरूकता पैदा करने के लिए विधि पत्रकारिता की जरूरत पड़ती है।

5.2 उद्देश्य

विधि पत्रकारिता के मूलतः चार उद्देश्य हैं।

- जानकारी देना

●जागरूकता पैदा करना

●ज्वलंत समस्याओं का विश्लेषण करना

●न्याय के पक्ष में जनमत तैयार करना

जानकारी देना - कानून एक तकनीकी विषय है। आम नागरिक को इसके बारे में बहुत जानकारी नहीं होती, किन्तु सफल लोकशाही के लिए आम नागरिक को भी अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों की जानकारी होना जरूरी है। विधि पत्रकारिता इस उद्देश्य को पूरा करने में एक बड़ी भूमिका निभा सकता है।

जागरूकता पैदा करना - मजबूत लोकतंत्र के लिए जागरूक समाज का होना जरूरी है। विधि पत्रकारिता के माध्यम से समाज को जागरूक करने का उद्देश्य पूरा किया जा सकता है।

ज्वलंत समस्याओं का विश्लेषण करना - हर समस्या के कई पहलू होते हैं। समाज से जुड़ी हुई तथा संवैधानिक समस्याओं के विश्लेषण के माध्यम से समाज को उनके विभिन्न पहलू की जानकारी दी जाती है। ताकि उनकी रोशनी में समाज को सही निर्णय तक पहंुचने में मदद मिल सके।

न्याय के पक्ष में जनमत तैयार करना - पत्रकार सामाजिक विद्रुपताओं का मूकद्रष्टा नहीं रह सकता। उसके ऊपर समाज विरोधी रूढ़ियों तथा मान्यताओं के विरूद्व जनमत तैयार करने की जिम्मेदारी होती है। उदाहरण के लिए छुआछूत जैसी कुरीतियों तथा महिला भ्रूण हत्या जैसे लोकाचारों के सम्बन्ध में कानूनी प्रावधानों का विश्लेषण करके समाज विरोधी परम्पराओं के विरूद्व जनमत तैयार करने की जिम्मेदारी होती है।

5.3 विधि पत्रकारिता क्या है

विधि पत्रकारिता का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। मोटे तौर पर सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक विषयों के विधिक आयाम से जुड़ी पत्रकारिता को विधि पत्रकारिता कहते हैं। यह केवल अदालती कार्यवाही की रिपोर्टिंग मात्र नहीं है। इसमें संसद द्वारा पारित किये जाने वाले कानूनों का विश्लेषण भी शामिल है। इसके अलावा कानून का समाज पर पड़ने वाला प्रभाव का विश्लेषण भी इसमें शामिल है। इस प्रकार कानून के विभिन्न पहलुओं से संबंधित समामाचार का संकलन उसका सम्पादन तथा प्रस्तुतीकरण विधि पत्रकारिता का अनिवार्य हिस्सा है।

5.4 विधि पत्रकारिता की जरूरत और उपयोगिता

कानून के प्रति आम लोगों की बढ़ती हुई रूचि तथा न्याय के प्रति जागरूकता ने जागरूकता के कारण विधि पत्रकारिता का अलग अस्तित्व विकसित हो रहा है। समाज और जनमानस को प्रभावित करने वाले वाली खबरों तथा अदालती कार्यवाहियों का इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा किया जाने वाले कवरेज से इसके महत्व में इजाफा हुआ है। आम जनता अब केवल अदालती निर्णय सुन जाने से संतुष्ट नहीं होती बल्कि उसे आम आदमी की प्रतिक्रिया जानना भी जरूरी होता है। कुछ मामलों में तो आम जनता न्यायालय की प्रतिक्रिया भी जानना चाहती है। इसलिए विधि पत्रकारिता की उपयोगिता दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

5.5 विधि पत्रकारिता के रूप

पारम्परिक रूप से विधि पत्रकारिता के अन्तर्गत केवल कोर्ट की रिपोर्टिंग को ही शामिल किया जाता था। किन्तु अब इसका क्षेत्र व्यापक हो चुका है।

5.5.1 रिपोर्टिंग - इसके अन्तर्गत अदालती कार्यवाहियों की रिपोर्टिंग तथा उस पर पक्षकारों की प्रतिक्रिया शामिल होती है। इसके लिए मुकदमे से जुड़े सभी तथ्यों की व्यापक जानकारी जरूरी है। इसके अलावा उस मुकदमे से जुड़े प्रासंगिक कानूनों का भी ज्ञान होना आवश्यक है।

5.5.2 फीचर - प्रासंगिक कानूनी मुद्दों पर फीचर की विधा दिन प्रतिदिन लोकप्रिय होती जा रही है। इसमें कानूनी मुद्दों के तकनीकी पहलू को तथ्य तथा अन्य घटनाक्रमों के साथ इस तरह से मिलाया जाता है कि वह समाचार फीचर का स्वरूप ग्रहण कर ले।

5.5.3 लेख - ज्वलंत कानूनी विषयों पर लेख की विधा विधिक पत्रकारिता का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसके माध्यम से महत्वपूर्ण अदालती निर्णयों तथा कानूनों का समालोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है।

5.6 ध्यान रखने योग्य बातें

कानून एक तकनीकी विषय है। इसलिए इसमें भाषा का बहुत महत्व होता है। कानून में कई बार विराम या अर्ध विराम जोड़ या घटा देने से मूल विषय में तात्विक परिवर्तन हो जाता है। इसलिए रिपोर्टिंग करने वाले व्यक्ति को कानून की गहरी समझ तथा न्यायिक निर्णयों और कानून को सावधानीपूर्वक पढ़ने का धैर्य होना चाहिए।

न्यायिक रिपोर्टिंग एक संवेदनशील मामला भी होता है। क्योंकि उससे न्यायालय अवमानना का विषय भी जुड़ा हुआ होता है। इसलिए विधिक पत्रकारिता में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि न्यायालय द्वारा दिये गये किसी निर्देश का उल्लंघन नहीं हो और न ही ऐसा कुछ हो जिससे न्यायालय की अवमानना होती हो।

5.7 पत्रकारिता से संबंधित जरूरी कानून

विधिक पत्रकारिता चूंकि कानून और न्यायालय से जुड़ी हुई होती है इसलिए न्यायालय अवमानना कानून के सम्बन्ध में व्यापक जानकारी रखना जरूरी है।

न्यायालय अवमानना दो तरह की होती है। एक, सिविल अवमानना तथा दो, आपराधिक अवमानना। अदालत के आदेश या न्यायालय के समक्ष दिये गए शपथ की शर्तों का जानबूझकर उल्लंघन या अवहेलना करना सिविल अवमानना की श्रेणी में आता है। ऐसा कोई प्रकाशन जो न्यायालय की प्रतिष्ठा को कलंकित या उसे कम करने की प्रवृत्ति वाला हो अथवा उन पर पक्षपात का लांछन लगाता हो या न्यायिक कार्यवाहियों में हस्तक्षेप करता हो अथवा किसी प्रकार से न्याय प्रशासन के कार्य में हस्तक्षेप या अवरोध करता हो अथवा हस्तक्षेप या अवरोध करने की प्रवृत्ति वाला हो उसे न्यायालय अवमानना माना जाएगा।

5.7.1 मीडिया द्वारा समान्तर विचारण तथा न्यायालय अवमानना

न्यायालय राज्य की अन्तर्निहित न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं। मुकदमों के विचारण का अधिकार अदालतों को है। उनकी जिम्मेदारी है कि न्यायिक प्रक्रिया में किसी तरह की दखलंदाजी न होने दें। लोकतांत्रिक देशों में कई बार प्रेस जाने अनजाने में मुकदमों के तथ्यों तथा अन्य पहलुओं की रिपोर्टिंग करते समय न्यायिक प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। किसी मुकदमे का मीडिया द्वारा अप्रतिबन्धित विचारण का प्रभाव पूरे मुकदमे पर पड़ सकता है। मीडिया चूंकि समाज की विचारधाराओं को प्रभावित करने की जबर्दस्त क्षमता रखता है, इसलिए उससे प्रभावित होकर गवाह गवाही देने से मुकर सकता है, न्यायाधीश की सोच बदल सकती है और अभियुक्त अदालत द्वारा दोषी न करार दिये जाने के बाबजूद समाज की निगाहों में अपराधी साबित हो सकता है। इसलिए मुकदमों का मीडिया द्वारा समान्तर विचारण न्यायिक प्रक्रिया को प्रभावित करता है इसलिए यह 'न्यायिक अवमानना' की परिभाषा के अन्तर्गत आता है।

5.7.2 न्यायिक कार्यवाहियों की निष्पक्ष रिपोर्टिंग तथा न्यायिक अवमानना

न्यायालय अवमानना अधिनियम की धारा-4 में कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति मुकदमे के किसी भी चरण में उसकी कहीं रिपोर्टिंग प्रकाशित करता है और उसने धारा-7 के प्रतिबन्धों का उल्लंघन नहीं किया है तो वह न्यायालय अवमानना का दोषी नहीं माना जाएगा। धारा-7 में उन निर्णयों के प्रकाशन पर रोक की व्यवस्था है जिनकी अदालत गोपनीय सुनवाई करता है। लोक व्यवस्था के हित में या किसी कानून के अनुपालन में यदि कोई अदालत किसी मामले की गोपनीय सुनवाई करता है तो प्रेस को उस मामले के तथ्यों का केवल उसी सीमा तक प्रकाशन और उस पर टिप्पणी करने का अधिकार है जिसकी न्यायालय अनुमति दे।

इस धारा में उल्लिखित छूट पाने के लिए जरूरी है कि प्रकाशित की गई टिप्पणी निष्पक्ष हो, तथा गोपनीय कार्यवाहियों के मामलों में न्यायालय ने अनुमति दे दी हो। धारा-7 में दी गई परिस्थितियों के प्रकाशन के मामले में एहतियात बरतने का कारण यह कि कुछ ऐसे मुकदमे होते हैं। जिनको प्रचार से दूर रखना लोकहित में आवश्यक होता है। जैसे वैवाहिक मामलों में पक्षकारों की गोपनीयता या राष्ट्र की सुरक्षा से जुड़े मुकदमे या कानून व्यवस्था पर प्रभाव डालने वाले मामले या गवाहों की सुरक्षा के हित में उनके नाम को गोपनीय रखने जैसी और इस तरह की अनगिनत परिस्थितियां हो सकती हैं। जिन्हें विशेष परिस्थितियों के मद्देनजर न्यायालय उचित और आवश्यक मानता हो। इस तरह के मामले बहुत संवेदनशील होते हैं और उनकी रिपोर्टिंग करते समय सावधानी बरतना लोकहित में जरूरी होता है।

5.7.3 न्यायिक निर्णयों की निष्पक्ष आलोचना और न्यायालय अवमानना

न्यायालय अवमानना अधिनियम 1971 की धारा 5 के अनुसार यदि कोई व्यक्ति किसी मामले की सुनवाई के बाद दिये गए निर्णय की निष्पक्ष आलोचना करता है तो उसे न्यायालय अवमानना का दोषी नहीं माना जाएगा। धारा 4 और धारा 5 में अन्तर यह है कि धारा 4 के अन्तर्गत न्यायिक कार्यवाही के किसी चरण में उस मामले की निष्पक्ष रिपोर्टिंग को न्यायालय अवमानना से उन्मुक्ति दी गई है जबकि धारा 5 में मुकदमे के निर्णय के बाद उसके गुण दोष पर निष्पक्ष टिप्पणी को अदालती अवमानना की परिधि से बाहर रखा गया है ताकि नागरिकों को न्यायिक निर्णय के गुण दोष के बारे में निष्पक्ष जानकारी मिल सके। इसमें केवल समाज का ही लाभ नहीं होता बल्कि न्यायालय को भी निर्णय के उन पहलुओं की जानकारी हो सकती है जो उनसे छूट गए हों। यह प्रेस की आजादी में निहित लोकहित और न्यायिक व्यवस्था के सम्मान से जुड़े लोकहित के बीच सन्तुलन का अच्छा उदाहरण है।

इस धारा में प्रयुक्त 'न्यायिक निर्णय' के गुण-दोष की निष्पक्ष आलोचना' शब्दावली को स्पष्ट रूप से परिभाषित करना बहुत कठिन है। यह कई कारकों पर निर्भर करता है। यह हर मामले में अलग-अलग हो सकता है। इसमें अदालती निर्णय का महत्व तथा उसकी समालोचना के लिए इस्तेमाल किए गए शब्द, निर्णय और कानून के मर्म की समझ तथा उससे भी अधिक अपनी बात को शिष्टता और गरिमापूर्ण तरीके से व्यक्त करने का सलीका बहुत मायने रखता है। असहमति व्यक्त करने की अपनी अलग संस्कृति होती है और लोकशाही में यात्रा करने वाला समाज उसे लगातार विकसित करता रहता है। न्यायिक परम्पराओं की ओर से यह अपेक्षा की जाती है कि असहमति जितनी तीक्ष्ण हो उसे उतनी ही विनम्रता और शिष्टता से कहा जाए। इससे असहमति की संस्कृति मजबूत होती है उसका यह उद्देश्य भी पूरा होता है कि सत्य के दूसरे पहलुओं के बारे में भी जनता को जानकारी मिले। उदाहरण के लिए किसी निर्णय के तथ्यों की जानकारी देना और यह बताना कि उसकी अपील हो सकती है या नहीं यह न्यायालय अवमानना की श्रेणी में नहीं आता। इसी तरह एक जैसे मामलों में अलग-अलग सजा देने के तथ्य को उजागर करना अवमानना नहीं है बशर्ते उसमें अदालत की नीयत पर आक्षेप न किया गया हो। किन्तु इससे उलट यदि निर्णय पर टिप्पणी करते समय न्यायाधीश की नीयत पर आक्षेप किया गया हो या उसकी निष्पक्षता पर अँगुली उठायी गई हो या उस पर मनमानेपन का आरोप लगाया गया हो या उसे अक्षम बताया गया हो या उसकी सत्यनिष्ठा पर चोट की गई हो तो उसे अदालत की अवमानना माना जाएगा। न्यायिक निर्णयों की निष्पक्ष समालोचना का स्वर्णिम नियम यह है कि अपनी टिप्पणी को अदालती निर्णय तक सीमित रखा जाए और न्यायाधीश पर व्यक्तिगत टिप्पणी न की जाए। यदि प्रेस की टिप्पणी में यह बात उजागर की जाती है कि कोई निर्णय उस मामले में दिये गए साक्ष्यों से मेल नहीं खाता तो इसे न्यायिक निर्णय पर की गई टिप्पणी मानी जाएगी। किन्तु यदि यह कहा जाता है कि अमुक न्यायाधीश पूर्वाग्रह से ग्रस्त था तो यह न्यायाधीश के आचरण और सत्यनिष्ठा पर की गई टिप्पणी है।

5.7.4 न्यायाधीशों की शिकायत तथा अदालती अवमानना

न्यायालय अवमानना अधिनियम की धारा-6 में कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति किसी अदालत के पीठासीन अधिकारी के विरूद्ध सद्भावनापूर्वक किसी अपर न्यायालय या उच्च न्यायालय से अपील करता है तो उसे न्यायालय की अवमानना नहीं माना जाएगा। प्रेस जगत को आमतौर पर इस उपबन्ध में उल्लिखित उन्मुक्ति की आवश्यकता नहीं पड़ती किन्तु कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि पत्रकारिता से जुड़े अधिकारों और दायित्वों के विधिपूर्ण निष्पादन करते समय कोई न्यायाधीश किसी मीडियाकर्मी के लिए अशोभनीय या गरिमाविहीन आचरण करे। ऐसी परिस्थितियों में धारा-6 उपचार देता है तथा

उसकी प्रक्रिया और सलीका बताता है। इसकी पहली शर्त प्रक्रिया से जुड़ी हुई है जिसमें कहा गया है कि शिकायत या तो उच्च न्यायालय के सामने की जाएगी या उस अदालत में की जाएगी जिसका वह पीठासीन अधिकारी अधीनस्थ है, जिसके विरूद्ध शिकायत की गई है। दूसरी शर्त यह है कि शिकायत सद्भावनापूर्वक की गई हो, शिकायतकर्ता उसका उपयोग अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए न कर रहा हो।

शिकायत में सद्भावना का निर्धारण एक जटिल मुद्दा है। यह कई बातों पर निर्भर होता है। जैसे शिकायत में प्रयुक्त भाषा, इस शिकायत को दिया गया प्रचार और अन्य परिस्थितियां जिनसे शिकायत करने वाले व्यक्ति की नीयत को समझा जा सकता हो। पीठासीन अधिकारी के आचरण दोष को दूर करना न्यायपालिका के हित में है क्योंकि यह न्यायिक व्यवस्था की साख और प्रतिष्ठा पर असर डालता है जो लोकहित का महत्वपूर्ण मुद्दा है। किन्तु इसके साथ ही यह भी जरूरी है कि इसे अनावश्यक तूल न दिया जाए या इसकी चर्चा ऐसी किसी फोरम पर न की जाए जो इस दोष को दूर करने के लिए अधिकृत नहीं है। इस प्रकार यहां पर भी प्रेस की आजादी से जुड़े लोकहित और अदालती सम्मान से जुड़े सार्वजनिक हित के बीच सन्तुलन स्थापित किया गया है। यहॉ पर ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि ऐसी शिकायत केवल निचली अदालतों के न्यायाधीशों के सम्बन्ध में लागू होती है। उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश इसके अन्तर्गत नहीं आते।

5.7.5 बंद कमरे की न्यायिक कार्यवाही की रिपोर्टिंग और न्यायालय की अवमानना

न्यायिक व्यवस्था का यह आधारभूत नियम है कि मुकदमों की सुनवाई सार्वजनिक रूप से की जाए तथा उसके तथ्यों और निर्णय को सार्वजनिक दस्तावेज माना जाए ताकि न्यायिक पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित की जा सके। किन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि किसी मुकदमे की सार्वजनिक सुनवाई करना या पक्षकारों अथवा गवाहों के नाम का खुलासा करना सार्वजनिक हित में उचित नहीं होता। ऐसे मामलों में न्यायिक कार्यवाही को बन्द कमरे में किए जाने का प्रावधान है। ऐसी स्थिति में अदालत की कार्यवाही की रिपोर्टिंग और उसके निर्णय से जुड़े कुछ बिन्दुओं के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगाया जाना आवश्यक हो जाता है। सरसरी तौर पर देखने से ऐसा लगता है कि जनता के जानने के अधिकार और प्रेस की आजादी बाधित हो रही है, किन्तु यह सच नहीं है। ऐसे विशेष मामलों में भी प्रेस की आजादी और न्यायालय अवमानना के बीच सन्तुलन स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

न्यायालय अवमानना अधिनियम 1971 की धारा 7(1) में कहा गया है कि इस कानून में किसी अन्य बात के होते हुए भी बन्द कमरे में चल रही अदालती कार्यवाही का सही और निष्पक्ष प्रकाशन इस धारा

में उल्लिखित आपवादिक परिस्थितियों के सिवाय न्यायालय अवमानना की कोटि में नहीं आएगा। आपवादिक परिस्थितियों का वर्णन करते हुए धारा-7 में कहा गया है कि जहॉ किसी कानून में इस तरह के प्रकाशन को प्रतिबन्धित किया गया हो या जहां न्यायालय ने अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए या लोकनीति के हित में कार्यवाही की रिपोर्टिंग को स्पष्ट रूप से प्रतिबन्धित किया हो या जब न्यायालय लोक व्यवस्था या राज्य की सुरक्षा के हित में बन्द कमरे में सुनवाई करना जरूरी समझा हो या जो सूचना किसी गोपनीय शोध अथवा आविष्कार से सम्बन्धित अथवा प्रक्रिया से ताल्लुक रखती हो तो उसका प्रकाशन न्यायालय अवमानना की परिधि में आएगा।

प्रेस रिपोर्टिंग पर प्रतिबन्ध लगाना न्यायिक पारदर्शिता के मूल सिद्धान्तों के विपरीत है। किन्तु लोकहित को ध्यान में रखते हुए ऐसा करना जरूरी है । इस कमी को पूरा करने के लिए धारा 7(2) में व्यवस्था की गई है कि यदि कोई व्यक्ति बन्द कमरे में की जाने वाली न्यायिक कार्यवाही की संक्षिप्त रिपोर्ट प्रकाशित करता है तो जब तक न्यायालय इसे प्रतिबन्धित न करे, इसे न्यायालय की अवमानना नहीं माना जाएगा।

इस उपधारा का उद्देश्य यह है कि प्रेस न्यायिक कार्यवाहियों को संक्षेपित करके जनता के सामने ला सके किन्तु यह अधिकार भी न्यायालय के उन प्रतिबन्धों के अधीन जो न्यायालय मामले की गम्भीरता को देखते हुए उचित समझे।

5.7.6 न्याय की सम्यक प्रक्रिया में तात्विक हस्तक्षेप

हस्तक्षेप न्यायालय अवमानना अधिनियम के उद्देश्य खंड में ही स्पष्ट कर दिया गया है कि यह कानून न्यायालय अवमानना से सम्बन्धित विधि को परिभाषित करने तथा उसे लिपिबद्ध करने हेतु बनायी गई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह अपने पूर्ववर्ती कानूनों से अधिक उदार है और इसीलिए धारा 4, 5, 6, 7 और 8 में उन परिस्थितियेां का वर्णन है जिसमें प्रेस की आजादी के महत्व को स्वीकार करते हुए कुछ उन्मुक्तियॉ दी गई हैं। इसी श्रृंखला में इस अधिनियम की धारा 13 में एक और स्पष्टीकरण दिया गया है। धारा 13 में कहा गया है कि किसी कानून में किसी अन्य बात के होते हुए भी किसी व्यक्ति को न्यायालय अवमानना के लिए तब तक सजा नहीं दी जाएगी जब तक कि अदालत इस बात से सन्तुष्ट न हो जाए कि अवमानना की प्रकृति ऐसी है जो न्याय की सम्यक प्रक्रिया में तात्विक हस्तक्षेप करती है या उसमें तात्विक हस्तक्षेप की प्रवृत्ति है।

इस उपबन्ध का 1971 के कानून में विशेष रूप से इसलिए जोड़ा गया ताकि न्यायालय अवमानना के कानून को अधिक उदार बनाया जा सके। विधायिका की नीयत यह स्पष्ट करने की है कि अवमानना के

छोटे-छोटे मामलों में कोई सजा न दी जाए। यहॉ तक न्यायाधीशों की निन्दा करने जैसे मामलों में सामान्य तौर पर किसी को जेल नहीं भेजा जाना चाहिए जब तक कि यह साबित न हो जाए उससे न्यायिक प्रक्रिया पर तात्विक रूप् से प्रभाव पड़ सकता है। यदि किसी प्रकाशन का न्यायिक प्रक्रिया पर केवल नाममात्र का प्रभाव है या केवल तकनीकी प्रकृति का है तो ऐसी अवमानना के लिए सजा नहीं दी जानी चाहिए। न्याय की सम्यक प्रक्रिया पर तात्विक हस्तक्षेप का आकलन करने का कोई पूर्व निर्धारित मापदंड नहीं है। यह सम्बन्धित मामले की परिस्थितयों पर निर्भर करता है। प्रकाशन के लिए इस्तेमाल शब्द, उन्हें प्रस्तुत करने का तरीका, उसे दिया जाने वाला प्रचार और अभियुक्त के आचरण जैसे कई कारकों से मिलकर यह तय होता है कि किसी प्रकाशन से न्यायिक प्रक्रिया में तात्विक हस्तक्षेप हो रहा है या नहीं। उदाहरण के लिए यदि निर्णय से असंतुष्ट पक्षकार न्यायाधीश पर रिश्वत लेने का आरोप लगाता है और अवमानना कार्यवाही के अन्तिम चरण तक जब तक कि उसे यह अहसास नहीं हो जाता है कि उसे न्यायालय से निकलने की कम सम्भावना है, वह अपने कृत्य पर माफी नहीं मॉगता तो यह न्याय की सम्यक प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने की परिधि में आएगा।

'न्याय की सम्यक प्रक्रिया' शब्दावली का अर्थ बहुत व्यापक है। यह धारा 2(ग)(पप) में प्रयुक्त 'न्यायिक प्रक्रिया' से अलग है। न्यायिक प्रक्रिया का तात्पर्य किसी विशेष मामले से सम्बन्धित न्यायिक प्रक्रिया से है जबकि 'न्याय की सम्यक' प्रक्रिया का मतलब पूरी न्यायिक व्यवस्था से है। इसलिए यदि कोई व्यक्ति न्याय व्यवस्था के प्रति अशोभनीय और कलंकात्मक समाचार प्रकाशित करता है तो हो सकता है वह न्यायिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप का दोषी न हो किन्तु ऐसी परिस्थितियों में वह 'वह न्याय की सम्यक' प्रक्रिया में दखलंदाजी करने का दोषी माना जा सकता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि वर्तमान 'न्यायालय अवमानना अधिनियम 1971', सन् 1952 के न्यायालय अवमानना अधिनियम से कई मामलों में बेहतर है। इसमें कई ऐसे परिवर्तन किए गए हैं जो प्रेस की आजादी के हित में हैं, किन्तु अभी भी इसमें बहुत कुछ सुधार किए जाने की जरूरत है।

5.7.7 सच का प्रकाशन और न्यायालय अवमानना

मनहानि के मामलों में सच बोलना सबसे बड़ी प्रतिरक्षा है। यदि कोई व्यक्ति यह साबित कर दे कि उसने जो भी प्रकाशित किया है वह सच है तो वह मानहानि का दोषी नहीं होगा। किन्तु अदालती अवमानना के मामले में ऐसा नहीं है। न्यायिक अवमानना कानूनों में सच बोलने के आधार पर किसी को अवमानना से दोषमुक्ति नहीं मिलेगी। पारदर्शिता की नई संस्कृति के विकास के साथ न्यायालय अवमानना के पारम्परिक सिद्धान्तों की प्रासंगिकता पर बहस शुरू हो गई है। इस मामले में ब्रिटेन ने अपने कानून में

परिवर्तन नहीं किया किन्तु अदालतों ने अपनी सोच में बहुत बड़ा परिवर्तन किया है। पिछले सत्तर वर्षों में ब्रिटिश अदालतों ने किसी ऐसे व्यक्ति को अवमानना के लिए दण्डित नहीं किया है जिसके सच बोलने से अदालत की अवमानना हुई हो। भारत में भी इस विषय पर काफी बहस हुई है। तथा उसके आधार पर न्यायालय अवमानना अधिनियम में संशोधन कर दिया गया है।

संशोधन के माध्यम से न्यायालय अवमानना अधिनियम 1971 में दो संशोधन किए गए हैं। वर्तमान धारा 13 की जगह 13(अ) कर दिया है तथा मौजूदा धारा 13 की विषय वस्तु को जस का तस रहने दिया गया है। इसके अलावा धारा 13(ब) नामक नया उपबन्ध जोड़ा गया है जिसमें कहा गया है कि न्यायालय अवमानना की किसी कार्यवाही में न्यायालय सत्य कथन को विधिपूर्ण प्रतिरक्षा के रूप में अनुमन्य कर सकता है बशर्ते न्यायालय इस तथ्य से संतुष्ट है कि उक्त सत्यकथन को लोकहित में प्रकाशित किया गया था और सत्यकथन के आधार पर प्रतिरक्षा की मॉग करने वाले व्यक्ति ने इसकी याचना सद्भावनापूर्वक की हो। इस बहुप्रतीक्षित संशोधन की अधोलिखित विशेषताएं हैं-

(क) अदालत, न्यायालय अवमानना की कार्यवाही में, सत्यकथन को विधिमान्य प्रतिरक्षा के रूप में स्वीकार कर सकती है।

इसका मतलब यह है कि जहां अब तक सच को न्यायालय अवमानना की विधिमान्य प्रतिरक्षा के रूप में मान्यता नहीं थी अब इस संशोधन के बाद न्यायालय चाहे तो सच को न्यायालय अवमानना की वैध प्रतिरक्षा के रूप में मान्यता दे सकती है। यह न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है कि वह सच को न्यायालय अवमानना की प्रतिरक्षा के रूप में मान्यता देता है या नहीं।

(ख) सच को न्यायालय की अवमानना की वैध प्रतिरक्षा के रूप में मान्यता देने हेतु यह जरूरी है कि अदालत इस बात से सन्तुष्ट हो कि सच का उद्घाटन करना लोकहित में जरूरी था।

नए संशोधन की दूसरी शर्त यह है कि न्यायालय अवमानना में सच को प्रतिरक्षा के तौर पर मान्यता देने हेतु विचार करने से पहले इस तथ्य से सन्तुष्ट हो कि सत्य कथन का प्रकाशन सार्वजनिक हित में था, व्यक्तिगत हित की पूर्ति के लिए नहीं। इसका तात्पर्य यह कि यदि अदालत को ऐसा प्रतीत होता है कि सत्य का उद्घाटन लोकहित में नहीं किया गया था या उसका उपयोग निजी हित में करने के लिए प्रकाशित किया गया था तो उन परिस्थितियों में अवमानना के दोष से छूट नहीं मिलेगी।

(ग) सच को न्यायालय अवमानना की वैध प्रतिरक्षा के रूप में मान्यता देने हेतु यह जरूरी है कि अदालत को यह विश्वास हो कि न्यायालय अवमानना से छूट पाने की याचना सद्भावनापूर्वक की गई हो।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि सच को लोकहित में प्रकाशित करने के अलावा इस शर्त का पूरा होना भी जरूरी है। न्यायालय इस तथ्य से सन्तुष्ट हो कि अदालत से की गई प्रार्थना केवल अपने आपको बचाने के लिए या धोखा देने के लिए नहीं की गई है। इसके लिए यह जरूरी है कि अभियुक्त ईमानदारी और सद्भावना से, अदलत के सम्मान के प्रति पूरी निष्ठा रखता हो।

5.7.8 मानहानि से संबंधित कानून

प्रेस की आजादी को इस सीमा तक अनुमन्य नहीं किया जा सकता कि वह निराधार तथ्यों के आधार पर किसी की प्रतिष्ठा को क्षति पहुंचाए। इसलिए यदि कोई व्यक्ति अपनी प्रकाशित रचना के माध्यम से किसी की मानहानि करता है तो उसके विरूद्ध दीवानी और आपराधिक दोनों कार्यवाहियॉ की जा सकती हैं।

आपराधिक मानहानि- भारतीय दंड संहिता की धारा 499 में आपराधिक मानहानि की परिभाषा दी गई है। यदि कोई व्यक्ति धारा 499 में परिभाषित मानहानि का अपराध करता है तो धारा 500 के अनुसार उसे दो साल तक के कारावास या अर्थदंड या दोनों से दंडित किया जा सकता है।

दीवानी मानहानि- मानहानि करने वाले व्यक्ति के खिलाफ आपराधिक मुकदमा दर्ज करने के अलावा दीवानी कार्यवाही भी का जा सकती है। जब कोई व्यक्ति किसी विधि पूर्ण औचित्य या विधिक प्राधिकार के बगैर, किसी के सम्बन्ध में असत्य तथा अवमाननात्मक कथन का प्रकाशन करता है तो उसे मानहानि कहते हैं, मानहानि के दीवानी उपचार के लिए निम्नलिखित तथ्य साबित करना जरूरी है-

(क) कथन अवमाननात्मक हो।

(ख) कथन वादी के संबंध में हो।

(ग) कथन प्रतिवादी द्वारा प्रकाशित किया गया हो।

(घ) कथन असत्य हो।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि यदि प्रकाशित किया गया कथन सत्य है तो दीवानी उपचार नहीं मिलेगा। इस मामले में आपराधिक और दीवानी मानहानि में अन्तर है। यदि अवमाननात्मक कथन सत्य है तो दीवानी विधि में कोई उपचार नहीं मिलेगा जब तक कि आपराधिक मामले में यदि कथन सत्य है तब भी फौजदारी दायित्व से बचने के लिए यह साबित करना जरूरी है कि उसे सार्वजनिक हित में प्रकाशित किया गया था। यदि प्रकाशित करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध यह साबित कर दिया जाता है कि प्रकाशित कथन सार्वजनिक हित में नहीं था, व्यक्तिगत हितों की पूर्ति के लिए था तो वह सत्य होने के बावजूद आपराधिक मानहानि की कोटि में आएगा।

5.8 सारांश

हालांकि प्रेस कानून को अभी कानून की सामान्य विधाओं में शामिल नहीं किया जा सका है, लेकिन इन कानूनों के प्रति लोगों की जिज्ञासा बढ़ी है और नई चेतना पैदा हुई है। संविधान के कुछ अनुच्छेदों के तहत प्रेस को अपनी बात कहने और लिखने की आजादी है। पत्रकार इन्हीं बिंदुओं को ध्यान में रखकर अपना कार्य करते हैं। संविधान में यह भी व्यवस्था है कि अगर प्रेस अपने कर्तव्यों का ठीक से पालन नहीं कर रहा है तो राज्य को यह अधिकार होगा कि वह उस पर युक्तियुक्त निर्बंधन लगा सके। प्रेस द्वारा किसी पर आक्षेप लगाने से पहले यह ध्यान रखना होगा कि उसकी अपनी सीमाएं क्या हैं। पत्रकार को मानहानि और न्यायालय की अवमानना जैसे मसलों से हर हाल में बचना होगा। न्यायपालिका की मानहानि और विधायिका के विशेषाधिकार हनन के मामलों से भी पत्रकारों को हर हाल में दूरी बनानी होगी।

5.9 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न-1 विधि पत्रकारिता क्या है। समझाएं।

प्रश्न-2 विधि पत्रकारिता की उपयोगिता पर प्रकाश डालें। उदाहरण भी लिखें।

प्रश्न-3 विधि पत्रकारिता के उद्देश्यों को अपनी भाषा में समझाएं।

प्रश्न-4 न्यायिक निर्णयों की निष्पक्ष आलोचना और न्यायालय अवमानना को स्पष्ट करें।

प्रश्न-5 मानहानि से संबंधित कानूनों की विवेचना अपने शब्दों में करें।

5.10 संदर्भ ग्रंथ

1. त्रिखा, डॉ नंदकिशोर, (1994) प्रेस विधि, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

2. पाण्डेय, डॉ. पृथ्वीनाथ, (2004), पत्रकारिता: परिवेश एवं प्रवृत्तियां, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

इकाई-6

रक्षा जगत और मीडिया

इकाई की रूपरेखा

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 रक्षा पत्रकारिता क्या
6.3 रक्षा पत्रकारिता का इतिहास
6.4 रक्षा पत्रकारिता का पहलू-अन्तरराष्ट्रीय कूटनीति
6.5 जल, थल और वायुसेना
6.6 रक्षा मंत्री और मंत्रालय
6.7 विज्ञान एवं शोध
6.8 सेना और हथियारों की खरीद
6.9 सैनिकों, पेंशनरों से जुड़े समाचार
6.10 कैसे बनें रक्षा पत्रकार
6.11 रक्षा से जुड़ी खबरें संवेदनशील होती हैं
6.12 सेना के पद निचले क्रम से
6.13 सारांश
6.14 शब्दावली
6.15 अभ्यास प्रश्न
6.16 संदर्भ ग्रंथ

6.0 प्रस्तावना

हमारे देश में आज पत्रकारिता का दायरा व्यापक हो चुका है। चौबीसों घंटे चलने वाले समाचार चौनलों, दैनिक समाचार पत्रों में बढ़ती पृष्ठ संख्या और विषय विशेष आधारित पत्र और पत्रिकाओं के प्रकाशन

से पत्रकारिता की अलग-अलग विधाओं को विस्तार मिला है। इसी में एक विधा है रक्षा पत्रकारिता। इसका मतलब है कि देश की रक्षा और सेना से जुड़े समाचार, फीचर और विश्लेषणों का प्रकाशन करना। आज के दौर में जब पत्रकारिता का तेजी से विस्तार हो रहा है तो समाचार पत्रों या चौनलों में भी अपने पाठकों को विषय विशेष की खास खबरें देने की भी होड़ लगी रहती है। इसलिए प्रिंट और इलेक्ट्रानिक मीडिया में विषय आधारित पत्रकारिता का प्रचलन बढ़ रहा है। हर मीडिया संस्थान रक्षा, वित्त, फिल्म, विज्ञान, कला, अपराध आदि के लिए अलग-अलग पत्रकारों की नियुक्ति करता है जो इन विधाओं में कार्य करने में दक्ष होते हैं। चूंकि मीडिया का दायरा लगातार बढ़ रहा है, इसलिए अब पत्रकारिता में भी इस तरह के विशिष्ट किस्म का कोर्सो की मांग बढ़ने लगी है।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- बता सकेंगे कि देश में रक्षा पत्रकारिता की स्थिति क्या है।
- समझा सकेंगे कि रक्षा पत्रकारिता के लिए क्या-क्या एहतियात बरतने चाहिए।
- स्पष्ट कर सकेंगे कि रक्षा पत्रकारिता के लिए कौन सी चुनौतियां हैं जिनसे निपटना जरूरी होता है।

6.2 रक्षा पत्रकारिता क्या है

रक्षा पत्रकारिता के दायरे में वे सामाचार आते हैं जो देश की रक्षा व्यवस्था से जुड़े हों। इसके दायरे में रक्षा मंत्रालय, सेना के तीनों अंग, रक्षा महकमे की अनुसंधान और खरीद शाखाएं, लाखों की तादात में सैनिक और भूतपूर्व सैनिक आते हैं। इनसे जुड़े सामाचार एकत्र करना, उन्हें प्रकाशित करने के योग्य रूप देना, उनका विश्लेषण करना ही रक्षा पत्रकारिता के प्रमुख अंग हैं। युद्धकाल के दौरान लड़ाई से जुड़ी सूचनाएं देना भी रक्षा पत्रकारिता के दायरे में आता है। रक्षा से जुड़ी तकनीकें बढ़ रही हैं इसलिए रक्षा पत्रकारिता का एक बड़ा हिस्सा विज्ञान से भी जुड़ा है।

6.3 रक्षा पत्रकारिता का इतिहास

पत्रकारिता का इतिहास जितना पुराना है, उतनी ही पुरानी रक्षा पत्रकारिता है। लेकिन इसके स्वरूप में अब अंतर आ चुका है। पहले सिर्फ युद्ध पत्रकारिता हुआ करती थी। युद्ध में सूचनाएं एकत्र करने वालों

को ही विशेष संवाददाता का दर्जा हुआ करता था। युद्ध की पत्रकारिता आज भी होती है लेकिन आज यह व्यापक रूप में रक्षा पत्रकारिता के रूप में सामने है जो सिर्फ युद्ध तक सीमित नहीं होकर देश की सुरक्षा, सैन्य महकमों के कामकाज, जवानों की समस्याओं और उनकी शहादत तक विस्तारित हो चुकी है। जहां तक युद्ध पत्रकारिता के इतिहास की बात है तो ईसा से 449 वर्ष पूर्व हुए पार्सियन युद्ध का विवरण पहली बार एक व्यक्ति हीरोडोट्स द्वारा लिखे जाने का ब्यौरा मिलता है। बाद में थ्यूशियोडाइडस नामक लेखक ने पिलोपोनेशियन वार का इतिहास लिखा। लेकिन यदि आधुनिक युद्ध पत्रकारिता की बातें करें तो 1653 में विलियम वेन डी वेल्दे का जिक्र आता है। वेल्दे एक छोटी नौका लेकर समुद्र में डच और अंग्रेजी नौसैनिकों के बीच हो रही लड़ाई का ब्यौरा एकत्र करने गए। उन्होंने मौके पर ही युद्ध के कई स्केच भी बनाए। बाद में उन्हें एक बड़ा ड्राइंग तैयार कर स्टेट जनरल को सौंपा। यदि समाचार पत्रों में लिखने वाले पत्रकार की बात करें तो हेनरी के राबिन्सन संभवत पहले युद्ध पत्रकार थे जिन्होंने 18वीं शताब्दी में स्पेन एवं जर्मनी में नेपोलियन के युद्ध अभियान की खबरें लंदन के टाइम्स अखबार के लिए एकत्र की। इसके बाद पहले विश्व युद्ध में भी युद्ध पत्रकारिता का प्रचलन बढ़ा जो फिर बढ़ता गया। जो बाद में खाड़ी युद्ध, अमेरिका के इराक और अफगानिस्तान पर हुए हमलों के दौरान भी दिखा।

6.3.1 भारत में रक्षा पत्रकारिता का इतिहास

भारत के पौराणिक ग्रंथों पर असर डालें तो इसका अनोखा विवरण मिलता है। इस हिसाब से संभवत महाभारत काल में संजय पहले युद्ध पत्रकार थे जो रणभूमि का सारा ब्यौरा नेत्रहीन धृतराष्ट्र को दे रहे थे। लेकिन यह ग्रंथ की बात है। जहां तक आधुनिक युद्ध पत्रकारिता की बात है तो इसका ब्यौरा थोड़ा-थोड़ा भारत-पाकिस्तान के साथ हुए दो युद्धों के दौरान मिलता है। लेकिन तब देश में सिर्फ सरकारी समाचार एजेंसियों में ही रक्षा की जानकारी रखने वाले पत्रकार हुआ करते थे। लेकिन 80 के दशक में बोफोर्स तोप घोटाले, 1999 में कारगिल युद्ध उसके बाद कारगिल ताबूत घोटाले, तहलका प्रकरण के बाद एकाएक रक्षा पत्रकारिता का तेजी से विस्तार हुआ। इन प्रकरणों के बाद देश में रक्षा पत्रकारिता खासी लोकप्रिय हुई और यह समाचार पत्रों एवं टीवी चौनलों की एक खास विधा के रूप में स्थापित हो गई। अब लगातार इसका महत्व बढ़ता जा रहा है। दरअसल, नब्बे के दशक में आर्थिक उदारीकरण शुरू हुआ था उसके बाद देश ने आर्थिक प्रगति की। उसी दौरान सामाचार पत्रों का तेजी से विस्तार हुआ और समाचार चौनल अस्तित्व में आने शुरू हो गए। उस दौरान बोफोर्स विवाद चरम पर था। फिर कारगिल युद्ध हुआ और फिर कोफीन घोटाला। मीडिया के विस्तार ने इन घोटालों को खूब प्रचारित किया और

देश में एक रक्षा पत्रकारिता का अस्तित्व कायम हो गया। रही सही कसर 2001 में तहलका के तरुण तेजपाल ने पूरी कर दी। जब उन्होंने स्टिंग आपरेशन के जरिये रक्षा सौदों में भ्रष्टाचार का खुलासा किया।

6.3.2 आज की रक्षा पत्रकारिता-स्वरूप और जरूरत

आज रक्षा पत्रकारिता सिर्फ युद्ध की सूचनाएं एकत्र करने तक सीमित नहीं है। युद्ध की रिपोर्टिंग उसका सिर्फ एक हिस्सा भर है। वह भी बहुत कम इस्तेमाल होता है क्योंकि अब बड़े युद्ध नहीं होते हैं। या उनकी आशंका बेहद कम है। लेकिन रक्षा पत्रकारिता का स्वरूप दिन-प्रतिदिन व्यापक होता जा रहा है। भारत जैसे देश जहां रक्षा पर सबसे ज्यादा बजट खर्च होता है और हमारी सबसे बड़ी प्राथमिकता अपनी वाह्य सुरक्षा को लेकर है इसलिए रक्षा से जुड़ी खबरें समाचार माध्यमों के लिए महत्वपूर्ण हैं। दरअसल, रक्षा पत्रकारिता की व्यापकता इसलिए भी ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि यह एक तरफ यह वैश्विक कूटनीति से जुड़ा मसला है तो दूसरा तरफ गांव के एक नौजवान से जो सेना में बतौर सैनिक भर्ती होता है। इसमें साइंस एंड टेक्नोलॉजी भी है तो बड़े स्तर पर सरकारी धन का भी दखल है।

6.4 रक्षा पत्रकारिता का पहलू-अन्तरराष्ट्रीय कूटनीति

रक्षा पत्रकार बनने के इच्छुक नौजवान को सबसे पहले यह समझना होगा कि क्यों भारत रक्षा पर इतना अधिक बजट खर्च करता है, वह बजट अन्य विकास पर खर्च क्यों नहीं करता। क्योंकि भारत समेत कुछ देशों के रक्षा बजट पर सवाल उठते हैं। यह कहा जाता है कि भारत जैसे विकासशील देश को रक्षा पर इतना बजट खर्च करने की बजाय अपनी जनता की बुनियादी जरूरतों पर ज्यादा बजट खर्च करना चाहिए। लेकिन यह सिर्फ एक पहलू है। दरअसल, भारत को अपनी रक्षा नीति अपनी जनता की जरूरतों को ध्यान में रखकर नहीं बल्कि पाकिस्तान, चीन और अन्य पड़ोसी देशों की हरकतों को ध्यान में रखकर बनानी पड़ती है।

सकर चीन और पाकिस्तान की रक्षा नीतियों और उनके सैन्य साजोसमान को देखकर। क्योंकि ये दोनों देश रक्षा पर भारी खर्च कर रहे हैं और विश्लेषक यह कहते हैं कि दोनों देश कभी भी भारत के लिए खतरा बन सकते हैं। इतना ही नहीं पाकिस्तान और चीन किन देशों से दोस्ती कर रहे हैं, भारत के नजदीकी समुद्र में उनकी गतिविधियां क्या हैं, या आसमान में वे कहां-कहां उपग्रह लगा रहे हैं, यह भी भारत को ध्यान में रखना पड़ता है। हम पर उनकी बराबरी में रहने या एक कदम आगे रहने का दबाव रहता है। इसलिए रक्षा पत्रकारिता का सबसे महत्वपूर्ण पहलू अन्तरराष्ट्रीय रक्षा कूटनीति को समझना है।

इसलिए अपने देशों के साथ-साथ पड़ोसी देशों की रक्षा नीति और उसके हिसाब से हो रही गतिविधियों को तो समझना ही होगा तथा विकसित देशों की नीतियों को भी समझना होगा। क्योंकि विकसित देशों के अपने हित हैं। वे बड़े पैमाने पर हथियार बनाते हैं। भारत, पाकिस्तान, चीन जैसे देश उनके बड़े ग्राहक हैं। इसलिए उनकी कोशिश यह रहती है कि भारत, चीन, पाकिस्तान जैसे देशों के बीच हमेशा दुश्मनी का माहौल रहे ताकि उनके खरीददार कायम रहें।

6.5 जल, थल और वायुसेना

हमारी तीन सेनाएं हैं। थल सेना सबसे बड़ी है लेकिन वायुसेना कहीं ज्यादा शक्तिशाली मानी जाती है और युद्ध में वही निर्णायक होती है। लेकिन भारत की समुद्री सीमा 7500 किलोमीटर लंबी है लेकिन जब समुद्र की तरफ से कोई खतरा हो तो असली काम नौसेना आती है। इस प्रकार तीनों सेनाओं की अपनी-अपनी भूमिका है। रक्षा पत्रकार बनने के लिए इनके कामकाज को भली प्रकार समझना जरूरी है। रक्षा से जुड़ी नियमित खबरों में इन तीनों सेनाओं से जुड़ी खबरों की खासी मांग रहती है। इनमें शामिल हो रही नई-नई तकनीकों, भर्ती प्रक्रिया में हो रहे बदलावों, इनके आपरेशनों का मौके पर जाकर निरीक्षण करना और फिर उसकी रिपोर्टिंग करना। इन सेनाओं द्वारा समय-समय पर रक्षा रिपोर्टिंग करने वाले पत्रकारों के दलों को ले जाकर अपने आपरेशन दिखाए जाते हैं। चैनलों से लाइव रिपोर्टिंग भी की जाती है।

इसके अलावा इन सेनाओं के प्रमुखों के इंटरव्यू भी महत्वपूर्ण होते हैं। दूसरे, आजकल कभी-कभी शीर्ष पदोंपर बैठे लोगों को लेकर भी किस्म-किस्म के विवाद भी खड़े होते हैं। हालांकि अच्छे पत्रकार के लिए जरूरी है कि वह अनावश्यक सनसनीखेज खबरें प्रकाशित नहीं करे लेकिन यदि कोई विवाद खड़ा होता है और उसकी कोई सामाचार वेल्यू है तो उसका प्रकाशन फिर जरूरी हो जाता है। हाल में जनरल वी. के. सिंह की जन्मतिथि से जुड़ा विवाद मीडिया की सुर्खियों में रहा। इसी प्रकार की खबरें भी सेना के तीनों अंगों के बीच रहती हैं। वैसे पिछले कुछ समय के दौरान सेना में भर्ती होने वाले नौजवानों की संख्या में कमी आना, वायुसेना के पायलटों का नौकरी छोड़कर निजी क्षेत्र में चले जाना, आदि खबरें प्रमुखता से सुर्खियों में रही थीं।

6.6 रक्षा मंत्री और मंत्रालय

जो पत्रकार देश की राजधानी दिल्ली में रहते हैं, वे नियमित रूप से रक्षा मंत्रालय जाते हैं। इसलिए उन्हें रक्षा मंत्रालय विशेष सुरक्षा प्रवेश पत्र जारी करता है। बीच-बीच में रक्षा मंत्री की प्रेस कांफ्रेंस भी अटैंड करते हैं। इसके अलावा रिपोर्टर अपने अखबार, मैगजीन या चौनल के लिए रक्षा मंत्री का विशेष इंटरव्यू भी हासिल करता है। इसकी प्रकार रक्षा महकमे के सचिव का भी बेहद महत्वपूर्ण पद होता है। संसद सत्र के दौरान दोनों सदनों में रक्षा से जुड़े सवाल-जवाब होते हैं। इनकी रिपोर्टिंग भी रक्षा संवाददाता द्वारा की जाती है। फिर रक्षा से जुड़े कई मुद्दों पर नए कानून आदि बनते हैं तो उसकी भी रिपोर्टिंग करनी होती है। मूलत यह हिस्सा देश की रक्षा नीति और उसके क्रियान्वयन से जुड़ा होता है।

6.7 विज्ञान एवं शोध

रक्षा संवाददाता को काफी हद तक विज्ञान का भी ज्ञान होना चाहिए। क्योंकि रक्षा मंत्रालय के संगठन डीआरडीओ का कार्य सेना के लिए नई तकनीकें विकसित करना है। यह पूरी तरह से एक अत्याधुनिक वैज्ञानिक संगठन है। इसकी देश भर में कई प्रयोगशालाएं हैं। डीआरडीओ खुद भी तकनीकें विकसित करता है और विदेशों से आयात भी करता है। इसलिए रक्षा मंत्रालय की रिपोर्टिंग का एक महत्वपूर्ण हिस्सा डीआरडीओ की रिपोर्टिंग भी है जो पूरी तरह से वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित होती है।

डीआरडीओ अपने शोध आदि को समय-समय पर मीडिया के समक्ष रखता है। डीआरडीओ सेना के जवानों के लिए खान-पान की चीजें बनाने से लेकर अग्नि जैसी मिसाइल बनाने, बहुद्देश्यीय विमान निर्माण तक में व्यस्त है। इसलिए डीआरडीओ की वैज्ञानिक रिपोर्टिंग सैन्य रिपोर्टिंग का बेहद महत्वपूर्ण हिस्सा है।

6.8 सेना और हथियारों की खरीद

जैसा की हमने पहले बताया कि रक्षा महकमे का बजट देश में सबसे ज्यादा होता है। इस बजट का एक बड़ा हिस्सा हथियारों की खरीद पर जाता है। हथियारों की खरीद विकसित देशों से की जाती है क्योंकि भारत अभी ऐसे हथियार बनाने में सक्षम नहीं हैं। खासकर फाइटर प्लेन और युद्ध के दौरान काम आने वाले अत्याधुनिक उपकरण। हथियारों की खरीद-खरोख्त को कारणों से सामाचार बनती है। एक तो यदि कोई फाइटर प्लेन खरीद जा रहा है तो उसकी खूबी क्या है, यह पाठकों के लिए पढ़ने वाली खबर बनती है। मसलन, रूस से खरीदे गए सुखोई विमान ऐसे हैं जिसमें उड़ते विमान में दूसरा विमान ईंधन भर सकता

है। आम पाठकों को यह बात बेहद आकर्षित करती है। दूसरे, हथियारों की खरीद में होने वाले घोटाले भी सुर्खियां बनते हैं।

बोफोर्स घोटाला, कारगिल युद्ध के दौरान घटित कोफीन खरीद घोटाले ऐसे हैं जिन्होंने पिछले कुछ दशकों के दौरान राजनीति में बड़ी उथल-पुथल खड़ी कर दी। लेकिन यह बेहद संवेदनशील विषय है। किसी पत्रकार के लिए इसकी रिपोर्टिंग में बेहद संयम और सावधानी बतरने की जरूरत होती है। कई देशों की कंपनियां हथियारों का ठेका लेने के लिए प्रयासरत रहती हैं जो कंपनी विफल रहती है, वह खरीद में घोटाले की बात को स्थापित करने में लग जाती है। इसलिए रक्षा संवाददाताओं को ऐसे मामले में सावधान बरतनी होती है। आमतौर पर ऐसे मामलों की रिपोर्टिंग तब की जाती है जब सीएजी या कोई अन्य एजेंसी प्रक्रिया पर सवाल खड़े करती है या फिर कोई राजनीतिक दल सवाल उठाता है। यह भी देखा गया कि घोटाले के आरोपों के चलते खरीद प्रक्रिया में देरी हो जाती है और इस दौरान हथियारों की कीमत में इजाफा हो जाता है। रक्षा पत्रकारिता में आजकल इन तथ्यों को भी दिखाया जा रहा है। हाल में 126 लड़ाकू विमान खरीदे गए थे लेकिन खरीद में पांच साल का विलंब होने के कारण उनकी कीमत 10 मिलियन डॉलर से बढ़कर 20 मिलियन डॉलर तक पहुंच गई।

6.9 सैनिकों, पेंशनरों से जुड़े समाचार

रक्षा पत्रकारिता एक बड़ा विषय है। इसलिए उपरोक्त समाचारों का अपना महत्व है। लेकिन जब समाचार पत्र घर में जाता है तो उसे परिवार का हर सदस्य पड़ता है। ऐसे में सदस्य अपने मतलब की खबर उसमें तलाश करते हैं। देश में सैनिकों, भूतपूर्व सैनिकों और उनके परिजनों की संख्या काफी बड़ी है। इसलिए सैनिकों, भूतपूर्व सैनिकों से जुड़ी समस्याओं, उनके वेतन-भत्तों, पेंशन, उन्हें मिलने वाली सुविधाओं में कमी और बढ़ोत्तरी से जुड़ी होती हैं। तीन सेनाओं को मिला लिया जाए तो उनकी संख्या करीब 12 लाख से अधिक है। फिर इससे ज्यादा भूतपूर्व सैनिक हैं। उनके परिजन हैं। इनकी अपनी कई समस्याएं हैं। जब समाचार पत्रों में उनकी खबरें प्रकाशित होती हैं तो सरकार उन्हें सुलझाने के लिए उपाय करती है। ऐसे में जब कोई नियम बदलता है तो उसकी भी खबर बनती है। ऐसी खबरों से हर संवाददाता कभी न कभी दो चार होता है क्योंकि इनकी संख्या देश के हर हिस्से में है। जबकि समर्पित रक्षा संवाददाता सिर्फ देश की राजधानी या फिर बड़े महानगरों में ही होते हैं।

6.10 कैसे बनें रक्षा पत्रकार

रक्षा पत्रकारों के कामकाज के बारे में ऊपर बताया गया है। अब सवाल उठता है कि रक्षा संवाददाता कैसे बनें। दरअसल, सबसे पहली बात तो यह है कि व्यक्ति की रुचि रक्षा से जुड़े कामकाज को समझने की हो। ग्रेजुएशन या मीडिया कोर्स करने के दौरान ही छात्रों की रुचि स्पष्ट होने लगती है। कोई साइंस टेक्नोलॉजी को पसंद करता है तो कोई राजनीतिक खबरों को पसंद करता है। कुछ वित्त या फिल्म की खबरों को पसंद करते हैं। लेकिन ऐसे लोगों की कमी भी नहीं है जो रक्षा से जुड़ी खबरों को तरजीह देते हों। जिनकी रुचि रक्षा से जुड़ी खबरों में हो वे उस विषय में अधिक से अधिक ज्ञान अजिर्त करें। आमतौर पर संपादक या मुख्य संवाददाता नए पत्रकारों को उनकी रुचि के हिसाब से ही समाचारों की रिपोर्टिंग का मौका प्रदान करते हैं। इसलिए नए पत्रकारों को अपनी नौकरी शुरू करने से पहले अपनी रुचि का विषय छांट लेना चाहिए।

6.10.1 रक्षा पत्रकारिता कोर्स

रक्षा पत्रकारिता में देश में एकमात्र कोर्स हिसार (हरियाणा) स्थित गुरू जंभेश्वर साइंस एंड टेक्नोलॉजी यूनिवर्सिटी ने शुरू किया है। 2009 में तत्कालीन चीफ ऑफ आर्मी स्टाफ जनरल दीपक कपूर ने इस कोर्स का शुभारंभ किया था। यह स्नातक कोर्स है जो रक्षा पत्रकारिता के तमाम गुर सिखाता है। विश्व में यह अपनी किस्म का दूसरा कोर्स है। रक्षा पत्रकारिता का एकमात्र कोर्स इससे पहले अमेरिका के बोस्टन विश्वविद्यालय में चल रहा है। कह सकते हैं कि गुरू जंभेश्वर विवि दूसरा ऐसा विवि है जो रक्षा पत्रकारिता का कोर्स चला रहा है। वैसे तो पत्रकारिता का कोर्स किया होना ही काफी होता है लेकिन यदि किसी को सुविधा हो तो उसे रक्षा पत्रकारिता का कोर्स भी करना चाहिए।

वैसे, जो नौजवान रक्षा पत्रकारिता शुरू कर देते हैं या करना चाहते हैं, उनके लिए रक्षा मंत्रालय भी एक छोटा कोर्स चलाता है। यह कोर्स 21 दिन का होता है तथा रक्षा मंत्रालय द्वारा साल में एक बार इसका आयोजन किया जाता है। इसलिए मीडिया संस्थानों को पत्र लिखकर कोर्स करने के इच्छुक नौजवानों के नाम मांगे जाते हैं। वैसे यह कोर्स छोटा भले ही हो लेकिन उपयोगी कहीं ज्यादा होता है। इस दौरान रक्षा मंत्रालय अपने खर्च पर प्रशिक्षुओं को जल, थल और वायु सेना के कामकाज के बारे में बताता है तथा उनके बेस स्टेशनों का दौरा भी कराता है। प्रशिक्षुओं को प्रमाण पत्र भी दिए जाते हैं। इस प्रमाण पत्र की उपयोगिता नई नौकरी के दौरान बेहद उपयोगी होती है क्योंक इससे नौजवान को रक्षा पत्रकारिता की रिपोर्टिंग का दावा पेश करने का मौका मिलता है। सबसे बड़ी बात यह है कि उन्हें सेना के ढांचे और सैन्य जीवन को समझने में सफलता मिलती है।

6.10.2 रक्षा पत्रकारिता की संवेदनशीलता

यूं तो सरकारी महकमों से जुड़ी सभी सूचनाएं सभी संवेदनशील होती हैं। पत्रकारों के पास कई बार ऐसी सूचनाएं भी होती हैं जिनका अखबार के जरिये खुलासा होना कभी-कभी सरकार के लिए मुश्किल भरा हो जाता है। इस हिसाब से रक्षा से जुड़ी सूचनाएं सबसे ज्यादा संवेदनशील होती हैं। इसलिए रक्षा संवाददाता के लिए जरूरी है कि वह अपना कार्य उन्हीं बिन्दुओं तक सीमित रखे जो उसके पाठकों के लिए महत्वपूर्ण हैं। वह अपने वरिष्ठ संपादकीय सहयोगी से भी सूचनाएं एकत्र करने के बारे में पूर्व विमर्श करे। एक आम पाठक की इसमें कोई दिलचस्पी नहीं हो सकती है भारत ने मिसाइलें बनाकर कहां पर छुपा कर रखी हैं, या परमाणु बम कहां रखा है। यदि कोई संवाददाता यह सूचना प्राप्त कर ले और इसका प्रकाशन कर दे तो दुश्मन देश की एजेंसियां इसका दुरुपयोग कर सकती हैं। इसलिए रक्षा संवाददाता को कितनी ही बड़ी खबर लिखने समय सबसे पहले राष्ट्रहित का ध्यान रखना चाहिए। ध्यान रहे कि कुछ समय पूर्व तहलका समाचार पत्र ने देश के रक्षा प्रतिष्ठानों पर एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी जिसमें वेश्याओं का इस्तेमाल किया गया था। इसकी घोर निंदा की गई थी। उक्त पत्रकारों पर मुकदमा भी चलाया गया था। स्पष्ट है कि देश को होने वाले नुकसान की कीमत पर किसी भी खबर का कोई महत्व नहीं है। इससे देश का नुकसान तो होगा ही वह रिपोर्टर भी बड़े झमेले में फंस सकता है।

6.10.3 रक्षा पत्रकारिता में रोजगार की संभावनाएं-आजकल उन पत्रकारों के लिए बाजार में नौकरी की कहीं ज्यादा संभावनाएं हैं जो किसी एक विषय के विशेषज्ञता रखते हों। यदि कोई पत्रकार अपने शुरूआती करियर के पांच सालों के भीतर किसी एक क्षेत्र में पकड़ बना लेता है तो आगे फिर उसे रोजगार में कोई दिक्कत नहीं आएगी बल्कि उसके समक्ष हमेशा अच्छी संभावनाएं रहती हैं। रक्षा पत्रकारिता में भी ये संभावनाएं हैं। हर समाचार चौनल और अखबार में एक या एक से अधिक रक्षा संवाददाता होने लगे हैं। दूसरे, आजकल कई पत्र-पत्रिकाएं ऐसी हैं जो सिर्फ रक्षा से जुड़े मुद्दों पर निकलती हैं। वहां भी रोजगार मिल सकता है। पहले सिर्फ राजधानी में रक्षा संवाददाता होते थे आजकल कई छोटे शहरों से भी अखबार और चौनल निकलते हैं, यदि उन शहरों में सेना, नौसेना का बेस स्टेशन है तो वहां भी रक्षा संवाददाता की एक बीट हो जाती है। फिर कई समाचार पत्र रक्षा से जुड़े मुदें पर विशेष साप्ताहिक परिशिष्ट निकालते हैं इसलिए डेस्क पर कार्य करने वाले उप संपादक के रूप में भी नौकरी की संभावनाएं होती हैं। इतना ही नहीं रक्षा की जानकारी रखने वाले पत्रकार आजकल सेना में भी बतौर पीआरओ नियुक्त हो रहे हैं। रक्षा सेवाएं प्रदान करने वाली सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों और निजी कंपनियों में भी ऐसे पत्रकारों को पीआरओ की नौकरी मिलने के चांस रहते हैं। पत्रकारिता के अनुभव को

वहां बड़ी तरजीह दी जाती है। देश के विवि में रक्षा पत्रकारिता के कोर्स शुरू हो रहे हैं, उससे यह भी उम्मीद है कि आने वाले वक्त में विश्वविद्यालयों में रक्षा पत्रकारिता पढ़ाने के लिए भी पत्रकारों को मौका मिलेगा और वे बतौर प्रोफेसर नियुक्त हो सकेंगे बशर्ते कि वे अपने करियर के दौरान अपनी पीएचडी भी पूरी कर लें। इसलिए रक्षा पत्रकारिता में किस्मत आजमाने वाले नौजवानों के लिए रोजगार की कमी नहीं होगी।

6.10.4 आनंददायक कॅरियर

पत्रकारिता का ग्लैमर बाहर से जितना ज्यादा दिखता है अंदर से वह उतना ही उबाऊ और बोरियत भरा है। नए लोगों को इसमें काफी आकर्षण लगता है, लेकिन जो लोग काम करते हैं, उनसे पूछा जाए तो वे इसके खराब पहलू बताते नहीं थकेंगे। लेकिन जहां तक रक्षा पत्रकारिता का प्रश्न है, इसमें काफी एडवेंचरस चीजें होती हैं जिनसे संवाददाताओं को भी दो-चार होने का मौका मिलेगा। इसलिए उन्हें पत्रकारिता के कार्य के दौरान भरपूर लुत्फ भी मिलता है। उन्हें सेना के ऐसे-ऐसे शिविरों में जाने का मौका मिलता है, जहां सैन्य अफसरों के अलावा और कोई नहीं जा सकता। यदि कोई यह देखे कि सियाचिन में शून्य से नीचे के तापमान में सैनिक कैसे सीमा के प्रहरी बने हुए हैं तो यह अपने आप में एडवेंचरस है। इसी प्रकार एयर शो की लाइव रिपोर्टिंग, वार जोन की रिपोर्टिंग, बार्डर क्षेत्र की रिपोर्टिंग ऐसी चीजें हैं जो रक्षा संवाददाता को कभी-कभी यह महससू कराते हैं कि वे पत्रकार नहीं बल्कि सेना के ही हिस्से हैं। इसलिए रक्षा पत्रकारिता अन्य विधाओं की अपेक्षा में कहीं ज्यादा जीवंत है।

6.11 रक्षा से जुड़ी खबरें संवेदनशील होती हैं

उदाहरण-1 दो मार्च 1012 को सेना की खुफिया शाखा को एक गुप्त सूचना मिली कि तत्कालीन रक्षा मंत्री ए. के. एंटोनी के कार्यालय में बग लगाया गया है। बग एक ऐसा सूक्ष्म उपकरण होता है जिससे कार्यालय में हो रही बातचीत को सुना जा सकता है। सेना की खुफिया शाखा ने जांच की लेकिन कुछ नहीं मिला। बाद में खुफिया ब्यूरो (आईबी) को बुलाकर कार्यालय की जांच की गई। आईबी ने भी दावा किया कि वहां बग नहीं था। देखा जाए तो यह बेहद संवेदनशील मामला था। इसके पीछे दो कारण हो सकते थे एक तो इसी दौरान सेना ने 126 लड़ाकू विमानों के सौदे को मंजूरी दी थी। दूसरे, जनरल वी. के. सिंह की जन्मतिथि का विवाद चल रहा था।

इस घटनाक्रम की मीडिया में जो खबरें प्रकाशित हुई उसमें कोशिश यह हुई कि जनरल सिंह के ईशारे पर यह कार्य किया जा रहा था क्योंकि वह अपनी जन्मतिथि के मामले पर रक्षा मंत्री के कार्यालय में हुई बातचीत सुनना चाह रहे थे। इससे एक गलत संदेश गया। यहां तक कहा गया है कि इस कार्य में रक्षा मंत्रालय के खुफिया उपकरणों का इस्तेमाल किया गया। जबकि बग नहीं मिला तो जाहिर है कि ऐसी कोई घटना नहीं हुई। यदि बग मिलता तो आगे इस तरह की कयासबाजी लगाई जा सकती थी। इसलिए इस मामले में मीडिया की भूमिका अच्छी नहीं रही। दूसरे, बाद में जांच से यह भी साबित हुआ कि यह सबकुछ एक अज्ञात शिकायत के आधार पर हुआ। जाहिर है जनरल सिंह के किसी विरोधी ने यह हरकत की। ऐसे मामले में मीडिया को बेहद सतर्क रहना चाहिए। इससे हमारे देश की बदनामी होती है। खबरें मिनटों में अन्तरराष्ट्रीय मीडिया तक पहुंच जाती हैं। ऐसे मामलों में तब तक समाचारों का प्रकाशन नहीं होना चाहिए जब तक आधिकारिक तौर पर किसी ऐसी घटना की पुष्टि न कर दी जाए। इस मामले में हालांकि सेना की तरफ से उस दिन इन अटकलों का खंडन जारी किया गया। मगर समाचार पत्रों में खंडन को उतनी तरजीह नहीं दी गई। सेना की पत्रकारिता करने के इच्छुक लोगों को ऐस मामलों में सतर्कता बरतनी चाहिए। मीडिया समूहों को भी चाहिए कि वह ऐसे मुद्दों के प्रकाशन पर व्यापक विचार-विमर्श के बाद ही फैसला करें।

उदाहरण-2 अगस्त 2009 में रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ) के एक सेवानिवृत्त वैज्ञानिक के. संथानम ने यह दावा कर डाला कि 1998 में पोखरण में जो परमाणु परीक्षण हुआ था वह वैज्ञानिक कसौटी पर खरा नहीं उतरा था। जब परीक्षण हुआ था तो संथानम डीआरडीओ की उस शाखा में कार्यरत थे जिसका कार्य बम के विकीरण से उत्पन्न तीव्रता को नापना था। इसलिए यह खबर मीडिया की सुर्खियों में छा गई। मीडिया में इस पर जबरदस्त चर्चा छिड़ गई। बाद में प्रधानमंत्री के रक्षा सलाहकार आर. चिदंबरम ने इस दावे को बेबुनियाद बताया। चिदंबरम उस समय परीक्षण के कार्य का नेतृत्व कर रहे थे। कई और वैज्ञानिक भी संथानम के दावे के खिलाफ खड़े हुए।

इस मामले में पहला गैर जिम्मेदाराना रवैया वैज्ञानिक संथानम का रहा। उन्होंने ऐसा क्यों क्या और इतने सालों के बाद उन्हें यह दावा करने की क्या जरूरत थी यह आज तक साफ नहीं हो पाया। लेकिन इस प्रकरण से देश की भारी बदनामी हुई। मीडिया ने भी इन सवालों के जवाब तलाश करने की कोशिश नहीं कि यदि परीक्षण सफल नहीं रहा तो संथानम ने यह मुद्दा तब क्यों नहीं उठाया। फिर उनके साथ कार्य कर रहे अन्य वैज्ञानिक उनके दावे का समर्थन क्यों नहीं कर रहे हैं। इससे भी बड़ा सवाल यह था कि संथानम ने खुद परीक्षण के सफल रहने की रिपोर्ट क्यों तैयार की। जिस प्रकार परमाणु बम का परीक्षण देश के

लिए एक बड़ी उपलब्धि थी और एक वैज्ञानिक ने उसे एक ही झटके में नष्ट करने की कोशिश की वह बेहद दुर्भाग्यपूर्ण बात थी। इसलिए फिर यही बात आती है कि मीडिया को ऐसी खबरों के प्रकाशन में सावधानी बरतने की कोशिश करनी चाहिए। इस प्रकरण में हुआ कि सनसनीखेज खबर के लालच में पहले एक अखबार ने खबर छापी तो दूसरों में उससे आगे निकलने की होड़ लग गई। असल बात यह रही कि संथानम की नीयत को खंगालने में किसी ने दिलचस्पनी नहीं ली। सरकार के लिए भी मामले को रफा-दफा करने में भी भारी मुश्किलें हुई।

6.12 सेना के पद निचले क्रम से

-लेफ्टिनेंट

-कैप्टन

-मेजर

-लेफ्टिनेंट कर्नल

-कर्नल

-ब्रिगेडियर

-मेजर जनरल

-लेफ्टिनेंट जनरल

-जनरल

6.13 सारांश

इस अध्याय में विस्तार से रक्षा से जुड़ी पत्रकारिता के अच्छे और संवेदनशील पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। रक्षा पत्रकारिता का महत्व देश हित में व्यापक है। लेकिन यदि उसकी संवेदनशीलता की अनदेखी की जाए तो मुश्किल हो सकती है। वैसे तो किसी भी क्षेत्र में पत्रकारिता कर रहे पत्रकार को संवेदनशील होना चाहिए लेकिन रक्षा के मामलों में कहीं ज्यादा एहतियात की जरूरत होती है। पत्रकार के लिए भी और देश के लिए भी। इसलिए पत्रकारिता तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। उसका उद्देश्य सकारात्मक होना चाहिए तथा राष्ट्रहित की अनदेखी नहीं होनी चाहिए। रक्षा पत्रकार बनने के इच्छुक नौजवान को शुरू से ही यह बात गांठ बांध कर रखनी चाहिए। तभी वे एक सफल और राष्ट्रभक्त पत्रकार साबित हो पाएंगे। वर्ना सनसनी फैलाने वाले पत्रकारों की तरफ उनका नाम भी इतिहास के अंधरों में गुम

होकर रह जाएगा। सतर्कता और सावधानी बरतने से ही उनकी पत्रकारिता की साख बन पाएगी और नाम कमा पाएंगे।

6.14 शब्दावली

चीफ ऑफ द आर्मी स्टाफ-इसका मतलब थल सेनाध्यक्ष से है।

चीफ ऑफ द नेवेल स्टाफ-नौसेनाध्यक्ष

चीफ ऑफ द एयर स्टाफ-वायुसेनाध्यक्ष

जनरल-थल सेना में एक जनरल होता है जो सेनाध्यक्ष बनता है।

लेफ्टिनेंट जनरल- जनरल के नीचे सभी लेफ्टिनेंट जनरल होते हैं।

एडमिरल-नौसेना का शीर्ष पद एडमिरल

वाइस एडमिरल-एडमिरल के नीचे कई वाइस एडमिरल होते हैं

एयर चीफ मार्शल-वायुसेना का सर्वोच्च पद है। एयर चीफ मार्शल ही वायुसेनाध्यक्ष होता है।

कोर कमांडर- सेना में हर कार्य के लिए एक कोर बनी हुई है जैसे मेडिकल कोर, सप्लाई कोर आदि। उसके हेड को ही कोर कमांडर कहते हैं।

मिलिटरी इंटेलीजेंस- सेना की खुफिया शाखा है।

कोर्ट मार्शल-ये सेना की अपनी न्यायिक प्रक्रिया के तहत होता है जो सेना में अनुशासन, गड़बड़ियों तथा आपराधिक कृत्यों को रोकने के लिए स्थापित की गई है। कोर्ट मार्शल की प्रक्रिया के दौरान बर्खास्तगी से लेकर सजा तक सुनाई जा सकती है। इसके फैसलों को सेना के न्याधिकरण में चुनौती दी जा सकती है। न्यायाधिकरण के बाद सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी जा सकती है।

एएफटी-यानी आर्म्ड फोर्स ट्राइब्यूनल जिसमें कोर्ट मार्शल के फैसलों को चुनौती दी जाती है।

डीआरडीओ-रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन

आर्डिनेंस फैक्टरी-रक्षा मंत्रालय के लिए हथियार बनाने वाली कंपनियां

मल्टीरोल वायुयान-ऐसे वायुयान जो लड़ाई, सामान परिवहन, यात्री परिवहन तथा छोटे-बड़े सभी एयरपोर्ट के लिए उपयोग में लाए जा सकते हैं।

6.15 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न-1-युद्ध पत्रकारिता और रक्षा पत्रकारिता में क्या फर्क है।

प्रश्न-2-रक्षा पत्रकारिता महत्वपूर्ण क्यों है। रक्षा पत्रकारों की अलग से जरूरत क्यों हुई।

प्रश्न-3-देश में रक्षा पत्रकारिता के स्थापित होने के मुख्य कारण कौन-कौन से रहे।

प्रश्न-4-रक्षा पत्रकारिता संवेदनशील क्यों है ?

प्रश्न-5-रक्षा पत्रकारिता के वाह्य और आंतरिक पहलओं पर प्रकाश डालो।

प्रश्न-6-रक्षा पत्रकार बनने के लिए क्या बुनियादी गुण होने चाहिए

प्रश्न-7-एक रक्षा संवाददाता के जीवन में कौन से रोमांचक क्षण हो सकते हैं जो अन्य पत्रकारों को नहीं होते

प्रश्न-8-आपके विचार से रक्षा पत्रकारिता का सबसे महत्वपूर्ण भाग कौन सा है

6.16 संदर्भ ग्रंथ

1. सक्सेना, संगीता 1997, 'डिफेंस जर्नलिज्म इन इंडिया', मानस प्रकाशन

2. समाचार पत्रों की कतरनें।

इकाई-7

आर्थिक जगत और मीडिया

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 आर्थिक पत्रकारिता क्या है
7.3 आर्थिक पत्रकारिता का उद्देश्य
7.4 आर्थिक पत्रकारिता की पृष्ठभूमि
7.5 कैसे अंजाम दिया जाता है
7.6 आर्थिक पत्रकारिता का भविष्य
7.7 छात्रों के लिए दिशा-निर्देश
7.8 सारांश
7.9 अभ्यास
7.10 अभ्यास प्रश्न
7.11 संदर्भ ग्रंथ

7.1 प्रस्तावना

आर्थिक पत्रकारिता का अब की पत्रकारिता में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। देखा जाये, तो साफ यह होता है कि आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया के बाद राजनीतिक खबरों का रिश्ता भी कहीं ना कहीं अर्थव्यवस्था से गहरा ही हुआ है। तमाम टीवी चैनल सिर्फ आर्थिक खबरों पर ही फोकस हैं। तमाम अखबारों में आर्थिक खबरों के लिए अलग से पेज हैं। कुल मिलाकर अब की पत्रकारिता को समझने जानने की लिए जरुरी है कि आर्थिक पत्रकारिता की बुनियादी समझ हो।

7.2 आर्थिक पत्रकारिता क्या है

आर्थिक पत्रकारिता का आशय

आर्थिक पत्रकारिता शब्द के मूल में, जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि दो शब्द-आर्थिक और पत्रकारिता हैं। आर्थिक का रिश्ता अर्थशास्त्र से है।

अर्थशास्त्र का अर्थ

अर्थशास्त्र की बहुत शुरुआती परिभाषाओं में से एक परिभाषा एल रोबिन्स ने दी है-

--अर्थशास्त्र वह विज्ञान है, जो मानवीय व्यवहार का अध्ययन उन साध्यों और सीमित साधनों के रिश्ते के रुप में करता है, जिनके वैकल्पिक प्रयोग हैं-।

अर्थशास्त्र से जुड़े मसलों की गंभीरता का अहसास इस बात से किया जा सकता है कि अर्थशास्त्र के बारे में उन लोगों ने भी कहा, जो मूलत अर्थशास्त्री नहीं थे, जैसे प्रख्यात नाटककार, व्यंग्यकार बर्नार्ड शा ने लिखा-

-अर्थशास्त्र जीवन से अधिकतम पाने की कला है-।

अर्थशास्त्र में उप्तादन के विभिन्न तत्वों का विस्तृत अध्ययन किया जाता है। उत्पादन के महत्वपूर्ण तत्व हैं-

●भूमि या प्राकृतिक संसाधन, जैसे खनिज, कच्चा माल जो उत्पादों के निर्माण के लिए प्रयुक्त होता है।

●श्रम यानी वह मानवीय प्रयास जो उप्तादन में प्रयुक्त होते हैं। इनमें मार्केटिंग और तकनीकी विशेषज्ञता शामिल है।

●पूंजी, जिससे मशीन, फैक्ट्री वगैरह खड़ी होती है।

●कारोबारी प्रयास, जिनके चलते ये बाकी के सारे तत्व कारोबार को संभव बनाते हैं।

अर्थशास्त्र का क्षेत्र लगातार व्यापक होता चला गया है। जनता के लिए आर्थिक मुद्दों का महत्व बढ़ता गया है। जनता के लिए जिन मुद्दों का महत्व है, उन मुद्दों में पत्रकारों की दिलचस्पी होना,पत्रकारिता की दिलचस्पी होना स्वाभाविक है। पत्रकारिता को मोटे तौर पर यूं परिभाषित किया जा सकता है।

●पत्रकारिता का मुख्य उद्देश्य नागरिकों को सटीक और विश्वसनीय जानकारी पहुंचाना है-

●पत्रकारिता के तहत वर्तमान घटनाक्रम (जिनमें प्रवृत्तियां,मुद्दे और लोग शामिल हैं) के बारे में एकत्रित सूचनाओं को एकत्रित किया जाता है, प्रमाणित किया जाता है, उनके बारे में रिपोर्ट तैयार की जाती है, विश्लेषण किया जाता है।

मोटे तौर पर पत्रकारिता के लेखन को दो वर्गीकरणों के तहत विभाजित किया जा सकता है-

1-सूचना या खबर

2-विचार या समाचारों पर आधारित विश्लेषण।

मोटे तौर पर आर्थिक पत्रकारिता से आशय ऐसी पत्रकारिता से है, जिसका रिश्ता अर्थशास्त्र से, अर्थव्यवस्था से जुड़ी खबरों से होता है।

7.3 आर्थिक पत्रकारिता का उद्देश्य

व्यापक तौर पर माना जा सकता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था के दायरे में ये विषय-मुद्दे आते हैं। आर्थिक पत्रकारिता के दायरे में भी निम्नलिखित विषय या मुद्दे आते हैं-

1-अर्धविकसित अर्थव्यवस्था की विशेषताएं 2-स्वतंत्रता पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था 3-भारत की राष्ट्रीय आय 4-मानव संसाधन, जनसंख्या और आर्थिक विकास 5-भारत में मानव विकास, मानव विकास के संबंध में यूएनडीपी की रिपोर्टें 6-व्यावसायिक ढांचा और आर्थिक विकास 7-प्राकृतिक संसाधन, पर्यावरण और आर्थिक विकास 8-भारतीय अर्थव्यवस्था का आधारभूत ढांचा जिसमें उर्जा क्षेत्र, परिवहन क्षेत्र, उड्डयन क्षेत्र,रेलवे, संचार व्यवस्था, शहरी आधारभूत ढांचा,विज्ञान और तकनीकी शामिल है। 9-आधारभूत ढांचे में निजी क्षेत्र का निवेश 10-आर्थिक नियोजन के लक्ष्य और रणनीति 11-औद्योगिक नीति और नियोजन 12-सार्वजनिक क्षेत्र और भारतीय नियोजन 13-सार्वजनिक क्षेत्र में विनिवेश की नीति 14-निजी क्षेत्र, संयुक्त क्षेत्र और भारतीय नियोजन 15-राज्य की भूमिका का पुनर्निर्धारण 16-निजीकरण और आर्थिक सुधार 17-भूमंडलीकरण और इसका भारत पर प्रभाव 18-भारत में नियोजन के पचास साल 19-प्रथम योजना से लेकर दसवीं योजना 20-गरीबी, असमानता और

नियोजन 21-पूंजी निर्माण की समस्या 22-विदेशी पूंजी, बहुराष्ट्रीय निगम, विदेशी मदद(अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक द्वारा दी जाने वाली मदद समेत) और आर्थिक विकास 23-समानांतर अर्थव्यवस्था,काला धन 24-बेरोजगारी 25-बड़े कारोबारी घराने और आर्थिक केंद्रीकरण 26-कीमतें, मूल्य नीति और आर्थिक विकास 27-संतुलित आर्थिक विकास 28-कृषि–उत्पादकता की प्रवृत्तियां 29-खाद्य सुरक्षा, अकाल 30-हरित क्रांति 31-भारतीय कृषि और नियोजन 32-सिंचाई और कृषि के लिए आवश्यक आगत 33-भूमि सुधार 34- खेती का आकार और उत्पादन कुशलता 35-ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण व्यवस्था 36-तमाम कृषि उत्पादों की मंडियों समेत कृषि मार्केटिंग और संग्रहण व्यवस्था 37-कृषि पर कर 38-कृषि मजदूर 39-औद्योगिक संरचना और योजनाएं 40-कुछ बड़े उद्योग 41-साफ्टवेयर और बीपीओ समेत सूचना प्रौद्योगिक उद्योग 42- लघु उद्योग 43-भारतीय उद्योगों में रुग्णता 44-श्रम समस्याएं और श्रम नीति 45-राष्ट्रीय मजदूरी नीति 46-श्रम आयोग 47-विदेशी व्यापार 48-भुगतान संतुलन 49-गैट, डब्लूटीओ और भारत का विदेश व्यापार, संयुक्त राष्ट्र की व्यापार और अर्थव्यवस्था से जुड़ी संस्थाएं 50-भारतीय मौद्रिक व्यवस्था 51-वाणिज्यिक बैंकिग व्यवस्था 52-विकास वित्तीय संस्थान 53-भारतीय रिजर्व बैंक 54--स्टाक बाजार और भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड समेत संपूर्ण पूंजी बाजार 55-केंद्र और राज्य के वित्तीय संबंध 56-बजट प्रक्रिया समेत सार्वजनिक वित्त व्यवस्था 57-सरकारी अनुदान 58-न्यूनतम साझा कार्यक्रम 59-सेवा क्षेत्र का विकास 60-सर्राफा बाजार समेत सोने चांदी के भावों की प्रवृत्तियां

ये सारे मुद्दे आर्थिक मुद्दे हैं और अर्थव्यवस्था के दायरे में आते हैं और इसलिए आर्थिक पत्रकारिता का दायरे में आते हैं। पर आधुनिक संदर्भ में शायद ही ऐसा कोई मुद्दा हो, जिसका प्रत्यक्ष या परोक्ष आर्थिक आयाम न हो, इसलिए यह कहना मुश्किल है कि आर्थिक पत्रकारिता इन चिन्हित मुद्दों तक ही सीमित है। आर्थिक पत्रकारिता के दायरे में क्या आता है, इस विषय पर एक लंबी बहस उन देशों में रही है, जहां आर्थिक पत्रकारिता खासी विकसित अवस्था में है। रिचर्ड पार्कर ने इस बहस को यूं आगे बढ़ाया है-

.....अर्थशास्त्र , व्यापक अर्थो में व्यक्तियों, समूहों, निगमों और राज्य की आर्थिक गतिविधियों को समाहित करता है या इनका ताल्लुक उन मसलों के आर्थिक आयामों से है, जिन्हे हम अन्यथा सामाजिक नीति या कानूनी विवाद या वर्ग संघर्ष या राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के तौर पर चिन्हित करते हैं। इन मामलों में *आर्थिक* शब्द कई बार भ्रम की ओर ले जाता है-पर्यावरण नीति कब आर्थिक मसला है। रक्षा खर्च के आर्थिक हिस्से क्या हैं। नस्लगत या लिंगाधारित असमानता या विपरीत भेदभाव आर्थिक

मुद्दा कैसे है। किस हद कानूनी फैसले को आर्थिक सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए। एक अभिभावक का परिवार सामाजिक, नैतिक या आर्थिक मुद्दा है.....।

7.4 आर्थिक पत्रकारिता की पृष्ठभूमि

7.4.1 आजादी से पहले

7.4.2 आजादी के बाद

7.4.3 आर्थिक सुधारों के बाद

7.4.1 आजादी से पहले

अंगरेजों के आने के बाद के महत्वपूर्ण राजनीतिक मुद्दे किस तरह से मूलत आर्थिक मुद्दे थे, इसका विश्लेषण करने की कोशिश इस अध्याय में की गयी है। इनका प्रभाव हिंदी पत्रकारिता पर किस तरह से पड़ा, संक्षेप में यह समझने की कोशिश की गयी है। स्वतंत्रता पूर्व के राजार्थिक इतिहास में निम्नलिखित मुद्दों, घटनाक्रमों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है-

1-ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में आगमन

2-बंगाल का अकाल और अन्न चेतना

3-स्वदेशी का विचार

4-डांडी यात्रा

ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में आगमन

दि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी मूलत एक कारोबारी कंपनी थी, जिसे एलिजाबेथ प्रथम ने 31 दिसंबर 1600 को भारत में कारोबार करने के अधिकार दिये थे। मूलत कारोबार के लिए आयी यह कंपनी कालांतर में भारत की राजनीतिक भाग्यविधाता बनी।

इस तरह से अर्थशास्त्र और राजनीति के संबंध ईस्ट इंडिया कंपनी ने स्पष्ट किये। भारतीय जन-चेतना और पत्रकारिता की चेतना में ईस्ट इंडिया कंपनी अभी भी जिंदा है। आज भी विदेशी निवेश से जुड़े लेखों,

रिपोर्टों, में खास तौर पर उन लेखों, रिपोर्टों में, जो विदेशी निवेश के खतरों से आगाह करती हैं, ईस्ट इंडिया कंपनी एक मुहावरे के तौर पर प्रयुक्त होती है। अर्थशास्त्र राजनीति को किस तरह से प्रभावित करता है, यह बात ईस्ट इंडिया कंपनी के संक्षिप्त से अध्ययन से साफ होती है। ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों ने जिस तरह से भारत में धनार्जन किया, उसका असर ब्रिटेन की राजनीति पर हुआ। ब्रिटेन की संसद में ईस्ट इंडिया कंपनी की समर्थक लाबी बनी और यह लाबी इस कंपनी के हितों को सुनिश्चित करती थी, बदले में ईस्ट इंडिया कंपनी संसद को और अधिक प्रदान करने का वादा करती थी।

1857 के पहले स्वतंत्रता संग्राम के बाद इस कंपनी की प्रशासनिक शक्ति ब्रिटिश सरकार को हस्तांतरित हो गयीं। फिर भारत औपचारिक तौर पर ब्रिटेन का उपनिवेश बन गया। 1860 के दशक में कंपनी की सारी संपत्ति ब्रिटिश सरकार के पास आ गयी। जब ईस्ट इंडिया स्टाक डिविडेंड रिडेंप्शन एक्ट आया तब 1 जनवरी, 1874 को ईस्ट इंडिया कंपनी औपचारिक तौर पर खत्म मान ली गयी। इसके खात्मे पर दि टाइम्स ने लिखा-*इस कंपनी ने ऐसा काम किया, जिसे मानव जाति के समूचे इतिहास में किसी कंपनी ने करने की कोशिश कभी नहीं की और आने वाले समय में इस तरह का काम किये जाने की संभावना भी नहीं है।* विश्व इतिहास में *भूतो-न भविष्यति* किस्म का काम ईस्ट इंडिया कंपनी ने किया और उसकी कर्मभूमि भारत बना। इसलिए भारतीय चेतना में ईस्ट इंडिया कंपनी एक मुहावरे तौर पर लगातार जिंदा बनी रही।

बंगाल का अकाल और अन्न चेतना

1943 का बंगाल का अकाल भारतीय जन-चेतना और पत्रकारिता की चेतना में कितना गहरा धंसा हुआ है, इसका अंदाज आजादी के बाद की पत्रकारिता के विश्लेषण से ज्ञात होता है। आगे के अध्यायों में यह साफ किया जायेगा कि किस तरह से हिंदी पत्रकारिता अन्न-चेतना से संपन्न दिखायी पड़ती है। अन्न चेतना से आशय उस सक्रियता से है, जिसके तहत गेहूं समेत अन्य खाद्यान्नों से जुड़े समाचार बहुत ही महत्वपूर्ण तरीके से तरीके से प्रकाशित किये जाते रहे। आजादी के बाद की हिंदी पत्रकारिता की अन्न चेतना के मूल में कहीं न कहीं वह बंगाल का वह अकाल छिपा है, जो अंगरेजी शासन के दौर में सामने आया था और जिसने कम से कम से उत्तर भारत में एक मुहावरे को जन्म दिया था-भूखा बंगाली। इन पंक्तियों ने लेखक समेत तमाम लोगों ने अपनी दादी या नानी के मुंह से यह मुहावरा सुना है-भूखा बंगाली। अर्थात खाने के लिए विकट रुप से आतुर, या भूख से त्रस्त कोई व्यक्ति। आजादी के पूर्व की पत्रकारिता और आजादी के बाद की हिंदी पत्रकारिता में यह अन्न चेतना बहुत जोरदारी से देखी जा सकती है।

स्वदेशी का विचार

इस विचार के प्रवर्तक महात्मा गांधी थे। महात्माजी का मानना था-स्वदेशी वह भावना है, जो अपने आसपास उपलब्ध वस्तुओं और सेवाओं तक उपभोग को सीमित करने की प्रेरणा देती है, उन वस्तुओँ के बजाय जो दूर हैं--।

महात्मा गांधी ने महसूस किया कि –स्वदेशी एक धार्मिक अनुशासन है, जिसका पालन होना चाहिए, भले ही इससे लोगों को असुविधा महसूस हो-।

स्वदेशी का विचार यह था कि लोगों को राजनीतिक, आर्थिक मामलों में आत्मनिर्भर होना चाहिए। उन्हे स्थानीय निर्मित वस्तुओं का उपभोग करना चाहिए। महात्मा गांधी का मत था कि भारतीय लोगों की गरीबी का कारण यह है कि वे ब्रिटिश राज में स्वदेशी के विचार से हट गये हैं। स्वदेशी की ओर लौटने से ही भारत का आर्थिक उद्धार संभव है। गांधीजी के विचार में स्वदेशी का सबसे लोकप्रिय स्वरुप यह है कि हर घऱ में एक चरखा हो और हर घर के लिए आवश्यक कपड़ा उस चरखे पर काता जाये। गांधीजी ने यह घोषित किया कि वह विदेशी कपड़ा प्रयोग में नहीं लायेंगे। गांधीजी का विचार था कि चरखा उन लोगों के लिए जीविका का अतिरिक्त साधन हो सकता है, जो कृषि पर निर्भर हैं। इससे गांवों का विकास होगा और आत्मनिर्भरता का मार्ग प्रशस्त होगा।मोटे तौर पर यह माना जाना जा सकता है कि आजादी से पहले स्वदेशी विचारधारा के आर्थिक आयाम हिंदी पत्रकारिता के सामने महत्वपूर्ण तरीके से मौजूद थे।

डांडी यात्रा

31 दिसंबर, 1929 की अर्धरात्रि में भारतीय नेशनल कांग्रेस ने लाहौर में रावी के तट पर स्वतंत्रता का झंडा फहरा दिया था। 16 जनवरी, 1930 को जवाहरलाल नेहरु और महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता का घोषणापत्र जारी कर दिया था। इसके बाद आल इंडिया कांग्रेस कमेटी को यह दायित्व सौंपा गया था कि वह सिविल नाफरमानी का आंदोलन चलाये। इसका केंद्र बना डांडी मार्च, जो उस कर से उपजा था, जिसे ब्रिटिश सरकार ने नमक पर लगाया था। नमक निर्माण पर ब्रिटिश सरकार का एकाधिकार था, किसी और के द्वारा नमक का निर्माण किया जाना अपराध था।

नमक पर लगाये गये कर के विरोध में 12 मार्च, 1930 को महात्मा गांधी ने 78 सत्याग्रहियों के साथ डांडी यात्रा शुरु की। यह यात्रा 5 अप्रैल, 1930 को डांडी पर खत्म हुई। यहां गांधीजी ने चुटकी समुद्र के तट से नमक कानून को तोड़ने की घोषणा की और कहा कि मैं चुटकी भऱ नमक से ब्रिटिश साम्राज्य को हिला रहा हूं।

नमक पर कर वैसे तो आर्थिक मुद्दा था, पर इसके जबरदस्त राजनीतिक परिणाम निकले। नमक पर ब्रिटिश सरकार की उस अन्यायपूर्ण कर व्यवस्था का हिस्सा था, जिसके चलते वह सरकार भारत की जनता से अधिकाधिक वसूली करना चाहती थी। डांडी यात्रा ने भारत की जनचेतना और पत्रकारिता को कर व्यवस्था से जुडे मसलों पर शिक्षित किया। डांडी यात्रा का असर यह हुआ कि आजाद भारत में भी नमक पर कर लगाने के मसलों को डांडी यात्रा से जोड़ा गया। भारत के लिए लागू अंग्रेजों की अर्थव्यवस्था को लेकर असंतोष बहुत पहले से था। पर डांडी यात्रा का महत्व इसलिए खास हो गया कि इसमें एक आर्थिक मुद्दे से पूरे भारत की जनता को जोड़ दिया और इस तरह से सिविल नाफरमानी का महत्वपूर्ण आंदोलन बनकर इतिहास में दर्ज हो गया। मोटे तौर पर यह माना जा सकता है कि डांडी यात्रा ने कर व्यवस्था से जुड़े मसलों पर एक खास तरह की चेतना विकसित कर दी थी। हिंदी पत्रकारिता ने इसे विरासत में ग्रहण किया। मोटे तौर पर आजादी के ठीक पूर्व की अवधि के आर्थिक समाचारों को निम्नलिखित श्रेणियों में बांटा जा सकता है-

1-उद्योगों से जुड़ी खबरें
2-कृषि मंडियों और बाजारों की रिपोर्टें
3-सर्राफा बाजार की रिपोर्टें
4-भारत -ब्रिटिश आर्थिक संबंधों पर लेख आदि
5-अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक पर समाचार- लेख आदि
6-अन्न चेतना से संपन्न खबर-लेख यानी गेहूं, खाद्यान्न से जुड़े समाचार-लेख आदि

7.4.2 आजादी के बाद

स्वतंत्र भारत के 1947 से 1956 के कालखंड में प्रमुख आर्थिक मुद्दों, प्रमुख प्रवृत्तियों भाषा और प्रस्तुति का विश्लेषण। इस दौर की पत्रकारिता का विश्लेषण निम्नलिखित वर्गीकरणों में किया जा सकता है-

1-यह बात है उर्फ व्याख्यात्मक भूमिका
2-बजट कवरेज उर्फ रोटी, नमक, कपड़े की चिंता

3-बाहरी दुनिया उर्फ फूंक-फूंक कर कदम पर उत्सुकता भी

4-खाद्य चेतना उर्फ भूखे भजन ना होई

5-राजनीतिक अर्थशास्त्र उर्फ क्यूं न खाये नेता

6-कारपोरेट विमर्श और श्रमिकों की भागीदारी पर चिंतन

7-योजना उर्फ रामबाण

8-तेरा क्या होगा निजी क्षेत्र उर्फ सार्वजनिक बनाम निजी का विमर्श

9-समाजवाद विमर्श उर्फ समाजवाद बबुआ धीरे-धीरे आई

10-लघु उद्योग विमर्श उर्फ लघु ना दीजै डार

11-बाजार रिपोर्ट-अब तक हाल कमोबेश वैसा ही है

यानी कुल मिलाकर आजादी के बाद का पहला दशक इन सारे विषयों पर फोकस रहा। पत्रकारिता ने व्याख्यात्मक भूमिका ली। बजट कवरेज में आम आदमी की चिंता रही। योजना विशेष चर्चा का विषय रही। भ्रष्टाचार की शुरुआती खबरें इस कालखंड में आना शुरु हो गयी थीं।

1956-1966 कालखंड में आर्थिक पत्रकारिता

खाद्यान्न का मसला लगातार खबरों-चर्चा में बना रहा। हिंदी अखबारों ने इसे खासा महत्वपूर्ण माना। दिल्ली के हिंदुस्तान और बनारस के आज का विश्लेषण करें, तो साफ होता है कि खाद्यान्न का मसला बहुत संवेदनशीलता के साथ उठाया जाता था। इस दौर में विदेशों तक गेहूं की तलाश चलती थी और अखबारों में उस तलाश के बारे में विस्तार खबरे दी जाती थीं। इस कालखंड पर आर्थिक पत्रकारिता पर खाद्य चेतना ही छायी रही। उद्योग संबंधी खबरों को भी प्रमुखता मिलने लगीं। उद्योगों में श्रमिक संघों की क्या भूमिका रहेगी, उस विषय पर लगातार चर्चा अखबारों में होती रही। योजना संबंधी समाचार विचार भी प्रमुखता पाते रहे। समाजवाद, आय की असमानता के मसले भी लगातार महत्वपूर्ण होने लगे इस दौर में। कारपोरेट विमर्श अधिक नहीं था इस दौर में। कंपनियों से जुड़े समाचार ज्यादा नहीं होते थे। शेयर बाजार, खाद्यान्न बाजार की संक्षिप्त रिपोर्टें लगातार अखबारों में आती रहीं। राष्ट्रीयकरण के मसले इसी दशक में प्रमुखता से उठने शुरु हुए।

आर्थिक पत्रकारिता-1966-1984

समाजवाद बजरिये बैंकिंग, कर्ज के कष्ट, विदेश व्यापार, राष्ट्रीयकरण डिबेट अब भी चालू आहे, खाद्य चेतना और फिक्र-ए-महंगाई

ये सारे मसले इस दशक के बहुत महत्वपूर्ण मसले बनकर उभरे। समाजवादी और राष्ट्रीयकरण की डिबेट इस दौर में गहरी हुई। 1969 में कई बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया है। फिर 1980 में दोबारा की बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। उदारीकरण की शुरुआती आहटें भी इस दौर में सुनायी देने लगी थीं।

आर्थिक पत्रकारिता 1984-85 के बाद

1984 भारतीय पत्रकारिता जगत का महत्वपूर्ण साल है। सिर्फ इसलिए नहीं कि इस साल प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या कर दी गयी थी, बल्कि इसलिए उनकी जगह आये राजीव गांधी सिर्फ एक नयी राजनीतिक शैली लेकर ही नहीं आये थे, बल्कि एक एक नयी आर्थिक विचारधारा भी लेकर आये थे, जो कालांतर में आर्थिक उदारीकरण के नाम से जानी गयी।

1984 में *नवभारत टाइम्स* में *राजेंद्र माथुर* बतौर संपादक आ चुके थे। नवभारत टाइम्स की आर्थिक पत्रकारिता के विश्लेषण उस कालखंड की कई महत्वपूर्ण प्रवृत्तियां उजागर होती हैं।

जनसत्ता अखबार *प्रभाष जोशी* के नेतृत्व में हिंदी पत्रकारिता का एक नया स्वरुप गढ़ने की कोशिश में था। पुराने भारतीय चिंतन को आधुनिकता से जोड़ने की कोशिश में इस अखबार ने पत्रकारिता और आर्थिक पत्रकारिता में काफी कुछ नया करने का प्रयास किया।

बहुत कुछ नया अर्थव्यवस्था में भी हो रहा था। रिलायंस कंपनी सिर्फ वित्तीय आर्थिक वजहों से ही नहीं, बल्कि राजनीतिक वजहों से भी अखबारों में जगह पा रही थी।

बहुत धीमे-धीमे पर निश्चित तौर पर एक नये किस्म की अर्थव्यवस्था के निर्माण की प्रक्रिया शुरु हो रही थी। इसकी झलक अखबारों में भी दिख रही थी।

रिलायंस कंपनी शेयर बाजार में बहुत महत्वपूर्ण कंपनी के रुप में स्थापित हो चुकी थी और शेयर बाजार की खबरें इस कंपनी पर फोकस करके लिखी जाने लगी थीं। इक्कीसवीं सदी चर्चा में आ चुकी थी और नयी आर्थिक नीतियों की सार्थकता पर सवाल उठने शुरु हो चुके थे। विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष पर चर्चा जोरदारी से शुरु हो चुकी थी।

7.4.3 आर्थिक सुधारों के बाद;-उदारीकरण का नया सिलसिला-1991 में और उसके बाद- मनमोहन सिंह वित्त मंत्री बने और नरसिम्हाराव प्रधानमंत्री बने। आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया तेजी से

तेज हुई। उदारीकरण, ग्लोबलाइजेशन संबंधी विषयों पर बहस तेज हुई। निजीकरण के मसले लगातार महत्वपूर्ण तौर पर अखबारों में सामने आये।

हिंदी की आर्थिक पत्रकारिता में श्रम संबंधी रिपोर्टिंग की बहुत जगह नहीं रही है। नवभारत टाइम्स में मुकुल की रिपोर्टिंग इस प्रवृत्ति का अपवाद रही है। इस शोध परियोजना लेखक की जानकारी में मुकुल ही श्रम संबंधी मामलों के एकमात्र विशेषज्ञ रिपोर्टर रहे हैं, कालांतर में वह पत्रकारिता छोड़ गये। मुकुल ने श्रम संबंधी रिपोर्टिंग नवभारत टाइम्स में की, जहां वह रिपोर्टर थे। मुकुल के पत्रकारिता छोडऩे के बाद श्रम संबंधी मसलों पर नियमित रिपोर्टिंग का भी खात्मा हो गया, यह स्थिति अभी तक बनी हुई है। आर्थिक उदारीकरण का सफर जैसे-जैसे आगे बढ़ा, श्रम संबंधी खबरों की जगह अखबारों में लगातार कम होती चली गयी। इसकी एक वजह तो यह भी मानी जा सकती है कि अखबारों में अपमार्केट से जुड़ी खबरें देने का चलन बढ़ा। अपमार्केट से आशय समाज के संपन्न वर्गों से जुड़ी खबरों को देने की प्रवृत्ति बढ़ी। इसका सीधा रिश्ता विज्ञापन से था। विज्ञापनदाताओं का आग्रह होता है कि आप हमारी खबरें भी छापें। अखबार के अर्थशास्त्र को जानने वाले जानते हैं कि विज्ञापनों का अखबारों का बहुत महत्व है। शापिंग माल, फैशन शो आदि की जगह बढ़ती गयी और श्रम संबंधी कवरेज लगातार कम हुई। स्टाक बाजार की कवरेज की जगह बढ़ी। म्यूचुअल फंड के लिए जगह बढ़ी। पेटेंट, डब्लूटीओ, स्वदेशी विमर्श, सार्वजनिक बनाम निजी पर डिबेट तीखी हुई। योजना की प्रासंगिकता घट रही थी, वह अखबारों में भी दिख रहा था। 1946 से 2012 तक हिंदी की आर्थिक पत्रकारिता यात्रा यूं तो बहुत लंबी है। पर देखने की बात यह है कि इस यात्रा में वह चल कितना पायी है। क्या अर्थव्यवस्था, पूंजी बाजार, कृषि क्षेत्र, उपभोक्ताओं की प्रवृत्तियों को वाकई सही जगह हिंदी पत्रकारिता में मिल पायी है। यह सवाल अभी महत्वपूर्ण है। 2012 की आर्थिक पत्रकारिता की तस्वीर क्या है, इस सवाल का जवाब तलाशने की कोशिश भी होनी चाहिए। 2012 तक भारतीय अर्थव्यस्था विश्व की महत्वपूर्ण अर्थव्यवस्थाओं के तौर पर चिन्हित होने लगी थी। खऱीद क्षमता के आधार पर इसे अमेरिका, चीन और जापान के बाद रखा जाता है यानी विश्व की चौथी बड़ी अर्थव्यवस्था। इसका एक परिणाम यह हुआ है कि किसी भी घटनाक्रम को अब अर्थव्यस्था से जोड़कर देखा जाने लगा है। उदाहरण के लिए आज से करीब पंद्रह साल पहले यह अकल्पनीय था कि आतंकवादी हमलों के तुरंत कोई अखबार इसके आर्थिक पक्ष का भी विश्लेषण करे। पर अब ऐसा हो रहा है। इस तरह के सवाल पूछे जा रहे हैं कि इन हमलों का भारत की अर्थव्यवस्था पर क्या असर पड़ेगा।

अर्थव्यवस्था में नयी तरह की कंपनियां विकसित हो रही है। रिटेल, सेवा क्षेत्र, वित्तीय क्षेत्र में बहुत तेजी से विकास हुआ। शापिंग माल्स बहुत तेजी से बन रहे हैं। म्युचुअल फंड योजनाओं का आकार प्रकार लगातार बढ़ रहा है। क्या यह इस सबकी तस्वीर हिंदी के अखबारों में दिखायी पड़ती है। जवाब है नहीं।

सेनसेक्सीकरण

सेनसेक्स उर्फ मुंबई शेयर बाजार के संवेदनशील सूचकांक जरुर महत्व हिंदी अखबारों में समझा जाने लगा है और कुछ ज्यादा ही समझा जाने लगा है। हर मसले को सूचकांक से जोड़कर देखा जाना लगा है। दैनिक भास्कर दिल्ली फरीदाबाद राष्ट्रीय संस्करण 13 जुलाई, 2006 के पहले पेज पर ऊपर दर्ज है- आतंकी को मुंह चिढ़ाकर सेंसेक्स 316 अंक चढ़ा।

सेनसेक्स से तमाम मसलों को जोड़कर देखना ठीक नहीं है। सेनसेक्स का गिरना या उठना तमाम कारकों पर निर्भर होता है। सेनसेक्स पूरी अर्थव्यवस्था एक हिस्सा भर है, पर यह जैसे पूरी अर्थव्यस्था का प्रतिनिधि बन गया है। यह प्रवृत्ति असंतुलन की ओर इशारा करती है।

कॉरपोरेट चर्चा

एक बदलाव यह हुआ है कि कारपोरेट चर्चा अब संपादकीय पेज पर जा पहुंची है। कारपोरेट यानी कंपनियों को अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण हिस्से के तौर पर मंजूर कर लिया गया है। हर हिंदी अख़बार में कंपनियों पर विस्तार से चर्चा होती है।

बाजार रिपोर्टिंग

शेयर बाजार की रिपोर्टिंग में अब तक यह बदलाव आ चुका है कि कई अखबारों में शेयरों के भावों में कंपनियों के नाम अंगरेजीमें दिये जा रहे हैं। शेयर बाजार से जुड़े सूचकांक दिये जा रहे हैं। पर विस्तृत विश्लेषण की दरकार है। यहां पाठकों के बीच शोध कराया जाना चाहिए कि शेयर, और कामोडिटी फ्यूचर्स के क्षेत्र में वे क्या पढ़ना चाहते हैं। किस फार्मेट में पढ़ना चाहते हैं। बाजार के भावों को सिर्फ औपचारिकता के निर्वाह पर लिया जाना उचित नहीं है। इससे अखबार के कीमती पेज भी खर्च होते हैं और पाठकों को अपने मतलब की सामग्री भी मिल पाती है या नहीं, इसका पता नहीं लग पाता। आवश्यक है कि पाठकों के मध्य एक शोध करवा कर इन क्षेत्रों में उनकी रुचियों को जान लिया जाये।

1946 से 2012 तक बाजार भावों की रिपोर्टिंग के तौर-तरीकों में खास फर्क नहीं आया है। आना चाहिए था। नहीं आया। खास तौर पर जब से कामोडिटी एक्सचेंजों ने व्यापक तौर पर काम शुरु किया है, तब से तो यह और भी जरुरी हो गया है कि बाजार भावों की रिपोर्टिंग के तौर-तरीकों में परिवर्तन हो। यह परिवर्तन शोध के आधार पर होना चाहिए। इस पेज के पाठकों के बीच शोध कराया जाना चाहिए कि आखिर उनके लिए क्या महत्वपूर्ण है और वह उसे किस तरह से फार्मेट में पढ़ना चाहेंगे। सवाल यह पूछा जाना चाहिए कि इस तरह की रिपोर्टिंग को कितने लोग पढ़ रहे हैं। इस तरह की रिपोर्टिंग के टारगेट पाठक कौन से हैं, जिन्हे टारगेट माना जा रहा है, उनकी इसमें रुचि है भी या नहीं। इस तरह के सवालों के अब शोधपरक जवाब तलाशे जाने चाहिए।

बाजार भावों की रिपोर्टिंग के पेंच

बाजार भावों की रिपोर्टिंग हिदी अखबारों में सर्वाधिक कनफ्यूजन वाला क्षेत्र है। छापने वालों पता नहीं है कि किस पाठक वर्ग के लिए छापा जा रहा है। पाठक वर्ग की मांग क्या है। फार्मट क्या होना चाहिए। भावों की प्रामाणिकता क्या है। इन सारे सवालों के जवाब तलाशे जाने की जरुरत है। बाजार भावों के बारे में अधिकांश मामलों में जैसे औपचारिकता का निर्वाह होता है। इस संबंध में सुस्पष्ट दृष्टि का अभाव सर्वत्र दिखायी देता है।

7.5 कैसे अंजाम दिया जाता है

7.5.1 डेस्क- उदाहरण सहित

डेस्क पर आर्थिक समझदारी वाले लोग मिलते हैं। उनसे उम्मीद की जाती है कि वो किसी खबर के आर्थिक आयामों को समझेंगे और उस हिसाब से खबर पेश करेंगे। किसी मसले पर सरकार की मजबूरियां, वैचारिक आग्रह का घालमेल क्या है। इस मसले पर समझदारी की उम्मीद डेस्क से का जाती है। एक खबर में कितनी तरह के कोण डाले जा सकते हैं, इसका उदाहरण यह खबर है-

जनसत्ता 4 अगस्त 1995 पेज नंबर सात तीन कालम की खबर

सरकारी उद्योगों पर बहस आरोपों में फंसी

जनसत्ता संवाददाता

नई दिल्ली 3 अगस्त। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की हालत के बारे में लोकसभा में चल रही बहस पर

आज पश्चिम बंगाल की राजनीतिक प्रतिद्वंदिता हावी हो गई। सरकार के दो मंत्रियों अजित कुमार पांजा और संतोष मोहन देव ने इस मुद्दे पर वामपंथियों खास तौर पर मार्क्सवादी पार्ट के सदस्यों पर तगड़ा जवाबी हमला करते हुए कहा कि –पश्चिम बंगाल की सरकार पैसे के लिए विदेशों में जाती है लेकिन भारत में ये लोग सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के लिए घड़ियाली आंसू बहाते हैं। ---इसके बाद करीब डेढ़ घंटे तक कांग्रेस और वामपंथी सदस्य एक दूसरे से भिड़े रहे। परी बहस के दौरान दोनों ओर से लगातार टोकाटाकी चलती रही।

.....बाद में उद्योग मंत्री के .करुणाकरण ने आश्वासन दिया कि सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को बंद नहीं करना चाहती। लेकिन उन्होने यह भी कहा कि घाटे वाले उद्योगों को अनंतकाल तक चालू भी नहीं रखा जा सकता।

..... पूर्व प्रधानमंत्री चंद्रशेखर ने भी बहस में हिस्सा लेते हुए कहा कि जिस दिन नई आर्थिक नीतियों को स्वीकार किया गया था उसी दिन सार्वजनिक क्षेत्र को खत्म करने का फैसला कर लिया गया था।

.....सोमनाथ चटर्जी के आरोपों का जवाब देते हुए कोयला मंत्री पांजा ने जानना चाहा कि खुद पश्चिम बंगाल सरकार ने कितने सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के साथ समझौता किया है। उन्होने कहा कि राज्य सरकार ने करीब सौ समझौतों पर दस्तखत किए हैं लेकिन इनमें एक भी सरकारी क्षेत्र के साथ नहीं किया गया है। उनके समर्थन में संतोष मोहन देव आगे आए और अपनी बात रखने के बाद आखिर में बोले कम से कम एक उदाहरण मैं इस बात का दे सकता हूं कि पश्चिम बंगाल की सरकार सार्वजनिक इकाइयों को निजी हाथों को बेच रही है। उन्होने कहा कलकत्ता का ग्रेट ईस्टर्न होटल इसका उदाहरण है। इस होटल को सरकारी क्षेत्र से हटाकर निजी क्षेत्र को सौंप दिया गया है। .....

7.5.2 रिपोर्टिंग- उदाहरण सहित

हिंदी के अखबारों में आर्थिक मसलों के राजनीतिक पक्ष का भी ध्यान रखना होता है। इसलिए अर्थशास्त्र की राजनीति और राजनीति का अर्थशास्त्र समझना जरुरी है। इसे कैसे समझा जाता है, इसका एक उदाहरण यह है-*राष्ट्रीय सहारा 16 दिसम्बर 1994 पहला पेज चार कालम का एंकर जिसमें चंद्रशेखर, ठेंगड़ी, वहीदुद्दीन का एक मंच से भाषण*

सहारा समाचार नयी दिल्ली 15 दिसम्बर। पूर्व प्रधानमंत्री चंद्रशेखर ने कहा है कि अगर देश वर्तमान आर्थिक नीतियों पर चलता रहा, तो आने वाले समय में जनतंत्र खतरे में पड़ जायेगा। उन्होने देश के नौजवानों का आह्वान किया कि वे स्वदेशी की मूल भावना को समझें। श्री चंद्रशेखर आज स्वदेशी जागरण मंच द्वारा स्वदेशी सुरक्षा पखवाड़ा के समापन के उपलक्ष्य में आयोजित एक सार्वजनिक सभा को संबोधित कर रहे थे। .....श्री चंद्रशेखर ने कहा कि स्वदेशी का संबंध किसी धर्म या जाति से नहीं, बल्कि राष्ट्र से है। देश के सामने पिछले तीन वर्षों से बहुराष्ट्रीय कंपनियों और आर्थिक नीतियों के चलते एक नयी चुनौती खड़ी हो रही है। जिसका मुकाबला संकल्प शक्ति के साथ किया जा सकता है। पूर्व प्रधानमंत्री ने कहा कि इन तीन वर्षों में जो अपराध हुआ है वह यह है कि एक मानसिकता पैदा की गयी कि देश बगैर किसी बाहरी आर्थिक मदद के आगे नहीं बढ़ सकता लेकिन जब तक मानसिकता को नहीं भुलाया जाएगा तब तक स्वदेशी की बात नहीं की जा सकती है। ..... चिंतक व श्रमिक नेता दत्तोपंत ठेंगड़ी ने कहा कि स्वदेशी जागरण मंच की स्थापना के साथ ही देश में दूसरा स्वतंत्रता आंदोलन शुरु हुआ है। उन्होने कहा कि दो विश्व युद्धों के में टैंकों व अन्य हथियारों का प्रयोग हुआ वहीं आज यह तीसरा युद्ध आर्थिक नीतियों के द्वारा लड़ा जा रहा है। ..... उन्होने कहा सरकार ने राष्ट्र हितों की उपेक्षा करके गैट पर हस्ताक्षर किये और विश्व बैंक की शर्तों को माना। यह आर्थिक नीति पूंजीपतियों का एक षडयंत्र है जिसके तहत विकसित देश विकासशील देशों पर प्रभाव जमाना चाहते हैं।
.....

राष्ट्रीय सहारा ने भी तमाम आर्थिक मसलों पर महत्वपूर्ण संवेदनशीलता प्रदर्शित की है और अपने शोधपरक साप्ताहिक परिशिष्ट हस्तक्षेप के जरिये तमाम आर्थिक मसलों की बहस में सार्थक हस्तक्षेप किया है।

7.6 आर्थिक पत्रकारिता का भविष्य

आर्थिक पत्रकारिता का भविष्य बहुत उज्ज्वल है। आर्थिक मुद्दे लगातार महत्वपूर्ण हो रहे हैं। शेयर बाजार में निवेशकों का निवेश लगातार बढ़ रहा है। इसलिए जरुरी है कि अख़बार इन सारे मसलों पर व्यापक और सहज कवरेज पेश करें हिंदी पाठकों के लिए। हालांकि हिंदी में सिर्फ आर्थिक अखबारों पर फोकस अख़बार विफल हो चुके हैं। पर भविष्य में भी ऐसा ही होगा, यह नहीं कहा जा सकता है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि पूरे अख़बार में आर्थिक कवरेज की भूमिका लगातार बढ़ रही है।

टीवी चैनलों से लेकर पत्र-पत्रिकाओं में। इसलिए आर्थिक पत्रकारिता के भविष्य को लेकर आश्वस्त हुआ जा सकता है

7.7 छात्रों के लिए दिशा-निर्देश

●आर्थिक पत्र पत्रिकाओं का लगातार अध्ययन जरुरी है।

●तमाम आर्थिक टीवी चैनलों को देखना जरुरी है। और यह भी लगातार देखें कि कैसे तमाम जटिल मसलों को सहज तरीके से पेश किया जा सके। इकोनोमिक टाइम्स, बिजनेस स्टैंडर्ड अख़बार हिंदी में उपलब्ध हैं। इन्हें देखा जाना चाहिए। सीएनबीसी आवाज टीवी चैनल आर्थिक चैनल हिंदी में उपलब्ध है, यह नियमित तौर पर देखा जाना चाहिए। समय समय पर आपस में डिबेट भी करनी चाहिए। किसी भी आर्थिक मसले के राजनीतिक, ग्लोबल आयाम समझे जाने की कोशिश होनी चाहिए।

●स्टाक बाजार, तेल के भाव और बजट इन पर लगातार शोध चलना चाहिए। इन्हें समझने की प्रक्रिया लगातार चलनी चाहिए।

7.8 सारांश

आर्थिक परिवेश बदल रहा है। लगातार चीजें बन रही हैं, खत्म हो रही हैं, परिवर्तित हो रही हैं। उन पर रोज के हिसाब से नजर रखनी है। उन्हें लगातार समझने की कोशिश करनी चाहिए। आर्थिक पत्रकारिता का भविष्य उज्ज्वल है और इसमें रोजगार की संभावनाएं भी अपार हैं। आर्थिक समाचारों के प्रति लोगों में जागरूकता बढ़ रही है। अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय परिवेश में आर्थिक संदर्भों को जानने के लिए लोगों में ललक रहती है और उसी के अनुरूप वे फैसले करते हैं।

7.9 अभ्यास

●रोज कम से कम एक घंटा नौ से दस रात में सीएनबीसी आवाज चैनल देखें।

●रोज हर अख़बार के बिजनेस पेज देखें।

●रोज इकोनोमिक टाइम्स और बिजनेस स्टैंडर्ड पढ़ें।

7.10 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1-आर्थिक पत्रकारिता से क्या आशय है। इसमें कौन से मसले कवर किये जाते हैं।

प्रश्न 2-आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया के क्या परिणाम आर्थिक पत्रकारिता पर पड़े।

प्रश्न 3- उदारीकरण की प्रक्रिया के बाद श्रम संबंधी मसलों की रिपोर्टिंग पर टिप्पणी लिखिये।

प्रश्न 4-सार्वजनिक बनाम निजी की डिबेट क्या है।

प्रश्न 5-बहुराष्ट्रीय बनाम स्वदेशी की डिबेट क्या है, साफ कीजिये।

7.11 संदर्भ ग्रंथ

1. पाण्डेय, डॉ. पृथ्वीनाथ, (2004), पत्रकारिता: परिवेश एवं प्रवृत्तियां, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

2. विभिन्न समाचार पत्रों की कतरनें।

3. तिवारी, डॉ अर्जुन, कृषि ग्रामीण पत्रकारिता

4. डॉ मनकेकर, मीडिया एंड द थर्ल्ड वर्ल्ड

इकाई-8

खेल जगत और मीडिया

इकाई की रूपरेखा

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 भारत में खेलों की स्थिति

8.3 प्रमुख खेल

8.4 खेल पत्रकारिता क्या है

8.5 भारत में खेल पत्रकारिता

8.6 हिंदी खेल पत्रकारिता

8.7 खेल पत्रकारिता की पृष्ठभूमि

8.8 खेल पत्रकारिता के रूप

8.9 कैसे कार्यरूप दिया जाता है

8.10 खेल पत्रकारिता से ऐसे जुड़ें

8.11 सारांश

8.12 शब्दावली

8.13 अभ्यास प्रश्न

8.14 संदर्भ ग्रंथ

8.0 प्रस्तावना

मीडिया को कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के बाद लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ कहा जाता है। पत्रकारिता के माध्यम से मीडिया का काम जनता को नयी-नयी घटनाओं की सूचनाएं देना, विभिन्न मुद्दों पर उसे जागरूक करना और मनोरंजन प्रदान करना है। इस सबके लिए मीडिया में पत्रकारों को अलग-अलग क्षेत्रों की विशेषज्ञता अर्जित करके अपना काम करना होता है। पत्रकारिता के मुख्य क्षेत्र राजनीति, अपराध, रक्षा, स्वास्थ्य, स्थानीय निकाय, विधि, शिक्षा, आर्थिक, सामाजिक, खेल, मनोरंजन व सिनेमा, संगीत, कला, साहित्य, संस्कृति, ग्रामीण और विकास आदि हैं। पत्रकारिता में इन सभी का अलग-अलग महत्व होता है। इनमें खेल पत्रकारिता का विशेष स्थान है, क्योंकि खेलों और उनके समाचारों में हर आयु वर्ग के लोगों की रुचि होती है।

विशेषज्ञता का क्षेत्र

आम तौर पर यह माना जाता है कि मीडिया में जो किसी अन्य क्षेत्र का विशेषज्ञ नहीं है, उसे खेल डेस्क पर लगा दिया जाये। मगर यह धारणा बिल्कुल गलत है। खेल पत्रकारिता विशेषज्ञता का क्षेत्र है। खेल पत्रकारों को लगभग 50 राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय खेलों के इतिहास, नियमों, प्रमुख टूर्नामेंटों व उनके विजेताओं, प्रमुख टीमों व खिलाडिय़ों, आंकड़ों और रोचक जानकारियों का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। सच तो यह है कि इतनी विशेषज्ञता और जानकारी की जरूरत शायद पत्रकारिता के किसी और क्षेत्र में नहीं पड़ती। इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है। किसी अखबार या न्यूज चैनल का कोई रिपोर्टर अगर कांग्रेस पार्टी की बीट कवर करता है, तो भाजपा की बीट कभी कवर न करने के बावजूद वह उसकी कवरेज भी कर सकता है। आर्थिक पत्रकारिता में बैंकिंग की बीट कवर करने वाला रिपोर्टर जरूरत पडऩे पर बीमे या शेयर बाजार की बीट कवर कर सकता है। शिक्षा का रिपोर्टर आवश्यकता होने पर स्वास्थ्य की रिपोर्टिंग कर सकता है। खेल पत्रकारिता में ऐसा नहीं हो सकता। क्रिकेट के बड़े से बड़े रिपोर्टर ने अगर कभी हॉकी, टेनिस या गोल्फ की रिपोर्टिंग नहीं की है या वह इन खेलों के नियम अच्छी तरह से नहीं जानता, तो वह कितनी भी योग्यता होने पर इनकी रिपोर्टिंग नहीं कर सकता।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि खेल पत्रकारों को न केवल सबसे ज्यादा जानकारी रखनी पड़ती है, बल्कि उसे लगातार अपडेट भी करते रहना पड़ता है। सभी खेलों की प्रमुख टीमों और खिलाडिय़ों के प्रदर्शन

को लगातार फॉलो करना पड़ता है। उनके आगामी प्रदर्शन पर नजर रखनी होती है। आंकड़ों को लगातार अपडेट करना पड़ता है।

विविधता भी जरूरी

यह तो रही खेल पत्रकारों के होम वर्क की बात। खेलों और खिलाडिय़ों के समाचारों से लेकर इंटरव्यू और विश्लेषण तक की तमाम विधाओं में विविधता बनाए रखना भी जरूरी होता है। बाकी सभी क्षेत्रों के समाचार चाहे सभी जगह लगभग एक से भले ही आ जायें, मगर खेल समाचारों में विशिष्टता रखनी होती है। इसकी वजह यह है कि खेल प्रेमी बहुत चाव से खेल समाचारों का इंतजार करते हैं। मैचों के लाइव प्रसारण और टीवी न्यूज चैनलों पर ब्रेकिंग न्यूज के माध्यम से नवीनतम सूचनाएं तुरंत मिलती रहती हैं। खेल पत्रकारों को अपने मीडिया में उन समाचारों को प्रस्तुत करते समय उनमें और ज्यादा नयापन तथा विविधता लाने की चुनौती से जूझना पड़ता है।

इससे स्पष्ट है कि खेल पत्रकारिता का एक विशिष्ट स्थान है। खेल पत्रकारों को न केवल सभी खेलों का तकनीकी ज्ञान हासिल करना चाहिए, बल्कि खेलों और खिलाडिय़ों पर हर पल सजग दृष्टि भी रखनी चाहिए। खेलों और खिलाडिय़ों के इतिहास पर तो उनकी पकड़ होनी ही चाहिए, उन्हें खुद को लगातार अपडेट भी करते रहना चाहिए। इसके लिए काफी तैयारी और मेहनत करनी पड़ती है। यह सब करने के बाद जो आनंद खेल पत्रकारिता में आता है, वह शायद पत्रकारिता की किसी और विधा में नहीं आता। वास्तव में, खेल पत्रकारिता को कला और विज्ञान का संगम भी कहा जा सकता है। इस संगम में उतरकर खेल पत्रकार खुद तो एक रोमांचक काम करने का आनंद उठाते ही हैं, वे लाखों-करोड़ों खेल प्रेमियों को भी आकर्षक समाचार, सूचनाएं तथा मनोरंजन प्रदान करते हैं। यही सभी खेल पत्रकारों का उद्देश्य होता है।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- बता सकेंगे कि भारत में खेलों की स्थिति क्या है।
- खेल पत्रकारिता के इतिहास को स्पष्ट कर सकेंगे।

●समझा सकेंगे कि खेल पत्रकारिता आज किस तरह की है।

●स्पष्ट कर सकेंगे कि खेल पत्रकारिता में कैसी चुनौतियां हैं

●समझ सकेंगे कि इसमें किस तरह से प्रवेश किया जाए

8.2 भारत में खेलों की स्थिति

राजनीतिक, आर्थिक और सामरिक मजबूती तथा वर्चस्व के बाद दुनिया में कोई देश अपनी पहचान खेलों में हासिल की गयी उपलब्धियों के आधार पर बनाता है। उदाहरण के लिए क्यूबा, केन्या और इथोपिया जैसे देशों ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान खेलों के जरिये ही बनायी है। मुक्केबाजी में क्यूबा और एथलेटिक्स की मध्यम व लंबी दूरी की दौड़ों में केन्या व इथोपिया के खिलाड़ी छाये रहते हैं। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद जापान, चीन और कोरिया ने भी खेल-मैदानों में जलवे दिखाकर दुनिया को अपनी ताकत का अहसास कराया।

स्पष्ट है कि किसी भी देश की अंतरराष्ट्रीय छवि बनाने में खेलों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। खेलों की स्पर्धाएं जब खेल भावना से होती हैं, तो वे दो देशों के बीच कटुता की दीवारों को गिराने का काम भी करती हैं। मार्च, 2011 में जब पाकिस्तान की टीम भारत के खिलाफ विश्व कप क्रिकेट का सेमीफाइनल मैच खेलने मोहाली आयी, तो दोनों टीमों के बीच कड़े मुकाबले के बावजूद आपसी सौहार्द भी नजर आया। इसीलिए भारतीय उपमहाद्वीप में 'क्रिकेट डिप्लोमैसी' और यूरोप में 'फुटबॉल डिप्लोमैसी' जैसे शब्द बहुत लोकप्रिय हुए हैं।

आज खेलों ने भले ही मैदानी स्पर्धा से व्यावसायिकता तक का सफर तय कर लिया है, मगर पहले ऐसा नहीं था। कभी भारत में एक कहावत चलती थी- *'खेलोगे-कूदोगे तो होगे खराब,पढ़ोगे-लिखोगे तो बनोगे नवाब*'। तब खेल या तो सम्पन्न लोगों के लिए विलासिता थे, या आम लोगों के लिए सेहतमंद बने रहने का माध्यम।

भारत में आजादी से पहले कबड्डी, खो-खो, कुश्ती, शरीर सौष्ठव (बॉडी बिल्डिंग), हॉकी, फुटबॉल और क्रिकेट प्रमुख खेल थे। इनमें से हॉकी, फुटबॉल और क्रिकेट अंग्रेजों की सैनिक छावनियों में खेले जाते थे। वहां से निकलकर ये धीरे-धीरे आम नागरिकों तक पहुंचे। क्रिकेट काफी समय तक रियासतों के

राजाओं, नवाबों और ओहदेदारों तक सीमित रहा। मुम्बई (तब बम्बई) में 20 वीं शताब्दी के शुरू में यह पेंटागुलर और क्वाड्रेंगुलर टूर्नामेंटों के जरिये आम लोगों तक पहुंचा।

फुटबॉल कोलकाता (तब कलकत्ता) के मैदानों में लोकप्रिय होने के बाद देश भर में फैल गयी। हॉकी में भारत ने 1928 में एम्सटरडम ओलिंपिक में पहली बार स्वर्ण पदक जीता, तो यह खेल भी देश के गांव-गांव तक पहुंच गया। लगातार छह स्वर्ण पदक जीतने के परिणामस्वरूप यह भारत का राष्ट्रीय खेल बन गया। हालांकि 2008 में बीजिंग ओलिंपिक के लिए भारतीय हॉकी टीम क्वालिफाई भी नहीं कर पायी थी, पर अब भी राष्ट्रीय खेल हॉकी ही है।

पहले एशियाड से खेल संस्कृति को बढ़ावा

आजादी के बाद 1951 में पहले एशियाई खेल नयी दिल्ली में आयोजित हुए। उनमें भारत 10 स्वर्ण, 12 रजत और 12 कांस्य पदक जीतकर जापान के बाद दूसरे स्थान पर रहा। इस सफलता के बाद देश में खेल संस्कृति को बढ़ावा मिला। जिला, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर सभी प्रमुख खेलों के प्रशिक्षण का इंतजाम किया गया। इन खेलों की एसोसिएशनें हर स्तर पर गठित करके उन्हें भारतीय ओलिंपिक एसोसिएशन (आईओसी) के अंतर्गत लाया गया। केवल भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड (बीसीसीआई) स्वायत्त रहा। वह आज भी आईओए के अंतर्गत नहीं है। भारतीय खेल प्राधिकरण (साई) के प्रशिक्षण केन्द्र जगह-जगह खोले गये। सभी खेलों की जिला, राज्य और राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताएं नियमित रूप से आयोजित की जाने लगीं। एशियाड और ओलिंपिक खेलों जैसी अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं के लिए पहले से योजना बनाकर प्रशिक्षण दिया जाने लगा। इसके नतीजे भी सामने आये। ओलिंपिक खेलों में भारत भले ही ज्यादा सफलता नहीं पा सका, लेकिन एशियाड और दक्षिण एशियाई खेलों में भारत ने अपनी पहचान बनायी।

1960 के दशक में रामनाथन कृष्णन, 1970 के दशक में अमृतराज बंधुओं, 1980 के दशक में रमेश कृष्णन और उसके बाद लिएंडर पेस, महेश भूपति व सानिया मिर्जा के बेहतरीन प्रदर्शन से भारत में टेनिस लोकप्रिय हुई।
1970 व 80 के दशक में प्रकाश पडुकोण और उसके बाद सैयद मोदी, पुलेला गोपीचंद व सायना नेहवाल की सफलता से बैडमिंटन को लोकप्रियता मिली।

हॉकी में भारत का प्रदर्शन 1968 के मेक्सिको ओलिंपिक से गिरना शुरू हुआ, लेकिन 1975 में कुआलालंपुर में हुआ पहला हॉकी विश्व कप जीतकर भारत इस खेल के जलवे को बनाये रहा।
एथलेटिक्स, कुश्ती और निशानेबाजी में भी भारतीय खिलाडिय़ों ने समय-समय पर अच्छे प्रदर्शन किये। बिलियड्र्स और स्नूकर में कई एशियाई और विश्व चैंपियन भारत से निकले।

आधुनिक खेल सुविधाओं का ढांचा

नयी दिल्ली में 1982 में आयोजित एशियाई खेलों से आधुनिक खेल सुविधाओं का ढांचा मिला। यहीं 2010 में हुए राष्ट्रमंडल खेलों से यह ढांचा और बढ़ा। इससे खेलों का प्रचार भी हुआ और हर खेल की राष्ट्रीय टीम में देश के दूरदराज के कोनों से भी खिलाड़ी आने लगे। पिछले दो दशक में क्रिकेट के अलावा जिस खेल में भारत ने सबसे ज्यादा नाम कमाया है, वह है शतरंज। विश्वनाथन आनंद रूसी वर्चस्व को तोड़कर चार बार विश्व चैंपियन बने। सचिन तेंडुलकर के पहला टेस्ट मैच खेलने से दो साल पहले, 1987 में ही आनंद जूनियर विश्व शतरंज चैंपियन बन चुके थे। उनकी उपलब्धियां सचिन तेंडुलकर से कम नहीं मानी जा सकतीं, क्योंकि उन्होंने बिना किसी सहायता या समर्थन के एक अत्यधिक प्रतिस्पर्धी खेल में सफलता की बुलंदियों को छुआ है। अंतरराष्ट्रीय स्तर के अनुरूप बने रहने के लिए उन्हें स्पेन में रहना पड़ा, मगर वे अपनी हर उपलब्धि देश के नाम करते रहे। आनंद की सफलता से प्रेरित होकर भारत में अनेक युवा शतरंज खिलाड़ी सामने आये और ग्रैंड मास्टर बने।

क्रिकेट की लोकप्रियता

भारत ने 1932 में पहला क्रिकेट टेस्ट मैच इंग्लैंड के खिलाफ लॉड्र्स में खेला था। अनेक खिलाडिय़ों के शानदार प्रदर्शन के बावजूद देश में क्रिकेट की लोकप्रियता 1971 में तब बढ़ी, जब अजित वाडेकर की कप्तानी में भारतीय टीम ने वेस्ट इंडीज से उसी की धरती पर टेस्ट शृंखला जीती। 1983 में कपिल देव की टीम ने एकदिवसीय प्रूडेंशियल विश्व कप और 2007 में महेंद्र सिंह धोनी की टीम ने पहला ट्वेंटी-20 विश्व कप जीता, तो क्रिकेट का जुनून सबेक सिर चढ़ गया। 2008 में आईपीएल की शुरुआत हुई। अभी तक पांच आईपीएल सीजन में क्रिकेट का यह नया अवतार रोमांच और लोकप्रियता के नये रेकॉर्ड बना चुका है। आज भारत में सभी प्रमुख खेल खेले जाते हैं, मगर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत कभी दूसरे एशियाई देशों चीन और जापान जैसा प्रदर्शन नहीं कर सका। इसकी वजह है यहां की खेल एसोसिएशनों पर गैर-खिलाडिय़ों का कब्जा, उनके कामकाज में पेशेवरपन का अभाव, गुटबाजी और अंतरराष्ट्रीय

स्तर की सुविधाएं व प्रशिक्षण न होना। इन बाधाओं को दूर करके भारत खेलों में भी महाशक्ति बन सकता है।

8.3 प्रमुख खेल

वैसे तो दुनिया भर में सैकड़ों खेल हैं, लेकिन 34 खेलों को ही ओलिंपिक खेलों में शामिल किया गया है। इन 34 खेलों के अलावा हर देश अपने परंपरागत खेल भी हैं। एशियाई और अफ्रीकी खेलों में कभी-कभी परंपरागत खेलों को प्रदर्शनी खेल के रूप में शामिल किया जाता है, फिर हटा दिया जाता है। भारत और भारतीय उपमहाद्वीप का सबसे लोकप्रिय खेल क्रिकेट न तो एशियाई खेलों में शामिल है, न ही ओलिंपिक खेलों में। सभी खेलों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

इनडोर खेल और आउटडोर खेल

इनडोर खेल

किसी स्टेडियम या स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स में दीवारों के बीच और छत के नीचे खेले जाने वाले खेल इनडोर खेल होते हैं। बंद कमरे में खेले जाने के कारण ये किसी भी मौसम में खेले जा सकते हैं।

प्रमुख इनडोर खेल इस प्रकार हैं-

1. बैडमिंटन 2. टेबल टेनिस 3. स्क्वैश 4. कुश्ती 5. मुक्केबाजी (बॉक्सिंग) 6. भारोत्तोलन (वेटलिफ्टिंग) 7. पावरलिफ्टिंग 8. शरीर सौष्ठव (बॉडी बिल्डिंग) 9. तलवारबाजी (फेन्सिंग) 10. स्नूकर 11. बिलियर्ड्स 12. शतरंज 13. कैरम 14. जिम्नास्टिक्स 15. जूडो 16. कराटे/कुंगफू 17. ताएक्वांडो

आउटडोर खेल

1. हॉकी 2. फुटबॉल 3. रगबी 4. क्रिकेट 5. बास्केटबॉल 6. वॉलीबॉल 7. हैंडबॉल 8. थ्रोबॉल 9. नेट बॉल 10. सॉफ्टबॉल 11. आइस हॉकी 12. एथलेटिक्स 13. तैराकी 14. टेनिस 15. तीरंदाजी (आर्चरी) 16. निशानेबाजी (शूटिंग) 17. पोलो 18. गोल्फ 19. नौकायन 20. बेसबॉल 21. मोटर स्पोर्ट्स 22. पर्वतारोहण (माउंटेनियरिंग) 23. कबड्डी 24. खो-खो 25. घुड़सवारी (एक्वेस्ट्रियन) 26. घुड़दौड़ (हॉर्स रेसिंग) 27. ट्राएथलॉन

इनके अलावा कई स्थानीय व क्षेत्रीय खेल भी होते हैं। खेल पत्रकार को उनके बारे में भी जानकारी होनी चाहिए, लेकिन इन 17 इनडोर और 27 आउटडोर खेलों का तो पूरा ज्ञान होना ही चाहिए। खासतौर पर, इन खेलों के नियम तो कंठस्थ होने चाहिए। शुरू में यह काम जरा मुश्किल लगता है, पर खेलों की खूबी ही यह है कि खेल-खेल में सब कुछ आ जाता है। बस इच्छा और रुचि होनी चाहिए।

8.4 खेल पत्रकारिता क्या है

खेल पत्रकारिता का मतलब है खेलों की पत्रकारिता। इसमें तमाम खेलों की स्थानीय, क्षेत्रीय, राज्य, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर की खेल गतिविधियों की कवरेज आ जाती है। वास्तव में, यह पत्रकारिता की सबसे ज्यादा तकनीकी और बड़ी विधा है। खेल समाचारों में हर आयु वर्ग के लोगों की रुचि रहती है। आज मीडिया का स्वरूप इतना बढ़ गया है कि खेल पत्रकारिता को भी विशेष स्तर प्राप्त हो गया है।

मीडिया के पांचों स्वरूपों- प्रिंट, रेडियो, टेलिविजन, साइबर और एसएमएस मीडिया में खेल पत्रकारिता का विशेष स्थान है। अंग्रेजी पत्रकारिता का विशेष स्थान है। अंग्रेजी अखबारों में खेलों के लिए तीन-चार पेज होते हैं। हिंदी सहित अन्य भाषाओं के अखबारों में खेलों के लिए एक पेज तो होता ही है, दो पेज भी होते हैं। सभी समाचार पत्रिकाओं (न्यूज मैगजीन्स) में खेलों के लिए पेज जरूर होते हैं। रेडियो पर खेलों की कमेंटरी आती है और समाचार बुलेटिनों में भी खेलों को नियमित रूप से स्थान दिया जाता है। टीवी पर खेलों का लाइव प्रसारण होता है। न्यूज चैनलों पर समाचार-बुलेटिनों में तो खेलों की जगह होती ही है, बड़ी खेल-घटनाओं पर अलग से विशेष कार्यक्रम भी दिखाये जाते हैं। खेलों की हजारों वेबसाइट मौजूद हैं। मीडिया वेबसाइटों पर भी खेलों के लिए अलग से जगह जरूर रहती है। मोबाइल फोन पर एसएमएस के जरिये अन्य समाचारों की तरह खेलों के समाचार भी मंगाये जा सकते हैं। इस तरह, खेल पत्रकारिता मीडिया में हर जगह महत्वपूर्ण होती है।

खेल मैदानों पर होने वाले मुकाबलों, खिलाडिय़ों के प्रदर्शनों व रेकॉर्डों, इंटरव्यू, फीचर, मैदान के बाहर के उनके जीवन, खेल संस्थाओं व संस्थानों, खेलों की व्यावसायिकता, विवादों व अपराधों, विश्लेषण और आंकड़ों को जानकारी से भरपूर, रोचक व मनोरंजक तरीके से लोगों तक पहुंचाना ही खेल पत्रकारिता है। याद रखना चाहिए कि विभिन्न खेलों के नामचीन खिलाड़ी आज जन-मानस में नायकों का दर्जा रखते हैं। लोग उनके बारे में सब कुछ जानना चाहते हैं। इस कारण ये खिलाड़ी ब्रैंड बन जाते हैं। खेलों में इनकी भारी लोकप्रियता को तरह-तरह के उत्पादों के विज्ञापनों में इनका इस्तेमाल करके भुनाया जाता है। इसलिए समाचारों का यह पक्ष भी आजकल खेल पत्रकारिता में काफी चलता है। इसीलिए खेल पत्रकारिता बहुत थ्रिलिंग हो गयी है। मेहनती और जुनूनी खेल पत्रकार खेलों की कवरेज के साथ शहर-शहर तथा देश-देश घूमते हैं। इस निकटता से उन्हें अंदर के समाचार निकालने का भी मौका मिलता है।

कुछ दशक पहले तक खेल पत्रकारिता भले ही इतनी रोचक और रोमांचक नहीं थी, लेकिन आर्थिक सुधारों के बाद खेलों के मजबूत व्यावसायिक पहलू और मीडिया के प्रसार ने पत्रकारिता की इस विधा को खूब लोकप्रिय बना दिया है। अब खेलों को अच्छी तरह जानने वाले ही नहीं, बल्कि खुद खिलाड़ी रह चुके लोग भी खेल पत्रकार बन रहे हैं। इससे खेल पत्रकारिता और विकसित, तकनीकी रूप से मजबूत और आकर्षक होगी।

8.5 भारत में खेल पत्रकारिता

भारत में खेलों का व्यवस्थित आयोजन अंग्रेजों के समय में, वह भी उन्नीसवीं शताब्दी के उतराद्र्ध में हुआ। फुटबॉल और क्रिकेट जैसे खेल फौजी छावनियों से निकलकर आम जनता तक पहुंचे।

भारत में पहला अखबार जेम्स ऑगस्ट हिकी ने कोलकाता से 29 जनवरी, 1780 को 'हिकीज गजट' शुरू किया। 1826 में पहला हिंदी अखबार- 'उदंत मार्तंड' भी कोलकाता से शुरू हुआ। उसी साल शुरू हुआ गुजराती अखबार 'गुजरात समाचार' आज भी छपता है। उसी दौरान अंग्रेजी सहित सभी भारतीय भाषाओं के अखबार शुरू हुए। उनमें खेल समाचारों के लिए बहुत कम जगह होती थी। खेल समाचार स्थानीय होने पर लोकल पेज पर, देश के किसी और स्थान के होने पर राष्ट्रीय पेज पर और विदेश के होने पर अंतरराष्ट्रीय पेज पर स्थान पाते थे।

1930 के दशक में मुम्बई के 'टाइम्स ऑफ इंडिया ' ने खेलों के लिए पूरा एक पेज देना शुरू किया। उसके बाद अन्य अंग्रेजी अखबारों ने भी ऐसा ही किया। हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाओं के अखबार तब छह से आठ पेज के ही होते थे। इसलिए उनमें खेल पेज के लिए अलग से जगह नहीं होती थी। इन अखबारों में 1960 के दशक से आर्थिक और खेल समाचारों के लिए एक पेज दिया जाने लगा। पेज पर ऊपर आर्थिक समाचार होते थे और नीचे खेल समाचार। भाषायी अखबारों में 1970 के दशक में अलग से खेल पेज शुरू हुआ।

आजादी के बाद

आजादी के बाद जब 1952 में भारतीय क्रिकेट टीम इंग्लैंड के दौरे पर गयी, तो 'द हिन्दू' ने 19 साल के नौजवान राजू भारतन को उस दौरे की कवरेज के लिए भेजा। उसके बाद देश के सभी प्रमुख अखबारों से खेल पत्रकार कवरेज के लिए विदेश जाने लगे। देश में होने वाली खेल प्रतियोगिताओं की कवरेज के

लिए भी समाचार एजेंसियों पर निर्भर रहने के बजाय अपने खेल संवाददाता भेजने का चलन शुरू हुआ। आज ज्यादातर अंग्रेजी अखबारों में खेलों के लिए तीन-चार पेज होते हैं, जबकि भाषायी अखबारों में एक या दो पेज होते हैं। समाचार पत्रिकाओं में तो खेलों को जगह होती ही है, खेल पर अलग से ही पत्रिकाएं हैं। भारत में रेडियो पर भी काफी समृद्ध खेल पत्रकारिता रही है। बॉबी तलयार खान, डिकी रत्नागर, डॉ. नरोत्तम पुरी, जसदेव सिंह और सुशील दोशी की आवाज में क्रिकेट सहित सभी प्रमुख खेलों की कमेंटरी देश के दूरदराज के कोनों तक लोग पीढियों से सुनते आये हैं। टेलीविजन पर शुरू से ही समाचार बुलेटिनों में खेल समाचारों को जगह दी जाती रही है। ब्लैक ऐंड व्हाइट टीवी के समय से ही खेलों का लाइव प्रसारण होने लगा था। 1982 में दिल्ली एशियाड के समय भारत में कलर टीवी शुरू हुआ। तब दूरदर्शन पर ही यह प्रसारण होता था। 1990 के दशक में प्राइवेट टीवी चैनल, खासकर स्पोर्ट्स चैनल आने के बाद यह प्रसारण और बढ़ गया।

1990 के दशक के उत्तराद्र्ध में भारत में साइबर मीडिया का प्रसार शुरू हुआ। सभी मीडिया वेबसाइट्स पर खेलों का अलग लिंक बनाया गया। खेलों की वेबसाइट भी बनीं, जो पूरी तरह खेलों को समर्पित हैं। 21 वीं शताब्दी के पहले दशक में भारत में मोबाइल फोन का इस्तेमाल बढ़ा। इसके साथ ही एसएमएस मीडिया अस्तित्व में आया। सभी मोबाइल फोन सेवा प्रदाता कंपनियां अपने पोर्टल या किसी मीडिया कंपनी के पोर्टल के जरिये एसएमएस के जरिये समाचार भेजती हैं। ये समाचार मासिक रूप से सब्सक्राइब किये जा सकते हैं और इन्हें एक एसएमएस भेजकर भी मंगाया जा सकता है। इस सेवा के जरिये खेल समाचार भी दिये जाते हैं। भारत में इन पांचों मीडिया में खेल समाचारों को भरपूर जगह मिलती है। इनमें खेल पत्रकारिता लगातार विकसित हो रही है।

8.6 हिंदी खेल पत्रकारिता

भारत में हिंदी खेल पत्रकारिता का इतिहास ज्यादा पुराना नहीं है। ज्यादातर हिंदी अखबारों में पूरा खेल पेज तो 1970 के दशक में ही शुरू हुआ। उस पर भी आधे से ज्यादा जगह विज्ञापन ले लेते थे। मुम्बई, दिल्ली, कोलकाता, लखनऊ, पटना, जयपुर और भोपाल के प्रमुख हिंदी अखबारों में भी खेलों के लिए तीन-चार कॉलम की ही जगह हुआ करती थी। तब सभी हिंदी अखबार खेल समाचारों के लिए समाचार एजेंसियों पर ही निर्भर होते थे, इसलिए सभी के खेल समाचार एक जैसे होते थे। खेल समाचारों को अंग्रेजी अखबारों जितनी जगह हिंदी अखबारों में नहीं मिलती थी। यही वजह रही कि उनमें खेल डेस्क पर कम पत्रकार होते थे। आज भी प्रमुख अंग्रेजी अखबारों में 10 से 15 तक का खेल पत्रकार होते हैं।

इससे उन्हें अलग-अलग खेलों पर विशेषज्ञ तैयार करने में सहायता मिलती है। हिंदी अखबारों में 3-4 से ज्यादा खेल पत्रकार एक संस्करण के लिए नहीं होते। 'दैनिक जागरण ' और 'अमर उजाला' जैसे बड़े अखबारों के कई संस्करणों में एक या दो ही खेल पत्रकार हैं। इसलिए हिंदी में सभी खेलों के विशेषज्ञ खेल पत्रकार नहीं मिलते। उदाहरण के लिए, हिंदी में घुड़सवारी, पोलो, गोल्फ, बेसबॉल और मार्शल आर्ट्स के सक्षम खेल पत्रकार मुश्किल से ही मिलेंगे। फिर भी, हालात बदल रहे हैं। दिल्ली के 'नवभारत टाइम्स' और 'हिंदुस्तान' में खेलों को 1980 के दशक से ज्यादा जगह मिलनी शुरू हुई। वाराणसी के 'आज' ने हिन्दी खेल पत्रकारिता में नए प्रतिमान स्थापित किये। पद्मपति शर्मा इस परंपरा को 'दैनिक जागरण में लाये। वे रेडियो पर कमेंटरी सुनकर और टीवी पर मैच देखकर मौलिक रिपोर्ट लिख देते थे। विदेश में कवरेज कर रहे अंग्रेजी खेल पत्रकारों को रात को उनके होटल में फोन करके अतिरिक्त जानकारी जुटा लेते थे। उन्होंने भारत के हर शहर में टेस्ट मैच कवर किये। विदेश भी गये। *'नवभारत टाइम्स'* और *'हिन्दुस्तान'* ने हिंदी में सबसे पहले एशियाड और ओलंपिक खेलों की कवरेज के लिए अपने खेल पत्रकार विदेश भेजे।

'जनसत्ता के संपादक प्रभात जोशी खुद बड़े खेल प्रेमी थे, इसलिए उन्होंने अच्छी खेल डेस्क बनायी। आज हिंदी के सभी प्रमख अखबारों के पास अच्छे खेल पत्रकार हैं। अलग-अलग खेलों के विशेषज्ञ पत्रकार हैं, हालांकि संख्या में वे अंग्रेजी खेल पत्रकारों से कम हैं।

हिंदी के प्रमख अखबारों के संस्करण छोटे-छोटे शहरों से भी हैं। इसलिए उनके पास वहां से खबर निकालने का समय और साधन ज्यादा रहता है। मेरठ के प्रवीण कुमार और मुरादनगर के सुरेश रैना का चयन भारतीय क्रिकेट टीम में हुआ, तो उनके बारे में विस्तृत समाचार और उनके इंटरव्यू हिंदी अखबारों में पहले छपे।

इस सबके बावजूद, हिंदी पत्रकारिता के स्तर में और सुधार की गुंजाइश है। खेलों की कवरेज की बदलती शैली को अपनाकर हिंदी पत्रकारिता और समृद्ध हो सकती है। हिंदी खेल पत्रकार ज्यादा खेलों में विशेषज्ञता प्राप्त कर सकते हैं। खेलों की पृष्ठभूमि वाले युवा अगर खेल पत्रकार बनें, तो हिंदी पत्रकारिता और रोचक तथा प्रभावशाली बन सकती है।

8.7 खेल पत्रकारिता की पृष्ठभूमि

भारत में उन्नीसवीं शताब्दी और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में खेल पत्रकारिता अपनी आरंभिक अवस्था में थी। खेल समाचारों को तब अखबारों में बहुत कम जगह मिलती थी। इसकी वजह थी

अखबारों में कम पेज होना और खेलों का ज्यादा प्रचार-प्रसार न होना। यहां तक कि अखबारों में अलग से खेल पत्रकार तक नहीं होते थे। समाचार एजेंसियों से मिले समाचारों को ही छाप दिया जाता था।

आजादी से पहले

आजादी से पहले खेल समाचार बहुत औपचारिक ढंग से दिये जाते थे। क्रिकेट, हॉकी, फुटबॉल, कुश्ती और घुड़दौड़ जैसे खेलों की ही कवरेज होती थी। वह भी थोड़ी सी जगह में। इन समाचारों में बस मैचों या स्पर्धाओं की रिपोर्टिंग होती थी। इंटरव्यू, फीचर और विश्लेषण जैसी विधाओं को जगह नहीं मिलती थी।

आजादी के बाद

आजादी के बाद 1952 में नयी दिल्ली में पहले एशियाड का आयोजन हुआ, तो देशवासियों की रुचि खेलों में बढ़ी। तब खेल पत्रकारिता कुछ गिने-चुने खेलों से बाहर निकली। ज्यादा खेलों की कवरेज की जाने लगी। खेल रिपोर्टरों को बाहर भेजा जाने लगा। खेल समाचारों को अखबारों में ज्यादा जगह मिलने लगी। इस दौरान खेल एसोसिएशनों की सक्रियता बढ़ी, ज्यादा खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन होने लगा और नये-नये प्रशिक्षण केन्द्र खोले गये। खेलों के ढांचे में आये इस बदलाव से खेल पत्रकारिता का भी विकास हुआ।

1991 के आर्थिक सुधारों के बाद

1991 के आर्थिक सुधारों के बाद व्यापार-व्यवसाय के अवसर बढ़े। पूंजी का प्रवाह भी बढ़ा। खेलों में ज्यादा धन आने लगा। इससे बड़ी खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन भी भव्य हो गया। खेल पेजों पर प्रायोजित कॉलम और डिस्प्ले विज्ञापन आने लगे। इसी दौरान देश में टीवी चैनल आये। उन्होंने भी खेलों को काफी महत्व देना शुरू किया। रेडियो, साइबर मीडिया और एसएमएस मीडिया पर भी खेलों को जगह मिली। इससे खेल पत्रकारिता औपचारिकता से निकलकर मुख्यधारा में आ गयी। वास्तव में, खेल पत्रकारिता अब पत्रकारिता की महत्वपूर्ण विधाओं में शामिल हो गयी है।

8.8 खेल पत्रकारिता के रूप

खेल पत्रकारिता में अनेक विधाएं हैं। खेलों और खिलाडियों की जानकारी कई तरह से लोगों तक पहुंचायी जाती हैं। यह जानकारी अनेक स्तर की होती है। पत्रकारिता के अन्य क्षेत्रों की तरह खेल पत्रकारिता में भी हार्ड न्यूज, सॉफ्ट न्यूज, फॉलोअप न्यूज, खोजपूर्ण रिपोर्ट, इंटरव्यू, विश्लेषण, लेख,

फीचर और आंकड़े होते हैं। खेल पत्रकार का काम इनके जरिये रोचक और आकर्षक भाषा में खेलों और खिलाडिय़ों की जानकारियां लाखों-करोड़ों लोगों तक पहुंचाना होता है।

समाचार : खेल पत्रकारिता में सबसे खास काम होता है खेलों के समाचार देना। मीडिया स्थानीय स्तर से लेकर ओलिंपिक खेलों तक की विभिन्न खेल स्पर्धाओं के समाचार लोगों तक पहुंचाता है। ये समाचार तीन तरह के होते हैं-

1. प्रिव्यू, 2. कवरेज, 3. रिव्यू

1. प्रिव्यू

किसी मैच या प्रतियोगिता के आयोजन से पहले उसकी संभावना के बारे में दिया जाने वाले समाचार 'प्रिव्यू ' कहलाता है। इसे 'करटेन रेजर' भी कहते हैं। उदाहरण के लिए विश्व कप क्रिकेट के फाइनल या ओलिंपिक खेलों की हॉकी स्पर्धा से पहले दिया जाने वाला समाचार 'प्रिव्यू' कहलायेगा। इसमें दोनों टीमों के अब तक के प्रदर्शन, उनकी कमजोरी व ताकत, पहले हुए आपसी मुकाबलों के परिणाम, प्रमुख खिलाडिय़ों की फॉर्म, मौसम का हाल और इन सबके आधार पर मैच की संभावना का हाल दिया जाता है।

2. कवरेज

जब किसी मैच या प्रतियोगिता को देखकर समाचार लिखा जाता है, तो उसे कवरेज कहते हैं। खेल पत्रकार स्टेडियम या मैदान में जाकर पूरा मैच या स्पर्धा देखता है और उसकी रिपोर्टिंग करता है।

3. रिव्यू

कोई बड़ी प्रतियोगिता खत्म होने के बाद उसका पूरा विश्लेषण करते हुए लिखी गयी रिपोर्ट रिव्यू कहलाती है। इसे आंकड़ों और खिलाडिय़ों, खेल अधिकारियों तथा खेल विशेषज्ञों के बयानों से और ज्यादा रोचक बनाया जाता है। क्रिकेट विश्व कप, एशियाड या ओलिंपिक खेलों के रिव्यू में इन खेलों का पूरा निचोड़ आ जाता है।

खेलों को कवर करते समय समाचारों के दो और रूपों को ध्यान में रखा जाता है-

1. हार्ड न्यूज, 2. सॉफ्ट न्यूज

1. हार्ड न्यूज

किसी मैच या प्रतियोगिता की रिपोर्टिंग करके लिखा गया समाचार हार्ड न्यूज होता है। इसमें उस खेल का पूरा विवरण आ जाता है।

2. सॉफ्ट न्यूज

हार्ड न्यूज के तथ्यों से बाहर जाकर लीक से हटकर मिले समाचार को सॉफ्ट न्यूज कहते हैं। अगर कोई क्रिकेटर अपने पिता की मृत्यु के बाद मैदान में जाकर अपने प्रदर्शन से टीम को जिताये, तो उस पर एक सॉफ्ट स्टोरी की जा सकती है।

फॉलो अप समाचार

खेलों में बड़ी घटना या विवाद होने पर उसके फॉलो अप समाचार दिये जाते हैं। खेल पत्रकार ऐसे समाचारों के पीछे लगे रहते हैं। राष्ट्रमंडल खेल घोटाले और आईपीएल के ललित मोदी विवाद के समाचार इसी श्रेणी में आते हैं।

लेख

किसी बड़ी खेल प्रतियोगिता, राष्ट्रीय खेलों, एशियाड या ओलिंपिक खेलों, किसी खिलाड़ी की जयंती या पुण्यतिथि या उसकी किसी खास उपलब्धि पर तथ्यों का इस्तेमाल करके लेख लिखा जाता है। यह सूचनाप्रद और गंभीर होता है। इसमें तथ्यों और आंकड़ों का काफी इस्तेमाल किया जा सकता है।

फीचर

किसी खिलाड़ी या खेलों की बड़ी घटना पर ललित व प्रवाहपूर्ण भाषा में फीचर लिखा जाता है। इसमें तथ्यों से ज्यादा भावनाओं का इस्तेमाल होता है। खिलाडिय़ों पर लिखे फीचर बहुत लोकप्रिय होते हैं। इनमें खिलाडिय़ों के पूरे व्यक्तित्व का मूल्यांकन हो जाता है। फीचर लेखन की भाषा अन्य विधाओं की अपेक्षा काव्यमय होती है।

समीक्षा

किसी खिलाड़ी के खेलों से संन्यास लेने के बाद या किसी बड़ी खेल प्रतियोगिता के खत्म होने पर उसकी समीक्षा की जाती है। यह विश्लेषण जैसा ही लेखन होता है, लेकिन इन दोनों में हल्का सा अंतर होता है। विश्लेषण में केवल तथ्यों के आधार पर सारे पहलू रखे जाते हैं, जबकि समीक्षा में ऐसा करते हुए किसी निष्कर्ष पर भी पहुंचा जाता है।

इंटरव्यू

खेल पत्रकार को अपने करियर में बहुत से खिलाडिय़ों, प्रशिक्षकों और खेल अधिकारियों के इंटरव्यू करने होते हैं। यह ध्यान रखना जरूरी है कि ये इंटरव्यू किसी विशेष अवसर या खास उपलब्धि पर ही होने चाहिए। इंटरव्यू के लिए पूरी तैयारी करनी चाहिए। जिसका इंटरव्यू करना हो, उसके बारे में तमाम जानकारी और आंकड़े जुटा लेने चाहिए। प्रश्न सामयिक हों। इंटरव्यू के दौरान पहले से तैयार प्रश्नों पर ही निर्भर न रहा जाये। बातचीत के दौरान नये प्रश्न जोड़े जा सकते हैं। इससे ज्यादा रोचक या सनसनीखेज जानकारी मिल सकती है।

इंटरव्यू दो तरह से लिखा जाता है-

1. इंट्रो लिखकर प्रश्न और उत्तर की शैली में।

2. समाचार की शैली में। इसमें प्रश्न और उत्तर के बजाय इस शैली का इस्तेमाल किया जाता है- जैसे- *'जब सचिन से पूछा गया कि क्या कभी क्रिकेट से रिटायर होने का खयाल उनके मन में आया है, तो वे मुस्कराकर बोले, 'अभी तक तो ऐसा खयाल कभी नहीं आया।*

कमेंटरी

कमेंटरी भी खेल पत्रकारिता का ही एक रूप है। डॉ. नरोत्तम पुरी या जसदेव सिंह रेडियो पर कमेंटरी करते थे। अब हर्षा भोगले, सुनील गावसकर और रवि शास्त्री टीवी पर कमेंटरी करते नजर आते हैं। कमेंटेटर का खेलों की तकनीकी जानकारी तो अच्छी होनी ही चाहिए, भाषा पर अधिकार और सही शब्दों का साफ उच्चारण के साथ इस्तेमाल करना भी जरूरी होता है। कमेंटेटर किसी खेल का आंखों देखा हाल पल भर में करोड़ों श्रोताओं या दर्शकों तक पहुंचाता है।

आंकड़े

आंकड़े खेलों की जान होते हैं। ये एक तिलस्म की तरह होते हैं, जिनसे कई बार अनपेक्षित और आश्चर्यजनक नतीजों पर पहुंचा जा सकता है। उदाहरण के लिए सचिन को बेशक पिछले दो दशक का सर्वश्रेष्ठ क्रिकेटर माना जाता हो, लेकिन आंकड़ों से सिद्ध किया जा सकता है कि जैक कॅलिस इस दौर के सर्वश्रेष्ठ क्रिकेटर हैं। आंकड़े एक ऐसे रोमांस की तरह होते हैं, जिसमें हर खेल प्रेमी डूब जाता है। पहले तो घंटों मेहनत करके आंकड़े तैयार और अपडेट किये जाते थे, अब तमाम खेलों और खिलाडियों के आंकड़े इंटरनेट पर मौजूद हैं।

आंकड़ों को भी दो तरह से इस्तेमाल किया जा सकता है-

1. तालिका बनाकर आंकड़े दे देना। *जैसे, राहुल द्रविड़ के अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट से संन्यास लेने पर टेस्ट और एकदिवसीय क्रिकेट के उनके आंकड़े प्रकाशित करना।*

2. आंकड़ों के आधार पर रिपोर्ट बनाना। *जैसे, पांच समकालीन श्रेष्ठ बल्लेबाजों के आंकड़ों का विश्लेषण करते हुए यह रिपोर्ट तैयार करना कि उनमें सर्वश्रेष्ठ कौन है।*

8.9 कैसे कार्यरुप दिया जाता है

खेल पत्रकारिता में खेल पत्रकार दो स्तर पर काम करते हैं- 1. रिपोर्टिंग और 2. डेस्क। आम तौर पर हर खेल पत्रकार इन दोनों कामों में कुशल होता है। इसके बावजूद, किसी में रिपोर्टिंग की योग्यता अधिक होती है, तो किसी में डेस्क पर काम करने की।

रिपोर्टिंग - खेल रिपोर्टर को रिपोर्टिंग के लिए मैदान में जाना होता है। वह खेलों या खेल-घटनाओं की रिपोर्टिंग करता है। जिस खेल या मैच की रिपोर्टिंग करनी हो, उसकी अच्छी तैयारी करके ही जाना चाहिए। पल-पल के नोट्स लेकर बाद में अपनी रिपोर्ट तैयार करनी चाहिए। आजकल ज्यादातर बड़ी प्रतियोगिताओं या मैचों का टीवी पर सीधा प्रसारण किया जाता है। खेल प्रेमी उन्हें पहले ही टीवी पर देख चुके होते हैं। इसलिए रिपोर्ट इस अंदाज में लिखी जानी चाहिए कि उसमें नयापन और रोचकता बनी रहे।

रिपोर्ट कभी बोझिल या नीरस नहीं होनी चाहिए। उसमें ऐसा आकर्षण होना चाहिए कि पाठक उसके जादू से सम्मोहित हो जायें। इसीलिए ज्यादातर खेल पत्रकारों की रिपोर्ट को लोग उनकी बाईलाइन के बिना भी पहचान लेते हैं। रिपोर्ट में मैच का हाल, मैच के बाद के हालात, प्रेस कांफ्रेंस और कप्तान या किसी प्रमुख खिलाड़ी का बयान जरूर होना चाहिए। इस तरह रिपोर्ट में ताजगी भी आती है और उसे प्रामाणिकता भी मिलती है।

खेल रिपोर्टर को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि मुख्य रिपोर्ट के साथ वह कुछ साइड स्टोरी भी जरूर भेजे। उदाहरण के लिए, भारतीय क्रिकेट टीम के ऑस्ट्रेलिया दौरे की कवरेज के लिए गये खेल पत्रकारों ने मैचों की रिपोर्टिंग के अलावा भारतीय क्रिकेटरों के मैदान से बाहर बिताये समय, ऑस्ट्रेलिया के पुराने क्रिकेटरों के इंटरव्यू और टूर डायरी भी भेजी। ये साइड स्टोरी मुख्य रिपोर्ट से भी ज्यादा चाव से पढ़ी जाती है। रिपोर्ट लिखते समय तथ्यों का खास ध्यान रखना चाहिए। भाषा सरल और सहज होनी चाहिए।

डेस्क की भूमिका

खेल पत्रकारिता में डेस्क की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। डेस्क पर मौजूद खेल पत्रकार पेज की प्लानिंग करते हैं। अपने रिपोर्टरों और समाचार एजेंसियों से मिले समाचार संपादित करते हैं। फोटोग्राफ्स का चयन करके उनके कैप्शन लिखते हैं। आंकड़ों और विश्लेषण आदि के जरिये विशेष रिपोर्ट बनाते हैं। इस तरह चयन व संपादित की गयी सामग्री से वे पेज तैयार करते हैं। डेस्क की ओर से ही रिपोर्टर को यह निर्देश भी मिल सकता है कि वह कितनी बड़ी मुख्य रिपोर्ट भेजें और कौन-कौन सी साइड स्टोरी करें। खेल पेजों को निकालने में सबसे बड़ी और रचनात्मक भूमिका डेस्क की ही होती है।

8.10 खेल पत्रकारिता से ऐसे जुड़ें

खेल पत्रकारिता में आज काफी मेहनत करनी पड़ती है। इसलिए खेल पत्रकार बनने के इच्छुक लोगों को पूरी तैयारी के साथ ही इस क्षेत्र आना चाहिए। इसके लिए उन्हें कुछ गुण और कौशल अपने भीतर पैदा करने चाहिए-

1. खेलों में रुचि

खेलों में रुचि रखने वाले ही अच्छे खेल पत्रकार बन सकते हैं। यह रुचि भी जुनून की तरह होनी चाहिए। अगर विश्व कप फुटबॉल का फाइनल भारत के समय के अनुसार रात साढ़े तीन बजे है, तो पूरी रात जागकर उसे टीवी पर देखने वाला ही अच्छा खेल पत्रकार बन सकता है।

2. खेलों व खिलाडिय़ों की जानकारी

सभी प्रमुख खेलों और उनके महत्वपूर्ण व नामी खिलाडिय़ों की जानकारी होनी चाहिए। उन खेलों का इतिहास व नियम पता होने चाहिए। नियम जाने बिना खेलों की रिपोर्टिंग की ही नहीं जा सकती।

हरेक को सभी खेलों के नियम पता नहीं हो सकते। उसके लिए लगातार होमवर्क करते रहना चाहिए। नियम पढऩे चाहिए। मैदान में जाकर या टीवी पर वे खेल देखने चाहिए। उनके खिलाडिय़ों व अंपायरों से बात करके अपनी शंकाएं दूर करनी चाहिए।

3. लेखन क्षमता

मैच खत्म होते ही उसकी रिपोर्ट तुरंत लिखनी पड़ती है। कम समय में रोचक ढंग लिखने की क्षमता होनी चाहिए। इसके लिए भाषा पर अच्छा अधिकार होना जरूरी है। रिपोर्ट में रोचकता, सहजता और सरलता बनी रहनी चाहिए। खेल पत्रकारिता में साहित्यिक भाषा के इस्तेमाल से बचना चाहिए।

4. विश्लेषण क्षमता

एक खेल पत्रकार में विश्लेषण करने की अच्छी क्षमता होनी चाहिए। अगर कोई किसी एकदिवसीय मैच की कवरेज कर रहा है, तो उसे मैच के टर्निंग पॉइंट के बारे में जरूर लिखना चाहिए।

5. अच्छे संपर्क होना

खेल पत्रकार के खिलाडिय़ों, प्रशिक्षकों, खेल अधिकारियों और प्रशासकों से अच्छे संपर्क होने चाहिए। ऐसा करके वे अंदर के समाचार निकाल सकते हैं। ऐसे समाचारों का बहुत महत्व होता है।

क्या करें, क्या न करें

अन्य पत्रकारों की तरह खेल पत्रकारों को भी यह ध्यान रखना चाहिए कि वे क्या करें, क्या न करें। इसका पालन करके ही वे अच्छे समाचार दे सकते हैं और सच्चे खेल पत्रकार के रूप में नाम कमा सकते हैं।

क्या करें

1. ज्यादा से ज्यादा खेलों की जानकारी रखें 2. प्रमुख खेलों के महत्वपूर्ण खिलाडिय़ों के प्रदर्शन और व्यक्तित्व पर सदा नजर रखें 3. हर समाचार एकदम तटस्थ होकर लिखें 4. तथ्यों की पवित्रता का हमेशा ध्यान रखें 5. समाचारों में हमेशा नये पहलू देने की कोशिश करें 6. दूसरे खेल पत्रकारों की रिपोर्ट ध्यान से पढ़ें और उनसे अपनी रिपोर्ट की तुलना करें 7. मैच कवर करने या किसी का इंटरव्यू लेने पूरी तैयारी से जायें 8. संतुलित और मर्यादित विश्लेषण करें 9. खिलाडिय़ों और खेल अधिकारियों व प्रशासकों से अच्छे संपर्क रखें 10. सहज, सरल और रोचक भाषा में रिपोर्ट लिखें

क्या न करें

1. जिस खेल के बारे में जानकारी न हो, उस पर लिखने की कोशिश न करें 2. कभी भी अपनी निजी राय न दें 3. किसी भी परिस्थिति में नाराज या भावविभोर होकर कोई रिपोर्ट न लिखें 4. कभी भी गलत तथ्य न दें, तथ्यों को कई बार चेक करें 5. हमेशा एक ही अंदाज में रिपोर्ट न लिखें 6. दूसरे खेल पत्रकारों की लेखन शैली की नकल न करें 7. भूलकर भी किसी खिलाड़ी से ऐसा सवाल न करें- 'आपने पहला मैच कब खेला था? 8. विश्लेषण में किसी ओर निजी झुकाव या पसंद न लायें 9. किसी ने अगर कोई सूचना 'ऑफ दि रेकॉर्ड कहकर दी है, तो उसे कभी न लिखें 10. बोझिल, कठिन और कृत्रिम भाषा का इस्तेमाल कभी न करें

8.11 सारांश

राजनीतिक, आर्थिक और सामरिक मजबूती तथा वर्चस्व के बाद दुनिया में कोई देश अपनी पहचान खेलों में हासिल की गयी उपलब्धियों के आधार पर बनाता है। क्यूबा, केन्या और इथोपिया जैसे देशों ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान खेलों के जरिये ही बनायी है। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद जापान, चीन और कोरिया ने भी खेल-मैदानों में जलवे दिखाए। स्पष्ट है कि किसी भी देश की अंतरराष्ट्रीय छवि बनाने में खेलों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। खेलों की स्पर्धाएं दो देशों के बीच कटुता की दीवारों को गिराने का काम भी करती हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में 'क्रिकेट डिप्लोमैसी' और यूरोप में 'फुटबॉल डिप्लोमैसी' जैसे शब्द बहुत लोकप्रिय हैं। भारत में आजादी से पहले कबड्डी, खो-खो, कुश्ती, बॉडी बिल्डिंग, हॉकी, फुटबॉल और क्रिकेट प्रमुख खेल थे। इनमें से हॉकी, फुटबॉल और क्रिकेट अंग्रेजों की सैनिक

छावनियों में खेले जाते थे। वहां से निकलकर ये धीरे-धीरे आम नागरिकों तक पहुंचे। फुटबॉल कोलकाता के मैदानों में लोकप्रिय होने के बाद देश भर में फैल गयी। हॉकी में भारत ने 1928 में एम्सटरडम ओलिंपिक में पहली बार स्वर्ण पदक जीता, तो यह खेल भी देश के गांव-गांव तक पहुंच गया। लगातार छह स्वर्ण पदक जीतने के परिणामस्वरूप यह भारत का राष्ट्रीय खेल बन गया। आज क्रिकेट का जादू कई संस्करणों में सिर चढ़कर बोल रहा है। खेल पत्रकारिता के प्रतिमान भी लगातार बदल रहे हैं। सूचना तकनीक की इसमें बड़ी भूमिका है।

8.12 शब्दावली

अंपायर – क्रिकेट के खेल में निर्णायक की भूमिका निभाने के लिए मैदान में दो अंपायर रखे जाते हैं और तीसरा अंपायर मैदान के बाहर टीवी रिप्ले देखकर रनआउट या संदेह की स्थिति में मैदानी अंपायरों की मांग पर निर्णय देता है।

रेफरी- फुटबाल और हाकी के अलावा कई अन्य खेलों में रेफरी अपने फैसले सुनाता है। एक खेल में कई रेफरी रखे जाते हैं।

8.13 अभ्यास प्रश्न

सही या गलत चुनिए। बताइए कि ये कथन सही हैं या गलत-

1. पहले एशियाई खेल 1951 में भारत में हुए थे।
2. 1982 में नयी दिल्ली में एशियाई खेल हुए थे।
3. भारत ने ओलिंपिक हॉकी में पहला स्वर्ण पदक 1928 में एम्सटर्डम ओलिंपिक में जीता था।
4. ओलंपिक हॉकी में भारत का प्रदर्शन 1968 के मेक्सिको ओलिंपिक से गिरना शुरू हुआ।
5. भारत ने पहला क्रिकेट टेस्ट मैच 1932 में इंग्लैंड के खिलाफ लॉर्ड्स में खेला था।
6. 1971 में वेस्टइंडीज में टेस्ट श्रृंखला जीतने के बाद भारत में क्रिकेट की लोकप्रियता तेजी से बढ़ी।
7. स्नूकर एक आउटडोर खेल है।
8. घुड़सवारी एक इनडोर खेल है।
9. हिंदी अखबारों में शुरू से ही पूरे पेज पर खेल समाचार दिये जाते थे।
10. हिंदी अखबारों में सभी खेलों के विशेषज्ञ खेल पत्रकार होते हैं।

उत्तर

1. सही 2. सही 3. सही 4. सही 5. सही 6. सही 7. गलत 8. गलत 9. गलत 10. गलत

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. भारत में खेलों की स्थिति के बारे में 350 शब्दों में लिखिये।

प्रश्न 2. प्रमुख खेलों के बारे में विस्तार से बताइये।

प्रश्न 3. खेल पत्रकारिता से आप क्या समझते हैं?

प्रश्न 4. भारत में खेल पत्रकारिता के बारे में 350 शब्दों में लिखिये।

प्रश्न 5. भारत में हिंदी खेल पत्रकारिता के बारे में 350 शब्दों में लिखिये।

प्रश्न 6. खेल पत्रकारिता के रूपों पर एक टिप्पणी लिखिये।

प्रश्न 7. एक खेल पत्रकार किस तरह काम करता है?

प्रश्न 8. खेल पत्रकार बनने के इच्छुक लोगों में क्या गुण होने चाहिए?

प्रश्न 9. खेल पत्रकारों को क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए?

प्रश्न 10. आप खेल पत्रकार क्यों बनना चाहते हैं?

8.14 संदर्भ ग्रंथ

1. पाण्डेय, डॉ. पृथ्वीनाथ, (2004), पत्रकारिता: परिवेश एवं प्रवृत्तियां, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

2. विभिन्न समाचार पत्रों की कतरनें।

3. कामथ एमवी, द जर्नलिस्ट्स हैंडबुक

इकाई-9

फिल्म जगत और मीडिया

इकाई की रूपरेखा

9.0 प्रस्तावना
9.1 उद्देश्य
9.2 फिल्म पत्रकारिता क्या है
9.3 भारत में फिल्म पत्रकारिता
9.4 हिन्दी फिल्म पत्रकारिता
9.4.1 हिन्दी फिल्म पत्रकारिता की पृष्ठभूमि
9.4.2 हिन्दी फिल्म पत्रकारिता-आजादी से पहले
9.4.3 हिन्दी फिल्म पत्रकारिता-आजादी के बाद
9.4.4 हिन्दी फिल्म पत्रकारिता-आर्थिक सुधारों के बाद
9.5-फिल्म पत्रकारिता के विभिन्न स्वरूप
9.6-फिल्म पत्रकारिता का कार्यरूपण
9.6.1 डेस्क की भूमिका
9.6.2 फिल्म रिपोर्टिंग
9.7-फिल्म पत्रकारिता से ऐसे जुड़ें
9.8-सारांश
9.9-अभ्यास प्रश्न
9.10 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
9.11 संदर्भ ग्रंथ

9.0 प्रस्तावना

सिनेमा क्या है? क्या सिर्फ मनोरंजन का एक माध्यम, कला का एक ऐसा रूप जिसमें हम अपने और दूसरों के जीवन की झलक देखते हैं, अभिव्यक्ति का एक सशक्त तरीका, मानवीय जीवन की गुत्थियों को चित्रित करने का प्रयास, समाज का आइना या कुछ और या फिर यह सब? स्वाभाविक है कि सिनेमा से जुड़े, उसे देखने या उसे समझने की कोशिश करने वाले हर व्यक्ति के लिए इसके अलग-अलग अर्थ हैं। इन्हीं अर्थों को समझने और दूसरों को समझाने की इच्छा व कोशिशों ने ही फिल्म पत्रकारिता की नींव रखी जिसे हम इस अध्याय में समझने का प्रयास करेंगे।

इस अध्याय में हम जानेंगे:

-फिल्म पत्रकारिता क्या है?

-भारत में फिल्म पत्रकारिता।

-हिन्दी फिल्म पत्रकारिता-इतिहास, पृष्ठभूमि व बदलाव।

-फिल्म पत्रकारिता के विभिन्न स्वरूप।

-फिल्म पत्रकारिता का कार्यरूपण।

-फिल्म पत्रकारिता से जुड़ने के लिए निर्देश।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- बता सकेंगे कि फिल्म पत्रकारिता क्या है और देश में इसकी स्थिति कैसी है।
- समझा सकेंगे कि हिन्दी फिल्म पत्रकारिता ने कितने सोपान तय किए हैं।
- सलाह दे सकेंगे कि एक फिल्म पत्रकार को कितना अलर्ट रहना चाहिए और कार्य में कौन-कौन-सी सावधानियां बरतनी चाहिए।

9.2 फिल्म पत्रकारिता क्या है

पत्रकारिता के विभिन्न आयामों को एक साथ प्रस्तुत करने का मंच है फिल्म पत्रकारिता। इससे जुड़े व्यक्ति को कभी तो रिपोर्टर बन कर खबरें एकत्र करनी होती हैं तो कभी एक टिप्पणीकार बन कर उन खबरों पर अपनी राय देनी होती है। साक्षात्कारकर्ता के रूप में सिनेमा से जुड़े लोगों से बातचीत करनी होती है तो वहीं एक इतिहासकार के तौर पर सिनेमा में निरंतर आ रहे बदलावों पर नजर रखते हुए उन पर लेख भी लिखने होते हैं। एक समीक्षक के तौर पर फिल्म पत्रकार किसी सिनेमाई कृति को अपनी नजर से आंकता है तो वहीं अपने पाठकों का मित्र व मार्गदर्शक बन कर वह उन्हें यह भी सुझाता है कि कोई फिल्म क्यों देखी जानी चाहिए और क्यों नहीं। वास्तव में एक फिल्म पत्रकार का काम इतनी अधिक व्यापकता लिए हुए होता है कि किसी एक व्यक्ति के लिए इन सभी पर समान रूप से अधिकार प्राप्त करना लगभग असंभव हो सकता है। पत्रकारिता की अन्य धाराओं से अलग एक फिल्म पत्रकार को न सिर्फ अपने काम, बल्कि सिनेमा के प्रति भी जुनूनी होना पड़ता है। उसे तमाम किस्म की फिल्मों की जानकारी एकत्र करनी पड़ती है, लगातार नई फिल्में तो देखनी ही पड़ती हैं, बीते वर्षों के सिनेमाई अनुभवों को भी पाना होता है ताकि वह अतीत, वर्तमान और भविष्य के सिनेमा में हो रहे बदलावों पर नजर रख सके। सिनेमा से जुड़े कलाकारों, रचनाकारों और तकनीशियनों के बारे में व्यापक जानकारी रखते हुए देश-दुनिया के सिनेमा के बारे में अपना दृष्टिकोण विकसित करना और उसे शब्दों में ढाल कर आम लोगों तक प्रस्तुत करना ही फिल्म पत्रकारिता का मूल उद्देश्य है।

9.3 भारत में फिल्म पत्रकारिता

भारत में फिल्म पत्रकारिता का इतिहास सिनेमा के इतिहास जितना ही पुराना है। 7 जुलाई, 1896 को फ्रांस के लुमिएर बंधुओं द्वारा मुंबई के वाटसन होटल में पहली बार सिनेमा का प्रदर्शन हुआ। अंग्रेजी समाचार पत्र 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रतिदिन इन फिल्मों के बारे में टिप्पणियां प्रकाशित होती थीं। फिर 3 मई, 1913 को जब दादा साहब फाल्के की बनाई भारत की पहली फीचर फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' मुंबई के कोरोनेशन थिएटर में आम दर्शकों के लिए रिलीज की गई तो 5 मई, 1913 के 'बांबे क्रॉनिकल' अखबार में इसकी समीक्षा प्रकाशित हुई। यानी यह कहा जा सकता है कि उस दौर के मीडिया की नजरों में सिनेमा का आना और छाना ऐसी खबरें थीं जिनसे खुद को दूर रख पाना उनके लिए संभव नहीं रहा होगा।

लेकिन यह भी सच है कि शुरुआती दौर में फिल्म पत्रकारिता सिर्फ खबरों को देने भर का माध्यम थी। चूंकि सिनेमा खुद एक नई खोज थी सो पत्रकारिता से जुड़े लोगों में इसे लेकर उत्सुकता का भाव तो था

मगर गंभीरता का नहीं। उस दौर की फिल्म समीक्षाओं में किसी फिल्म की कहानी, कलाकारों के नाम आदि का ही जिक्र हुआ करता था। इन्हें पढ़ने वाले लोग भी इनसे सिर्फ यह जानकारी ही हासिल करना चाहते थे कि किस फिल्म में क्या दिखाया जा रहा है। फिल्म की कथावस्तु या उसकी क्वालिटी पर विश्लेषणात्मक टिप्पणियां काफी बाद में दी जानी शुरु हुईं। लेकिन तब भी भारतीय अखबारों में भारतीय फिल्मों की बजाय विदेशों से आने वाली फिल्मों की समीक्षाएं या उन पर टिप्पणियां ही अधिक प्रमुखता पाती थीं। असल में अंग्रेजी हुकूमत के उस दौर में फिल्में देखने का चलन समाज के अंग्रेजीदां अभिजात्य वर्ग में ही ज्यादा था और यही वह वर्ग था जो समाचार-पत्रों में इनके बारे में पढ़ना चाहता था। ऐसे में विदेशी फिल्मों के वितरक अक्सर अपनी फिल्मों के विज्ञापनों के साथ पहले से तैयार समीक्षाएं अखबारों को भेज दिया करते थे और विज्ञापनों से होने वाली आमदनी के लिए ज्यादातर अखबार इन्हें ज्यों का त्यों छाप भी दिया करते थे।

भारतीय सिनेमा के उस शुरुआती दौर में मुंबई और कोलकाता फिल्म निर्माण के दो प्रमुख केंद्रों के रूप में सामने आए लेकिन फिल्म पत्रकारिता का केंद्र बना दिल्ली। हालांकि मुंबई, कोलकाता, लाहौर, कराची, मध्य भारत के इंदौर और दक्षिण भारत के चैन्नई में भी यह काम शुरु हो चुका था। वास्तव में ये सभी शहर फिल्म वितरण के केंद्रों के रूप में काम कर रहे थे और संभवतः इसीलिए ये फिल्म पत्रकारिता के भी केंद्र बने क्योंकि वितरक अपने क्षेत्र में फिल्मों का प्रचार करवाने के लिए पत्र-पत्रिकाओं का सहारा लेते थे और बदले में उन्हें विज्ञापन भी दिया करते थे। जैसे-जैसे सिनेमा का विकास और विस्तार होता गया, विभिन्न भाषाओं में फिल्में बनने लगीं, वैसे-वैसे फिल्म पत्रकारिता भी देश भर में और तमाम भाषाओं में फैलने लगी। पिछले कुछ वर्षों में भोजपुरी सिनेमा में आए उछाल के बाद भोजपुरी फिल्मों पर केंद्रित पत्रिकाओं की तादाद बढ़ना और अन्य भाषाओं के पत्र-पत्रिकाओं द्वारा भोजपुरी सिनेमा पर भी लिखा जाना इसी ओर इशारा करता है कि फिल्म पत्रकारिता समय और समाज की मांग को बखूबी समझ कर ही विस्तार पाती है।

हालांकि भारत की विभिन्न भाषाओं में बहुत से ऐसे फिल्म पत्रकार हुए हैं जिनके लिखे को न सिर्फ उनके पाठक चाव से पढ़ते और सराहते आए बल्कि फिल्मों से जुड़े लोगों के बीच भी उन्हें प्रतिष्ठा हासिल हुई। लेकिन फिल्म पत्रकार और फिल्म पत्रकारिता की समूची तस्वीर कुछ खास उजली कभी भी नहीं रही और इसका सबसे बड़ा कारण है इस क्षेत्र को सुलभ और सुगम्य मान कर किसी का भी बिना पूरी तैयारी के इस ओर चले आना। साथ ही फिल्म पत्रकारिता से जुड़े कुछ पूर्वाग्रह भी इसके विकास में आड़े आते रहे हैं कि फिल्मों पर तो कोई भी लिख सकता है क्योंकि पाठक इसे गंभीरता से नहीं लेते हैं।

वस्तुतः यह एक ऐसा मिथक है जिसे तोड़ा जाना आवश्यक है तभी फिल्म पत्रकारिता से गंभीर लोग जुड़ेंगे, इस दिशा में गंभीर लेखन होगा और पाठकों को भी सुरूचिपूर्ण व सारगर्भित सामग्री पढ़ने को मिलेगी।

9.4 हिन्दी फिल्म पत्रकारिता

हिन्दी फिल्म पत्रकारिता के दो पहलू हैं। पहला हिन्दी फिल्मों के बारे में किसी भी भाषा में की जाने वाली पत्रकारिता और दूसरा किसी भी भाषा के सिनेमा के बारे में हिन्दी में की जाने वाली पत्रकारिता। हालांकि हिन्दी के भाषायी अखबार और पत्रिकाएं इस दूसरे पहलू को लेकर ज्यादा गंभीर कभी नहीं रहे कि दक्षिण भारतीय, बांग्ला, यूरोपीय या अमेरिकी सिनेमा पर हिन्दी में लिखा जाए और इसका प्रमुख व स्पष्ट कारण यही नजर आता है कि न तो हिन्दी के अधिकांश पाठक गैर-हिन्दीभाषी सिनेमा को लेकर गंभीर दृष्टि विकसित कर पाए और न ही हिन्दी के ज्यादातर फिल्म पत्रकार इनमें अपनी गहरी पैठ बना सके। फिर भी कुछ एक गंभीर पत्रकार रहे जिन्होंने हिन्दी सिनेमा से हट कर बन रहे देसी-विदेशी सिनेमा को समझा और अपनी लेखनी द्वारा पाठकों को उनसे परिचित करवाया।

इधर बढ़ते वैश्वीकरण और सिनेमा के बढ़ते प्रभाव के चलते अब हिन्दी में भी गैर-हिन्दीभाषी सिनेमा पर लिखे जाने का चलन बढ़ा है लेकिन यह अभी भी काफी कम है। वहीं हिन्दी फिल्मों के व्यापक प्रभाव और पहुंच से इनकार कर पाना मुश्किल है और यही वजह है कि हिन्दी फिल्मों के बारे में जितनी सामग्री हिन्दी के समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में प्रकाशित होती है लगभग उतनी ही अंग्रेजी व अन्य भाषाओं के प्रकाशनों में भी। दक्षिण भारत हो, पश्चिम बंगाल, पंजाब, बिहार, नेपाल या गुजरात, वहां के पाठक अपनी स्थानीय भाषाओं में बनने वाले सिनेमा के साथ-साथ हिन्दी फिल्मों को भी पसंद करते हैं और उनके बारे में जानना-पढ़ना चाहते हैं। यही कारण है कि मोटे तौर पर फिल्म पत्रकारिता को हिन्दी फिल्मों से जुड़ी पत्रकारिता के रूप में ही देखा जाता है।

9.4.1 हिन्दी फिल्म पत्रकारिता की पृष्ठभूमि

हिन्दी पत्रकारिता से जुड़े लोगों ने बहुत पहले ही सिनेमा के महत्व को समझना और स्वीकारना शुरु कर दिया था। कारण भले ही भिन्न थे, किसी को अपने पाठकों को सिनेमा से जुड़ी जानकारियां देनी थीं तो किसी ने इसे मसालेदार खबरों को परोसने का जरिया पाया, किसी को फिल्मों के विज्ञापनों से मतलब

था तो वहीं कुछ लोग सचमुच सिनेमा को एक गंभीर माध्यम के तौर पर देखते हुए इस पर संजीदा लेखन कर रहे थे। समय के साथ-साथ हिन्दी फिल्म पत्रकारिता का फैलाव इतना अधिक हो चुका है कि आज सम्प्रेषण के हर माध्यम पर हिन्दी फिल्मों से जुड़ा लेखन हो रहा है और न सिर्फ भारत भर में बल्कि विदेशों में वहां से प्रकाशित हो रहे हिन्दी व अन्य भाषाओं के पत्र-पत्रिकाओं में भी हिन्दी सिनेमा को उचित स्थान दिया जाने लगा है।

9.4.2 हिन्दी फिल्म पत्रकारिता-आजादी से पहले

स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले से लेकर कमोबेश अभी तक हिन्दी फिल्म पत्रकारिता का प्रमुख गढ़ दिल्ली ही रहा है। इसका बड़ा कारण यही रहा कि समूचे उत्तर भारत में फिल्मों के वितरण का यही केंद्र था और लगभग अभी भी है। 1931 में जब फिल्मों ने बोलना शुरु किया और हिन्दी की पहली फिल्म 'आलमआरा' आई, ठीक उसी साल हिन्दी की पहली फिल्म पत्रिका 'रंगभूमि' का प्रकाशन शुरु हुआ। इसके पीछे यही सोच रही कि जब बोलती फिल्मों को इतना अधिक पसंद किया जा रहा है तो इससे जुड़ी पत्रिका को भी लोकप्रियता अवश्य मिलेगी।

ऐसा हुआ भी मगर कुछ समय के बाद यह पत्रिका बंद हो गई जिसे 1941 में फिर शुरु किया गया और 2006 तक यह प्रकाशित होती रही। 1935 में शुरु हुई बाबूराव पटेल फिल्म पत्रिका 'फिल्म इंडिया' को अंग्रेजी की पहली प्रतिष्ठित और बेहद लोकप्रिय फिल्म पत्रिका होने का गौरव प्राप्त है और ऐसा इसलिए हो पाया क्योंकि सिनेमा पर गहरी व पैनी नजर में रखने वाले बाबूराव पटेल ने हमेशा पाठकों को ध्यान में रख कर लिखा न कि फिल्मवालों को खुश करने के लिए। इन्हीं दिनों 'चित्रपट', 'चांदनी', 'फिल्मचित्र', 'रसभरी', 'अभिनय', 'रूपम', 'चित्रप्रकाश', 'कौमुदी', 'दीपाली', 'रूपवानी' आदि पत्रिकाएं भी निकलीं। विभिन्न समाचार पत्रों में भी उस दौरान फिल्मों पर समीक्षात्मक टिप्पणियां और समाचार प्रकाशित होते थे लेकिन ऐसी कोई धारा नहीं विकसित हो पाई थी और फिल्म पत्रकारिता मुख्यतः फिल्म पत्रिकाओं तक ही सिमटी हुई थी।

9.4.3 हिन्दी फिल्म पत्रकारिता-आजादी के बाद

देश आजाद हुआ तो साथ ही बंट भी गया। फिल्म निर्माण का एक प्रमुख केंद्र लाहौर पाकिस्तान में रह गया तो वहीं मुंबई से भी कई फिल्मी हस्तियां वहां जा बसीं। फिल्म पत्रकारिता भी इससे बेअसर नहीं रह पाई क्योंकि फिल्मों पर लिखने वाले कई पत्रकार भी बंटवारे के बाद उस पार चले गए और वहां से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं का यहां आना भी रुक गया। ऐसे में स्वाभाविक तौर पर फिल्म

पत्रकारिता में बहुत कुछ नया सामने आना ही था। यह नयापन नई फिल्म पत्रिकाओं के रूप में तो सामने आया ही, सिनेमा के प्रति एक नई समझ के तौर पर भी उभरा।

1947 में ही 'युगछाया' पत्रिका की शुरुआत हुई जिससे कई ऐसे पत्रकार जुड़े रहे जिन्होंने आगे चल कर फिल्म पत्रकारिता में बहुत नाम कमाया। फिर जनवरी, 1948 में दिल्ली से ही 'चित्रलेखा' का प्रकाशन आरंभ हुआ। इस पत्रिका से भी बहुत से नामी पत्रकारों का जुड़ाव रहा और 2003 में अपने बंद होने तक इसे एक पारिवारिक फिल्म पत्रिका की छवि प्राप्त रही। इंदौर से 'सिनेमा' का प्रकाशन शुरु हुआ। ख्वाजा अहमद अब्बास ने मुंबई से 'सरगम' शुरु की। 'शबनम', 'कल्पना', 'अनुपम', 'सिनेमा एक्सप्रेस', 'फिल्मी दुनिया', 'मायापुरी', 'मेनका', 'फिल्म रेखा', उर्दू की 'शमा' और उसकी सहयोगी हिन्दी की 'सुषमा' जैसी पत्रिकाएं आईं जिनमें से अधिकांश देर-सवेर बंद हो गईं। टाइम्स समूह से 'फिल्मफेयर' का प्रकाशन शुरु हुआ जिसने आम पाठकों के अलावा फिल्म इंडस्ट्री में भी अपनी गहरी पैठ बना ली और इसकी लोकप्रियता अभी भी बरकरार है।

टाइम्स समूह की ही हिन्दी पत्रिका 'माधुरी' का भी अपना जलवा हुआ करता था। उधर एक्सप्रेस समूह ने 'स्क्रीन' नाम से एक ऐसा साप्ताहिक समाचार पत्र शुरु किया जिसमें फिल्म पत्रकारिता से जुड़े तमाम रूपों का संतुलित समावेश दिखाई देता है। कुछ समय तक यह हिन्दी में भी प्रकाशित हुआ। आज भी सिनेमा से जुड़ी विश्वसनीय जानकारी हो या फिर मनोरंजक खबरें, इसकी प्रतिष्ठा सबसे अधिक है। साथ ही लगभग सभी समाचार पत्रों में भी फिल्मों की समीक्षाएं, फिल्मी हस्तियों के इंटरव्यू, उन पर लेख आदि दिए जाने लगे। 1952 में भारत में आयोजित हुए पहले भारतीय अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह के आरंभ होने का असर सिनेमा पर तो पड़ा ही, फिल्म पत्रकारिता भी इससे अछूती न रह सकी।

फिल्म पत्रकारों में भी विश्व सिनेमा के प्रति रूचि बढ़ी और इसका असर उनके लेखन में भी दिखने लगा। 1969 में दिल्ली से 'फिल्मी कलियां' का प्रकाशन शुरु हुआ जिसके साथ वरिष्ठ फिल्म पत्रकार ब्रजेश्वर मदान कई दशक तक जुड़े रहे। हिन्दी सिनेमा और साहित्य के साथ-साथ विश्व सिनेमा व विश्व साहित्य की गहरी जानकारी व परख रखने वाले ब्रजेश्वर मदान, विष्णु खरे, प्रयाग शुक्ल, विनोद भारद्वाज जैसे फिल्म पत्रकारों के योगदान के कारण ही फिल्म पत्रकारिता को सम्मान व प्रतिष्ठा हासिल हुई।

9.4.4 हिन्दी फिल्म पत्रकारिता-आर्थिक सुधारों के बाद

नब्बे के दशक में आए आर्थिक सुधारों के प्रभाव से हिन्दी सिनेमा भी अछूता नहीं रहा। फिल्मोद्योग में कॉरपोरेट जगत का आगमन होने लगा और देश-दुनिया में किस्म-किस्म के संचार-साधनों का भी।

इसका प्रभाव फिल्म पत्रकारिता में भी साफ तौर पर नजर आने लगा। अधिकांश समाचार पत्रों में सप्ताह में एक दिन एक पूरा पृष्ठ सिनेमा पर आधारित रहने लगा। धीरे-धीरे इस एक पृष्ठ का स्थान चार पन्नों के रंगीन साप्ताहिक परिशिष्ट ने ले लिया। एक बड़ा असर यह हुआ कि टेलीविजन के बढ़ते वर्चस्व ने फिल्म पत्रकारिता की एक नई धारा को जन्म दिया। तमाम टी.वी. चैनलों ने सिनेमा से जुड़ी चीजें दिखानी शुरु कर दीं और फिल्मी हस्तियों ने भी प्रिंट मीडिया की बजाय इन्हें प्राथमिकता देना। इससे जहां अखबारी फिल्म पत्रकारिता को अपना स्वरूप, प्रभाव और विश्वसनीयता बनाए रखने के लिए खासी मशक्कत करनी पड़ रही है वहीं फिल्म पत्रिकाओं की हालत बेहद खराब हो चुकी है। 21वीं सदी में 'चित्रलेखा', 'फिल्म रेखा', 'फिल्मी परियां', 'रंगभूमि' जैसी कितनी ही पत्रिकाएं बंद हो चुकी हैं तो 'फिल्मी दुनिया', 'फिल्मी कलियां', 'मायापुरी' आदि बस नाम भर के लिए निकल रही हैं। वहीं दूसरी ओर समाचार पत्रों में सिनेमा को लेकर गंभीरता का भाव आया है तो इंटरनेट पर उपलब्ध वेब-पोर्टल, ऑनलाइन पत्रिकाओं और ब्लॉग्स के जरिए भी फिल्म पत्रकारिता को समुचित खाद-पानी मिल रहा है।

9.5 फिल्म पत्रकारिता के विभिन्न स्वरूप

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है एक फिल्म पत्रकार को लेखन की कई विधाओं की समझ होनी आवश्यक है। सिनेमा में होने वाली घटना की प्रकृति और अपने पत्र, पत्रिका, टी.वी. चैनल या अन्य माध्यम की जरूरत के अनुसार उसे अपना लेखन करना होता है। यह लेखन समाचार, गॉसिप, लेख, समीक्षा, साक्षात्कार, विश्लेषण, रिपोर्ताज जैसी कई शैलियों में होता है। एक फिल्म परिशिष्ट में विविधता का होना इसलिए भी आवश्यक हो जाता है ताकि उसमें एकरसता न रहे और पाठकों का उससे जुड़ाव बना रहे। फिल्म पत्रकारिता के इन रूपों को समझना बहुत जरूरी है।

इंटरव्यू-

फिल्म पत्रकारिता में इसे सबसे आसान समझा जाता है। आप किसी फिल्म कलाकार से मिले, कुछ सवाल किए और उसने जो जवाब दिए, उन्हें आपने लिख दिया। लेकिन यह पूर्ण सत्य नहीं है। जिस फिल्मी हस्ती से आप मिलने जा रहे हैं उसके व्यक्तित्व, कृतित्व और पृष्ठभूमि के बारे में जानकारी होना आवश्यक है तभी उससे सारगर्भित प्रश्न पूछे जा सकेंगे। कई बार कोई फिल्म कलाकार अचानक मिल जाता है तो ऐसे में उसके बारे में पहले से जानकारी होने पर बिना किसी तैयारी के भी अच्छा इंटरव्यू लिया जा सकता है। उनकी पसंद-नापसंद जैसे हल्के-फुल्के प्रश्नों की बजाय फिल्म कलाकार अपने किए हुए काम, निभाई गई भूमिकाओं आदि पर गहरी नजर वाले प्रश्न पूछे जाने अधिक पसंद करते हैं। लेकिन

यदि वह फिल्म हस्ती बहुत प्रसिद्ध है तो उसके व्यक्तिगत जीवन के बारे में जानने की जिज्ञासा भी पाठकों में होती है। इंटरव्यू को प्रश्न-उत्तर की शैली में भी लिखा जा सकता है और बीच-बीच में टिप्पणियां करती हुई लेखनुमा शैली में भी। इंटरव्यू लेते समय प्रश्नों की तैयारी के साथ-साथ शब्दों का विशेष रूप से ध्यान रखा जाना आवश्यक है ताकि दर्शक उन प्रश्नों में अपनी जिज्ञासाओं का बिंब महसूस कर सके। इंटरव्यू से पहले दिया जाने वाला इंट्रो दिलचस्प और कसावट लिए हुए हो तो पढ़ने वाले की उत्सुकता बढ़ जाती है।

लेख-

फिल्मों पर कई प्रकार के लेख लिखे जाते हैं। सामयिक विषयों पर लेख तब लिखा जाता है जब अचानक फिल्मों से जुड़ी कोई घटना हो। ऐसे में उस घटना पर विचारपरक टिप्पणी लेख के रूप में दी जाती है। अतीत में हो चुकी वैसी ही घटनाओं का उल्लेख करते हुए और फिल्मों से जुड़े कुछ लोगों के उक्त घटना पर विचार जान कर उन्हें लेख में शामिल करने से वह एक अच्छा और वजनदार लेख बन सकता है। पुरानी फिल्मों से जुड़ी दिलचस्प जानकारियों पर आधारित लेख भी खासे पसंद किए जाते हैं। सिनेमा के मौजूदा परिदृश्य में आए बदलावों और आगे आने वाले परिवर्तनों को भांप कर उन पर लिखे गए लेख भी पढ़े जाते हैं। साल भर में आने वाले विभिन्न अवसरों मसलन क्रिकेट मैच, स्वतंत्रता दिवस, होली, दीपावली, गर्मी की छुट्टियों, मानसून, रमजान आदि को फिल्मों से जोड़ कर लिखे जाने वाले थीम-लेखों की भी अच्छी मांग रहती है। इनके अलावा किसी विचारोत्तेजक फिल्म के आने पर उस में समाहित उन बातों पर भी लेख लिखा जा सकता है जिनकी चर्चा उस फिल्म की समीक्षा में न हो पाई हो।

समीक्षा-

फिल्म पत्रकारिता का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है समीक्षा। किसी नई फिल्म के रिलीज होने पर एक समीक्षक का उसे देख कर उसके गुण-दोषों से अपने पाठकों को परिचित कराना ही समीक्षा है। एक अच्छी समीक्षा लिखने के लिए यह आवश्यक है कि समीक्षक को फिल्म माध्यम की गहरी जानकारी हो। फिल्म की कथावस्तु, पटकथा के उतार-चढ़ाव, किरदारों की रचना, इन सब को पर्दे पर प्रस्तुत करने का निर्देशक का कौशल, कलाकारों के अभिनय, उनकी संवाद अदायगी, गीत-संगीत के स्तर के अतिरिक्त पार्श्व संगीत, शूटिंग की लोकेशन, सैट्स, वेशभूषा, नृत्य-निर्देशन, सिनेमॉटोग्राफी, सम्पादन जैसे तकनीकी पहलुओं की व्यापक जानकारी और इन पर पैनी दृष्टि ही एक अच्छी समीक्षा को जन्म दे

सकती है। समीक्षा में पूर्वाग्रहों और व्यक्तिगत विचारधारा के प्रदर्शन से बचते हुए एक फिल्म को उसके अपने गुण-दोषों पर परखना और दर्शकों-पाठकों के जेहन में सिनेमा के लिए यह समझ विकसित करना समीक्षक का काम है कि वह किसी फिल्म को देखे तो क्यों और यदि नहीं तो क्यों नहीं।

रिपोर्ट-

किसी अन्य क्षेत्र की रिपोर्ट से अलग फिल्मी रिपोर्टिंग में मनोरंजन और जानकारी, दोनों का संतुलित समावेश होना आवश्यक है। चूंकि अधिकांश फिल्म पत्रकार फिल्मों की शूटिंग पर जाने या फिल्मी लोगों से मिलने के लिए फिल्म के प्रचारक पर निर्भर होते हैं तो अनजाने में यह दबाव भी उनके लेखन में आ सकता है कि उन्हें किसी को नाराज नहीं करना है। ऐसे में एक फिल्म रिर्पोटर के लिए यह काफी सावधानी भरा काम हो जाता है कि वह किसी फिल्म के मुहूर्त, म्यूजिक-रिलीज या अन्य किसी आयोजन को कवर करने के बाद अपनी रिपोर्ट में प्रचार की भाषा के उपयोग से बचे। शहर से बाहर किसी अन्य लोकेशन पर फिल्म की शूटिंग कवर करने के बाद होने वाली रिपोर्टिंग में यात्रा-वृतांत, इंटरव्यू, लेख आदि की मिली-जुली शैली का इस्तेमाल इसे अधिक रोचक बनाता है।

समाचार-

फिल्मों से जुड़े कार्यकलापों आदि के बारे में सीधे-सीधे लिखना फिल्मी समाचारों के दायरे में आता है। लेकिन यहां भी यह ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि उसमें मनोरंजन व दिलचस्पी का पुट जरूर हो।

गॉसिप-

फिल्मों और फिल्मी कलाकारों से जुड़ी हल्की-फुल्की गपशप गॉसिप कहलाती हैं। पाठकों द्वारा सबसे अधिक पढ़ी जाने वाली सामग्री होने के कारण इसमें अक्सर कुछ ज्यादा ही नमक-मिर्च और झूठ आदि का सहारा ले लिया जाता है। एक अच्छा गॉसिप लेखक वह है जो उसे परोसी गई खबरों और दिखाई गई चीजों के बीच में से अपने पाठकों के मतलब की बात सूंघ ले और फिर उसे रोचक शैली में प्रस्तुत करे। मगर ऐसा करते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि किसी पर व्यक्तिगत आक्षेप न हों और न ही कोई ऐसी खबर उत्पन्न हो जो किसी की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचाए।

9.6 फिल्म पत्रकारिता का कार्यरूपण

फिल्म पत्रकारिता मुख्यतः फीचर का विषय है, खबरों का नहीं। मुंबई या फिल्म निर्माण के अन्य शहरों में ऐसे कई फिल्म रिपोर्टर होते हैं जो दिन भर फिल्मों से जुड़े आयोजनों में जाकर समाचार, इंटरव्यू आदि लाते हैं। अन्य शहरों में तो आमतौर पर फिल्मों पर फीचर या फिर समीक्षाएं ही लिखी जाती हैं।

9.6.1 डेस्क की भूमिका

किसी फिल्मी आयोजन के लिए आने वाले निमंत्रण के बाद फीचर सम्पादक यह निर्णय लेता है कि उसे कवर करने के लिए किसे भेजा जाए। बाहर से आने वाले समाचारों को किस तरह से प्रस्तुत किया जाना है या उन पर और विस्तार से लिखा जाना चाहिए, जैसे फैसले भी डेस्क पर ही होते हैं। इसके अलावा फिल्म रिपोर्टर जो सामग्री एकत्र करके लाता है उसे किस शैली में और कितनी जगह में लगाना है, यह भी डेस्क पर ही तय होता है। फिल्मों से जुड़े लेख, किसी फिल्मी हस्ती के निधन पर श्रद्धांजलि या अन्य किसी विशेष अवसर पर लेख, परिशिष्ट आदि के प्रकाशन का निणर्य भी डेस्क पर ही होता है और इस कार्य में फीचर सम्पादक व फिल्म पेज के प्रभारी की महती भूमिका रहती है।

9.6.2 फिल्म रिपोर्टिंग

विभिन्न फिल्मी आयोजनों, शूटिंग, पार्टी आदि में जाना और वहां से अपने पाठकों के मतलब की खबरें निकाल कर लाना फिल्म रिपोर्टर का काम होता है। फिल्मी आयोजनों की अनिश्चितता के चलते यह पहले से तय नहीं हो पाता कि वहां कौन-सा कलाकार या तकनीशियन मिलेगा, उससे कितनी और कैसी बातचीत हो पाएगी और लौटने के बाद किस तरह का समाचार, लेख, रिपोर्ट या गॉसिप बन पाएगी। ऐसे में एक फिल्म पत्रकार को काफी सजग रहना पड़ता है। उसे तमाम फिल्मों, कलाकारों, तकनीशियनों आदि के बारे में जानकारी रखते हुए मौका मिलते ही अपनी जिज्ञासाओं का पिटारा खोलना होता है।

9.7 फिल्म पत्रकारिता से ऐसे जुड़ें

फिल्म पत्रकारिता से जुड़ने के बाद सभी फिल्में देखने, फिल्मों की शूटिंग पर जाने, फिल्मी हस्तियों से मिलने और फिल्मी पार्टियों में जाने जैसे ऐसे कई अवसर मिलते हैं जो पत्रकारिता के अन्य क्षेत्रों में संभव नहीं हैं। ऐसे में किसी भी पत्रकार का इस चमक-दमक भरे क्षेत्र की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक है। लेकिन एक अच्छी फिल्म पत्रकारिता अन्य क्षेत्रों की तरह या उनसे भी कहीं अधिक मुश्किल होती है और इस दिशा में जाने वाले पत्रकार के लिए यह आवश्यक है कि वह पूरी तैयारी करे और खुद को

लगातार निखारता रहे। आगे दिए जा रहे निर्देशों पर अमल करके फिल्म पत्रकार अपनी राह कदाचित आसान कर सकते हैं-

●पढ़ो, पढ़ो और पढ़ो। पत्रकारिता के किसी भी क्षेत्र का यह मूलमंत्र है। फिल्म पत्रकार को सिनेमा पर उपलब्ध पुस्तकों के साथ-साथ तमाम पत्र-पत्रिकाओं में आने वाले लेखों, समीक्षाओं आदि को तो पढ़ना ही चाहिए साथ ही उनमें से अपने मतलब की या फिर भविष्य में संदर्भ के तौर पर उपयोग की जा सकने वाली सामग्री, क्लिपिंग्स आदि को भी संग्रह करके रखना चाहिए।

●देखो, देखो और देखो। एक फिल्म पत्रकार को इसे भी अपने लिए मूलमंत्र मान लेना चाहिए। नई फिल्में तो उसे देखनी ही हैं लेकिन बीते समय के सिनेमा के बारे में जानकारी हासिल करने और सिनेमा में आ रहे बदलाव को समझने के लिए पुरानी फिल्मों को भी देखना चाहिए। साथ ही फिल्मों को कुछ अंतराल के बाद फिर से भी देखना चाहिए क्योंकि एक ही फिल्म हर बार एक नई समझ विकसित करती है।

●सिनेमा को एक जुनून की तरह लेने वाले लोग ही फिल्म पत्रकारिता में ऊंचा नाम पाने में सफल हुए हैं। कला का यह एक ऐसा रूप है जो नशा-सा कर देता है। एक फिल्म पत्रकार को इसमें डूब जाना चाहिए। उसे सभी फिल्में देखनी चाहिएं तभी वह अच्छे और खराब सिनेमा में फर्क महसूस कर पाएगा और उसे अपने लेखन के द्वारा पाठकों तक भी पहुंचा सकेगा।

●फिल्मों से जुड़े कलाकारों, निर्माता-निर्देशकों, तकनीशियनों, संगीतकारों, गीतकारों आदि के बारे में अपनी जानकारी को लगातार बढ़ाते रहना चाहिए।

●अपनी भाषा के सिनेमा से इतर देश-दुनिया की अन्य भाषाओं में बनने वाली फिल्मों को देखना, उनके बारे में पढ़ना और जानकारी हासिल करना भी एक फिल्म पत्रकार की सोच को विकसित करता है।

●फिल्मों के व्यवसाय की बारीकियों की समझ भी होनी आवश्यक है ताकि एक फिल्म के बनने और उसके रिलीज होने की प्रक्रिया को समझा व समझाया जा सके। फिल्म निर्माताओं, वितरकों से मिलें और फिल्मों की ट्रैड-पत्रिकाओं को नियमित पढ़ें।

●फिल्म उद्योग से जुड़े सरकारी नियम-कानून, सिनेमॉटोग्राफ अधिनियम, सेंसर बोर्ड की नियमावली आदि को भी जान लेना चाहिए।

●फिल्म निर्माण के तकनीकी पहलुओं-कैमरा, सैट्स, वेशभूषा, लाइट, साऊंड, सम्पादन आदि के बारे में अपनी समझ को लगातार बढ़ाते रहना चाहिए। किसी फिल्म की शूटिंग पर जाकर उसे बारीकी से देखना

इसका सबसे अच्छा तरीका है। मगर किसी फिल्म की शूटिंग कवर करने पहुंचे रिपोर्टर को यह भी ध्यान में रखना होता है कि उसकी किसी बात या हरकत से वहां हो रहे काम में बाधा न पहुंचे।

●फिल्मी कलाकारों, तकनीशियनों से अनौपचारिक बातचीत से भी ज्ञान बढ़ता है।

●फिल्म समारोहों में शामिल होना चाहिए। दूसरे क्षेत्रों में बन रहे सिनेमा को करीब से देखने-समझने का ये उत्तम जरिया होते हैं।

●किसी से मिलने जाएं तो पूरी तैयारी करके जाएं मगर अचानक किसी से मिलना पड़े तो भी प्रश्नों से लैस रहें।

●फिल्मों की आलोचना उससे जुड़े लोगों को नाराज कर सकती है। मगर इसकी परवाह किए बिना अपने पाठकों को सर्वोपरि मान कर निष्पक्षता से लिखने वाले फिल्म पत्रकार ही प्रतिष्ठा पाने में सफल हुए हैं।

●आलोचक, समीक्षक बनने के बाद भी अपने अंदर के आम दर्शक को जीवित रखें। दूसरों के विचारों से प्रभावित हुए बगैर किसी फिल्म को देखने के बाद खुद से पूछें कि दूसरों को यह क्यों देखनी चाहिए और क्यों नहीं। एक अच्छी समीक्षा का यही आधार है।

9.8-सारांश

इस अध्याय में हमने संक्षेप में यह जाना कि फिल्म पत्रकारिता क्या होती है, इसका इतिहास और महत्व क्या है, सिनेमा और आम लोगों के बीच यह कैसे एक पुल का काम करती है। फिल्म पत्रकारिता के विभिन्न स्वरूप कौन-कौन से हैं, इसमें कैसे कार्य किया जाता है और किन बातों पर ध्यान देकर अच्छी फिल्म पत्रकारिता की जा सकती है।

वास्तव में सिनेमा जितना व्यापक है उतनी ही व्यापक फिल्म पत्रकारिता भी है। तो ऐसे में यही उचित है कि किसी एक धारा पर ध्यान केंद्रित करते हुए अपने ज्ञान के दायरे को धीरे-धीरे फैलाया जाए और फिल्मों व फिल्मी सितारों के आभामंडल से प्रभावित हुए बगैर अपना लेखन कर्म साफ सुथरे ढंग से किया जाए।

9.9 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1-किसी हालिया फिल्म की विभिन्न समाचार पत्रों में प्रकाशित समीक्षाओं को एकत्र कीजिए और उनमें तुलना करते हुए बताइए कि उनमें से किस समीक्षा में उस फिल्म को सबसे सही ढंग से समझा और पाठकों को समझाया गया है?

प्रश्न 2-कल्पना कीजिए कि आप किसी फिल्म कलाकार के सामने बैठे हैं। उनसे आप कौन-से प्रश्न पूछेंगे और वह उनके क्या संभावित उत्तर देंगे, इन्हें अपनी कल्पना से लिखिए।

प्रश्न 3-किसी नई फिल्म को बिना उसकी समीक्षा पढ़े देखिए और फिर अपने शब्दों में उसकी समीक्षा लिखिए। इसके बाद विभिन्न समाचार पत्रों में छपने वाली उसकी समीक्षाओं को पढ़िए और अपनी लिखी समीक्षा से उनकी तुलना कीजिए।

प्रश्न 4-अपनी कल्पना से पांच फिल्मी गॉसिप की रचना कीजिए। ध्यान रहे कि किसी पर व्यक्तिगत आक्षेपन लगाया जाए।

प्रश्न 5-दो-तीन दशक पुरानी किसी बेहद सफल फिल्म को देखिए और बताइए कि उसकी सफलता के पीछे क्या कारक थे? यह भी इंगित कीजिए कि यदि आज उस तरह की फिल्म बने तो क्यों पसंद की जाएगी और क्यों नहीं?

9.10-दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1-फिल्म पत्रकारिता क्या है? इसकी आवश्यकता क्यों है?

प्रश्न 2-भारत में फिल्म पत्रकारिता में आए बदलावों पर अपनी टिप्पणी लिखिए।

प्रश्न 3-हिन्दी फिल्म पत्रकारिता के सफर पर एक लेख लिखिए।

प्रश्न 4-फिल्म समीक्षा क्या होती है? अच्छी समीक्षा में किन बातों का ध्यान रखा जाना जरूरी है?

प्रश्न 5-एक अच्छे फिल्म पत्रकार में किन गुणों का होना आवश्यक है?

9.11 संदर्भ ग्रंथ

1. पाण्डेय, डॉ. पृथ्वीनाथ, (2004), पत्रकारिता: परिवेश एवं प्रवृत्तियां, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

2. विभिन्न समाचार पत्रों की कतरनें।

3. ब्रेन्स्टन, गिल, द मीडिया स्टूडेंट्स बुक

4. इवांस, हेराल्ड, द पिक्चर्स ऑन ए पेज, फोटो जर्नलिज्म, ग्राफिक्स एंड पिक्चर एडिटिंग

इकाई-10

विदेश में पत्रकारिता

इकाई की रूपरेखा

10.0 प्रस्तावना
10.1 उद्देश्य
10.2 समाचार संगठन
10.3 समाचार की आवश्यकता
10.4 समाचारों के स्रोत
10.5 समाचार संगठनों का भीतरी ढांचा
10.6 विदेश संवाददाता : एक परिचय
10.7 विदेश संवाददाताओं के प्रकार
10.8 अंतरराष्ट्रीय पत्रकारिता के रूप में बदलाव
10.9 विदेश संवाददाता की चुनौतियां
10.10 सारांश
10.11 अभ्यास प्रश्न
10.12 संदर्भ ग्रंथ

10.0 प्रस्तावना

आपने अखबार तो पढ़े ही होंगे. आप रेडियो भी सुनते होंगे और टीवी भी देखते होंगे. आपने सीएनएन और बीबीसी जैसे चैनल भी देखे होंगे. *बीबीसी, दोएशे वेल्ले, रेडियो चाइना, वायस ऑफ अमेरिका* जैसे रेडियो भी सुने होंगे. आपके मन में सवाल जरूर उठा होगा कि दुनिया के एक कोने में घटित एक घटना कैसे खबर बनकर कुछ ही पलों में दुनिया के दूसरे कोने में पहुँच जाती है? दरअसल इसी काम को अंजाम देने में अंतर्राष्ट्रीय पत्रकार लगे रहते हैं. दुनिया के एक कोने में बैठे अंतर्राष्ट्रीय पत्रकार एक

घटना को अपने कौशल और ज्ञान के जरिये कभी खबर तो कभी लेख या फीचर के रूप में दुनिया के दूसरे कोने तक पहुंचाने का काम करते हैं. क्या अखबार, क्या टीवी चैनल या क्या रेडियो, सब तरफ अंतर्राष्ट्रीय पत्रकारिता का लगभग एक ही ढांचा होता है। कुछ लोग हैं, जो बाहर से खबरें जुटाते हैं, तो कुछ लोग उन्हें सजा-संवार कर पेश करते हैं. यहाँ हम इसके विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालेंगे।

10.1 उद्देश्य

इस पाठ का उद्देश्य छात्रों को यह बताना है कि-

●विभिन्न समाचार संगठनों में अंतरराष्ट्रीय पत्रकारिता कैसे होती है और उसका क्या स्वरुप है?

●अखबार के भीतर सम्पादकीय विभाग में फॉरेन डेस्क और फॉरेन कॉरेस्पोंडेंट की क्या भूमिका होती है और वे कैसे अपने काम को अंजाम देते हैं। यह हरेक तरह की पत्रकारिता में है. यानी प्रिंट, रेडियो-टीवी और इंटरनेट, सब तरफ इसका महत्व बराबर बना हुआ है. शिक्षार्थी कैसे इसकी बारीकियों को समझ कर स्वयं उस दिशा में प्रवृत्त हो सकते हैं!

10.2 समाचार संगठन

सबसे पहले हम यह देखें कि समाचार संगठन किसे कहते हैं। समाचार संगठन हम ऐसी संस्थाओं को कह सकते हैं, जो पेशेवर ढंग से समाचार एकत्र करते हैं और उन्हें आम लोगों तक पहुंचाते हैं, जैसे अखबार, रेडियो और टीवी। यदि हमारा कोई पड़ोसी आ कर बताता है कि आगे चौराहे पर दो वाहनों की टक्कर हो गई है, तो उसने समाचार देने का काम तो अवश्य किया, हमने भी खबर सुनी। लेकिन वह कोई संगठन नहीं है। वह पेशेवर ढंग से खबरें बटोरने और उसे हम तक पहुंचाने का काम नहीं करता। और हम भी शहर की तमाम खबरों के लिए उस पर निर्भर नहीं करते। इसी तरह यदि कॉलेज के प्रिंसिपल का चपरासी नियमित रूप से क्लास, फीस भरने की तारीख, परीक्षा और कॉलेज के दूसरे तमाम आयोजनों के बारे में खबरें लाता है, तो भी वह पेशेवर संवाददाता नहीं है। वह बहुत ही सीमित मामलों की खबरें लाता है और यह उसका पूर्णकालिक काम नहीं है। समाचार संगठन पेशेवर ढंग से यह काम करते हैं। समाचार एकत्र करना और उन्हें दूसरों तक पहुंचाना ही उनका काम होता है। इसके एवज में वे फीस लेते हैं। इस काम के लिए उनके पास आवश्यक उपकरण और संसाधन होते हैं, जैसे प्रेस, कैमरे, कंप्यूटर, स्टूडियो आदि। और इसी के अनुरूप उनके कर्मचारी और संगठन का ढांचा भी होता है।

अखबार, रेडियो और टीवी के अलावा इस सूची की एक महत्वपूर्ण कड़ी समाचार एजेंसियां हैं, जैसे प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया, युनाइटेड न्यूज ऑफ इंडिया, रायटर, एएफपी आदि। ये एजेंसियां भी समाचार बटोरने और उन्हें दूसरों तक पहुंचाने का काम करती हैं। लेकिन साधारणतया वे सीधे आम लोगों को अपनी खबरें नहीं देतीं। इस पर कोई रोक नहीं है। कोई चाहे तो अपने लिए उनकी सेवाएं ले सकता है। लेकिन आम आदमी के लिए उनकी सेवाएं महंगी पड़ती हैं। इसके अलावा, ये एजेंसियां जितनी खबरें भेजती हैं, उन सब में आम आदमी की कोई दिलचस्पी भी नहीं होती। आम आदमी अपनी जरूरत के मुताबिक अखबारों, टीवी चैनलों और रेडियो से समाचार प्राप्त कर लेता है।

अखबारों, टीवी चैनलों और रेडियो जैसे संगठनों का मुख्य उद्देश्य आम लोगों तक समाचार पहुंचाना होता है। इसके लिए अपने स्तर पर वे भी समाचारों का संकलन करते हैं, लेकिन उनका ज्यादा जोर अपने उपभोक्ताओं के लिए उपयोगी समाचार के चुनाव और उसे सुविधाजनक ढंग से उन तक पहुंचाने पर होता है। इसीलिए बहुत कम पैसों में सुबह-सुबह आपको अपने दरवाजे पर अखबार हासिल हो जाता है। फुर्सत के समय आप रेडियो या टीवी पर न्यूज बुलेटिन सुन लेते हैं। ऐसे संगठन कुछ समाचार तो अपने स्रोतों से प्राप्त करते हैं, लेकिन और ज्यादा समाचार प्राप्त करने के लिए वे समाचार एजेंसियों की सेवाएं लेते हैं। इसके लिए वे इन एजेंसियों को मासिक या सालाना किराया देते हैं। इन्हीं पैसों से समाचार एजेंसियों का खर्च चलता है, जबकि अखबारों, चैनलों और रेडियो का खर्च अपने आम उपभोक्ताओं से मिलने वाले पैसों तथा विज्ञापनों की फीस से चलता है।

इस तरह पेशेवर समाचार संगठनों को मोटे तौर पर हम दो वर्गों में बांट सकते हैं। एक वे जिनका मुख्य जोर खबरों के संकलन पर होता है और जो मोटे तौर अपनी खबरें दूसरे जरूरतमंद संगठनों को देते हैं। तथा वहीं से अपना राजस्व भी प्राप्त करते हैं। इसमें मुख्य रूप से समाचार एजेंसियां होती हैं। दूसरा वर्ग उन संगठनों का है, जिनका ज्यादा जोर खबरों की प्रस्तुति पर होता है। अखबार और रेडियो-टीवी के समाचार चैनलों की मुख्य कोशिश खबरों को अपने पाठकों और श्रोताओं तक पहुंचाने की होती है। ये अपना राजस्व वहां से प्राप्त करते हैं।

10.3 समाचार की आवश्यकता

हम सब में समाचार जानने की एक स्वाभाविक उत्सुकता होती है। अपने आसपास घटित हो रही बातों के अलावा हम यह भी जानना चाहते हैं कि दूसरी जगहों पर क्या-क्या हो रहा है। इसी तरह हम यह भी जानना चाहते हैं कि अपने प्रदेश के अलावा दूसरे प्रदेशों में और अपने देश के अलावा दूसरे देशों में

क्या-क्या घटित हो रहा है। आज की ग्लोबलाइज्ड दुनिया में उन तमाम बातों का हम पर प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव पड़ता है। इसलिए विदेशी समाचारों को जानने की इच्छा एक सहज मानवीय जिज्ञासा के अलावा हमारी जरूरत भी है। उनसे हम नई-नई बातें सीखते हैं और उन परिस्थितियों के लिए खुद को तैयार करते हैं। जैसे खाड़ी देश अगर कच्चे तेल की कीमत बढ़ाते हैं, तो हमारे यहां भी पेट्रोल महंगा हो जाएगा। और यदि अमेरिका, अपने यहां नौकरी या पढ़ाई के लिए दिए जाने वाले वीसा में कटौती करता है, तो भारत में भी ऐसे युवकों को परेशानी हो सकती है, जो वहां पढ़ाई या नौकरी के लिए जाना चाहते हैं। यहां तक कि उन कंपनियों को भी परेशानी हो सकती है, जिनके दफ्तर भारत और अमेरिका दोनों जगह हैं और जो भारत में भर्ती किए गए अपने कर्मचारियों को अपने अमेरिकी ऑफिस में ट्रांसफर करना चाहती हैं। इस का असर उन कंपनियों के वेतन ढांचे पर और उनके सालाना बजट पर भी पड़ सकता है। इस तरह आज के जीवन में विदेशों से आने वाले समाचारों का महत्व काफी बढ़ गया है।

10.4 समाचारों के स्रोत

अब यह देखें कि ये समाचार हमें यानी आम पाठकों या श्रोताओं को किन-किन स्रोतों से प्राप्त होते हैं। मोटे तौर पर ये समाचार हमें तीन तरह से प्राप्त होते हैं : (क) **समाचार संगठनों से** -इस श्रेणी में हम समाचार पत्रों, न्यूज एजेंसियों, रेडियो और टेलीविजन को रख सकते हैं। ये सब हमें व्यवस्थित रूप से समाचार देते हैं। इनका काम या पेशा ही अपने पाठकों, श्रोताओं और दर्शकों तक खबरें पहुंचाना होता है।

(ख) **व्यक्तिगत संपर्कों से**-बहुत सारी खबरें हमें निजी संपर्कों से भी हासिल होती हैं। जैसे हमारा कोई मित्र या रिश्तेदार जापान में रहता हो और उसने हमें बताया हो कि वहां कैसे भूकंप आया और क्या-क्या तबाही हुई। या न्यूयार्क से आए किसी परिचित ने यह बताया हो कि वहां अमेरिका में मिट रोमनी का चुनाव प्रचार कैसा चल रहा है।

(ग) **इंटरनेट के माध्यम से** -यह एक नया माध्यम है जो पिछले दो-तीन दशकों में तेजी से विकसित हुआ है। यह किसी मित्र या रिश्तेदार की तरह निजी रूप से हमें कोई खबर नहीं देता। यह किसी पेशेवर समाचार स्रोत की भी तरह हमें खबरें नहीं परोसता। लेकिन इस टेक्नोलॉजी में यह सुविधा है कि वहां ऐसी सोशल साइटें बनाई जा सकती हैं, जिन पर कोई भी अपनी बात कह-सुन सकता है। ऐसे में दुनिया में कहीं भी कोई बात घटित होती है, तो कई लोग अपने अनुभव या अपनी नई जानकारी इन साइटों पर डाल देते हैं। और उसे पढ़ने वालों के लिए वह समाचार भी हो सकता है।

उदाहरण -अमेरिकी सैनिकों ने ओसामा बिन लादेन को पकड़ने के लिए पाकिस्तान के एबटाबाद में जो कार्रवाई की थी, वह बेहद गुप्त रखी गई थी। लेकिन उसी इलाके में रहने वाले किसी व्यक्ति ने हेलिकॉप्टरों की आवाज सुन कर उसी समय अपने ब्लॉग में लिख कर डाल दिया था कि यहां हेलिकॉप्टरों और मोर्टारों की तेज आवाजें आ रही हैं, लगता है फिर कहीं हमला हुआ है। वह एक ऐसे व्यक्ति का निजी अनुभव था, जिसके इस लेखन का किसी समाचार संगठन से कोई संबंध नहीं था। लेकिन उसके ब्लाग को पढ़ने वालों लिए बाद में वह एक दुर्लभ समाचार बन गया और बाद में सारी दुनिया में फैल गया। इंटरनेट की प्रसार क्षमता को देखते हुए अब ज्यादातर अखबारों, टीवी चैनलों और रेडियो संगठनों ने भी अपने समाचार नेट पर डालने शुरू कर दिए हैं। यदि आप उनकी साइट खोलें तो आपको उनके सभी महत्वपूर्ण समाचार देखने को मिलेंगे। लेकिन यह भी समाचार देने का एक संगठित और पेशेवर प्रयास है, इसलिए इंटरनेट पर उपलब्ध होने वाले नेट संस्करणों को हम रेडियो- टीवी वाली श्रेणी में ही रखेंगे। और इंटरनेट को समाचार के स्रोत वाली श्रेणी को (जैसे फेसबुक या ब्लॉग वगैरह) हम सिर्फ निजी टिप्पणियों, सोशल साइटों और ब्लॉग वगैरह के अर्थ में सीमित रखेंगे।

10.5 समाचार संगठनों का भीतरी ढांचा

किसी भी पेशेवर समाचार संगठन में मोटे तौर पर दो तरह के विभाग होते हैं। एक वह विभाग होता है, जिसमें काम करने वाले पत्रकार, समाचार एकत्र करते हैं। इन्हें आप इनपुट देने वाले पत्रकार मान सकते हैं। इनमें रिपोर्टर और कॉरेस्पोंडेंट आदि शामिल होते हैं।

दूसरा विभाग अपने विभिन्न स्रोतों से मिले समाचार को देखता-परखता है, संपादन करता है और उसे अपने श्रोताओं या पाठकों या उपभोक्ताओं के सामने प्रस्तुत करता है। इसे आप आउटपुट देने वाला विभाग मान सकते हैं। इनमें कॉपी एडिटर, न्यूज एडिटर वगैरह शामिल होते हैं। काम का यही ढांचा लगभग हर मीडिया में अपनाया जाता है -चाहे वह रेडियो हो, अखबार हो या टेलिविजन हो।

अपने प्रसार क्षेत्र के हिसाब से विभिन्न संगठन अपने इनपुट और आउटपुट विभाग की विभिन्न इकाइयां बनाते हैं। जैसे कोई अखबार किसी राज्य की राजधानी से निकलता है और वह अपना प्रसार उस राज्य में ही केंद्रित करना चाहता है, तो उसे अपने लिए राज्य के विभिन्न जिलों में अपना संवाददाता चाहिए। राजधानी की स्थानीय खबरों के लिए संवाददाता चाहिए। संभव है राष्ट्रीय खबरों के लिए वह देश की राजधानी में भी अपना एक ब्यूरो रखे और वहां एक-दो संवाददाता रखे।

इसी तरह आउटपुट देने यानी समाचार को संपादित कर उसे छापने या अपने चैनल पर प्रसारित करने के लिए विभिन्न श्रेणी के डेस्क भी बनाने होंगे -जिले की खबरों के लिए, प्रकाशन वाले शहर की स्थानीय

खबरों के लिए, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय खबरों के लिए। डेस्क उन खबरों में से अपने पाठकों के काम की खबरें चुनेगा, उसे संपादित करेगा और फिर अपने माध्यम पर प्रस्तुत करेगा।

जैसे दिल्ली से निकलने वाले किसी अखबार के पास एक रीजनल डेस्क होगा, जो विभिन्न प्रदेशों से आने वाली खबरें देखेगा। दूसरा लोकल डेस्क होगा, जो दिल्ली की स्थानीय खबरें देखेगा। इसी तरह से उसके यहां नेशनल और इंटरनेशनल डेस्क भी होंगे। कामकाज को ज्यादा व्यवस्थित बनाने के लिए स्पोर्ट्स और कॉमर्स के लिए भी अलग-अलग डेस्क हो सकते हैं।

इसी तरह से खबरें एकत्र करने के लिए संवाददाताओं की भी अलग-अलग श्रेणियां हो सकती हैं, जैसे जिले से खबरें देने वाले रिपोर्टर, प्रादेशिक राजधानियों या बड़े शहरों से खबरें देने वाले रिपोर्टर, केंद्रीय राजधानी या किसी दूसरे देश की राजधानी से खबरें भेजने वाले रिपोर्टर।

इनपुट और आउटपुट का यह ढांचा अखबारों और टीवी के समाचार चैनलों के काम के ढंग से आसानी से समझा जा सकता है। लेकिन क्या न्यूज एजेंसियों में भी इसी तरह से काम होता है? वे तो जो खबरें एकत्र करती होंगी, वही खबरें दूसरों को दे देती होंगी। नहीं, ऐसा नहीं होता है। उनके संवाददाता भी जो खबरें लेकर आते हैं, उन्हें पहले संपादित किया जाता है। उनकी भाषा सुधारी जाती है, तथ्य जांचे जाते हैं, और गैर जरूरी सूचनाओं की काट-छांट की जाती है। न्यूज एजेंसी के दफ्तर में भी अपने उपभोक्ताओं के हिसाब से खबरों का संपादन किया जाता है।

मसलन उत्तराखंड के पर्यटन मंत्री ने चमोली के विकास पर यदि पच्चीस करोड़ रुपये खर्च करने की बात कही है, तो वह खबर चमोली के स्थानीय अखबार के लिए तो काफी विस्तार से भेजी जाएगी, पर हिंदू या मलयालम मनोरमा के लिए शायद सिर्फ एक पैरे का समाचार भेजना काफी होगा। इसी तरह चीनी समाचार एजेंसी शिन्हुआ ने भारत से संबंधित कोई खबर यदि चीनी भाषा में प्राप्त किया है, तो भारत के किसी अखबार या टीवी चैनल को देने के लिए उसे उसका अनुवाद अंग्रेजी में करवाना होगा। इस तरह समाचार एजेंसियों को भी अपने उपभोक्ता संगठनों के हिसाब से आउटपुट पर काफी मेहनत करनी पड़ती है।

10.6 विदेश संवाददाता : एक परिचय

इस पृष्ठभूमि में आप आसानी से समझ सकते हैं कि ऐसे संवाददाता, जो दूसरे देशों में रह कर अपने संगठन के लिए समाचार भेजते हैं, उन्हें विदेश संवाददाता या फॉरेन कॉरेस्पोंडेंट (विदेश संवाददाता)

कहते हैं। और ऐसा डेस्क जो विदेशी खबरों पर ध्यान रखता है, उन्हें संपादित करता है और अपने पाठकों/ श्रोताओं/ दर्शकों के अनुरूप बनाकर उन्हें प्रस्तुत करता है, उसे फॉरेन डेस्क कहा जाता है।

फॉरेन कॉरेस्पोंडेंट बहाल करने में और फॉरेन डेस्क बनाने में निश्चित रूप से ज्यादा संसाधन खर्च होता है। इसलिए आमतौर पर सिर्फ बड़े अखबार, रेडियो और चैनल ही ऐसा करते हैं। भारत जैसे विकासशील देश के ज्यादातर समाचार संगठन फॉरेन कॉरेस्पोंडेंट रखने का खर्च नहीं उठाना चाहते। फिर भी टाइम्स ऑफ इंडिया, हिंदुस्तान टाइम्स और हिंदू जैसे बड़े प्रकाशन समूह और ऑल इंडिया रेडियो, दूरदर्शन, तथा पीटीआई जैसे सरकारी मदद वाले संगठनों ने महत्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय केंद्रों पर अपने फॉरेन कॉरेस्पोंडेंट रखे हैं। अब तो देश में विदेशी हिस्सेदारी वाले टीवी चैनल भी काम कर रहे हैं। इनके लिए फॉरेन कारेस्पोंडेंट रखना या अपने विदेशी कार्यालयों से फुटेज मंगाना अब आसान हो गया है।

10.7 विदेश संवाददाताओं के प्रकार

जैसा कि हम स्थानीय या प्रादेशिक ब्यूरो आदि में देखते हैं कि वहां संवाददाताओं की अनेक श्रेणियां होती हैं -जैसे पूर्णकालिक या नियमित संवाददाता, स्ट्रिंगर, फ्रीलांसर आदि। उसी तरह से अब विदेश संवाददाताओं की भी अनेक श्रेणियां होने लगी हैं। पहले खबरों और राजनयिक संबंधों की संवेदनशीलता को देखते हुए बड़े संगठन सिर्फ अपने वरिष्ठ और पूर्णकालिक पत्रकारों को ही विदेश संवाददाता बनाते थे। उनसे अपेक्षा रखी जाती थी कि वे अपने देश की विदेश नीति, अंतरराष्ट्रीय संबंधों, राजनय, कूटनीति और प्रोटोकॉल की जानकारी रखते होंगे। उनके लिए दोनों देशों की भाषा और संस्कृति की जानकारी भी जरूरी थी। आखिर उन्हें अपने कार्य क्षेत्र में दूसरे देशों के अधिकारियों और राजनयिकों से ही खबरें प्राप्त करनी होंगी। पर अब लोगों (पाठकों) की दिलचस्पी दूसरे क्षेत्रों में भी बढ़ने लगी है। मसलन कुछ लोग सिर्फ यह पढ़ने या जानने में रुचि रख सकते हैं कि हवाई द्वीप देखने में कैसा है, वहां कैसे जाएं और कहां ठहरें। क्या सावधानी रखें, कितना खर्च होगा। इस तरह की जानकारी कोई टुरिस्ट या कॉलेज स्टुडेंट भी लिख कर भेज सकता है। इसलिए विदेशी खबरों के लिए अब पूर्णकालिक संवाददाताओं के अलावा रिटेनर और स्ट्रिंगर या पार्ट टाईम कॉरेस्पोंडेंटस भी रखे जाने लगे हैं।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि किसी पत्रकार को किसी दूसरे देश में कोई विशेष घटना, आयोजन या समारोह कवर करने के लिए भेजा जाता है। जैसे ओलंपिक गेम्स की या शिखर वार्ताओं की या प्रधानमंत्री की यात्रा के दौरान उनसे संबंधित खबरें भेजने के लिए किसी पत्रकार को भेजा जाता है। इस तरह का असाइनमेंट बहुत छोटा होता है और कुछ ही दिनों के लिए होता है। इसलिए ऐसे संवाददाताओं

को फारेन कॉरेस्पोंडेंट नहीं कहते। फारेन कॉरेस्पोंडेंट किसी देश में लंबी अवधि तक रह कर वहां से लगातार रिपोर्टिंग करते हैं। इसके लिए उन्हें मेजबान देश से स्पेशल जर्नलिस्ट वीसा या मंजूरी लेनी होती है।

आजकल विभिन्न समाचार संगठन एक-दूसरे के साथ भी विदेशी खबरें/फुटेज वगैरह शेयर करते हैं। जैसे दिल्ली से प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी के अनेक अखबारों में आपको नियमित रूप से न्यूयार्क टाइम्स या इंडिपेंडेंट की एक-दो रिपोर्टें पढऩे को मिलेंगी।

10.7.1 फॉरेन कॉरेस्पोंडेंट्स की संख्या

यह जानकारी ठीक-ठीक दे पाना मुश्किल है कि किसी भी देश में दूसरे देश के कितने फॉरेन कॉरेस्पोंडेंट काम कर रहे हैं। या किसी देश से कितने पत्रकार, फॉरेन कॉरेस्पोंडेंट के रूप में दूसरे देशों में काम कर रहे हैं। लेकिन ग्लोबलाइजेशन की प्रक्रिया शुरू होने के बाद से विभिन्न देशों के बीच आवागमन काफी तेजी से बढ़ा है। उनके बीच व्यापारिक गतिविधियां भी बढ़ रही हैं। वे अन्य तकनीकी मामलों में भी एक-दूसरे के साथ सहयोग बढ़ा रहे हैं। इसके अलावा, आम लोगों की दिलचस्पी भी दूसरे देशों से संबंधित खबरों में बढ़ी है।

इसने पेशेवर समाचार संगठनों के लिए यह जरूरी बना दिया है कि वे ज्यादा से ज्यादा देशों में अपने संवाददाता भेजें। इससे फॉरेन कॉरेस्पोंडेंट्स की संख्या में बहुत तेजी से बढ़ोतरी हो रही है। यह कितनी तेजी से बढ़ रही है, इसका एक अनुमान नई दिल्ली स्थित फॉरेन कॉरेस्पोंडेंट क्लब के कुछ आंकड़ों से लगाया जा सकता है। सन 2008 में यहां इस क्लब के 200 सदस्य थे, जो 2009 में 240 हो गए और 2010 में 300 तक जा पहुंचे।

इन संवाददाताओं में से ज्यादातर अमेरिका, ब्रिटेन, चीन, जापान और फ्रांस के समाचार संगठनों से आए हैं। इनमें टीवी पत्रकारों और उनके कैमरामेन की संख्या भी काफी है। *न्यूयॉर्क टाइम्स* की लीडिया पालग्रीन 1990 में ही यहां रिपोर्टिंग के लिए आ गई थीं। वे बताती हैं कि एनवाईटी की वेबसाइट पर जिन देशों को सबसे ज्यादा सर्च किया जाता है, उनमें भारत दूसरे या तीसरे नंबर पर होता है। इनके अलावा पाकिस्तान, श्रीलंका, भूटान, नेपाल, अफगानिस्तान और तिब्बत आदि में भी भारत में चल रही गतिविधियों को लेकर काफी उत्सुकता रहती है।

पिछले दो-तीन वर्षों में पूरी दुनिया में जो मंदी आई है, उसकी वजह से भारत आने वाले विदेशी संवाददाताओं की संख्या काफी बढ़ी है। भारत का अंदरूनी बाजार बहुत तेजी से फैल रहा है। वह मंदी से अपेक्षाकृत कम प्रभावित हुआ है, बल्कि यह उम्मीद भी की जाती है कि दुनिया को भारत और चीन जैसे देश ही इस मंदी से बाहर निकालेंगे। इसकी वजह से विदेशों से बहुत सारे पत्रकार भारत आने लगे हैं, जो यह देखना चाहते हैं कि यहां क्या-क्या संभावनाएं हैं। ऐसी खबरों में उनके अपने देश के पाठकों की काफी दिलचस्पी रहती है। इन पत्रकारों में बहुत सारे फ्री लांसर हैं, जो अपनी रिपोर्टों के लिए विभिन्न अखबारों से करार कर लेते हैं। वे किसी संगठन के नियमित संवाददाता नहीं होते। इस तरह इन फॉरेन कॉरेस्पोंडेंट्स की आज भी मोटे तौर पर वही तीन श्रेणियां हैं, जिनमें से कुछ नियमित संवाददाता हैं, कुछ स्ट्रिंगर और कुछ फ्री लांसर।

10.7.2 विदेश संवाददाताओं की नियुक्ति का इतिहास

अखबारों ने अपने यहां फॉरेन का कॉरेस्पोंडेंट की नियुक्ति कब से शुरू की या फॉरेन डेस्क का गठन कब से होने लगा, यह भी ठीक-ठीक बताना तो मुश्किल है। लेकिन उन्नीसवीं सदी के यूरोपीय अखबारों के आप नाम देखें तो उस से अंदाजा होता है कि उन अखबारों का सबसे बड़ा आकर्षण विदेशी समाचार ही होते थे। इन अखबारों के नाम के साथ आम तौर पर पोस्ट या डिस्पैच जैसा शब्द लगा रहता था। जैसे सेंट लुई डिस्पैच, न्यूयॉर्क पोस्ट या लंदन डिस्पैच जैसे होते थे। उन्नीसवीं सदी के आरंभ में यूरोप में बहुत तेज उथल-पुथल मची हुई थी। कई क्षेत्रों में तेजी से औद्योगीकरण शुरू हो रहा था, इसके साथ व्यापार और उत्पादन के तौर-तरीके भी बदल रहे थे। नए चिंतक और बुद्धिजीवी अपनी नई व्याख्याओं से लोगों को मुग्ध कर रहे थे। तेजी से सामाजिक और राजनीतिक बदलाव हो रहे थे। इसलिए पाठकों की यह जानने में गहरी दिलचस्पी रहती थी कि दूसरे देशों या जगहों पर क्या नया हो रहा है। अखबार ऐसी खबरें बटोर कर छापते थे, लेकिन उन समाचारों के लिए उन्हें वहां से आने वाली डाक का इंतजार रहता था। उस समय डाक से कुछ लेखक अपना डिस्पैच भेजते थे या संपादक विभिन्न जगहों से प्रकाशित होने वाले अखबार डाक से हासिल करते थे और फिर उनमें से अपने काम की खबरें निकाल कर अपने यहां प्रकाशित करते थे।

10.7.3 खबरों के पीछे भागो-नई नीति

2009 में लुइसियाना स्टेट यूनिवर्सिटी प्रेस से जॉन मैक्सवेल हैमिल्टन की एक किताब प्रकाशित हुई थी, *'जर्नलिज्म्स रोविंग आई : ॲ हिस्ट्री ऑफ अमेरिकन फॉरेन रिपोर्टिंग।* इस किताब में हैमिल्टन ने लिखा

है :1835 में जेम्स गॉर्डन बेनेट के अखबार न्यूयॉर्क हेराल्ड ने प्रसार की दृष्टि से अपने बाकी सभी प्रतिद्वंद्वियों को पछाड़ दिया। इसके लिए बेनेट ने एक बहुत ही शानदार रणनीति बनाई। उसने कहा : *'हमारे बाकी प्रतिद्वंद्वी विदेशी खबरों का इंतजार करते हैं। अब तक हम भी यही करते रहे हैं। लेकिन अब हम इंतजार नहीं करेंगे, हम खुद खबरों के पीछे भागेंगे। बेनेट की इस नीति से न्यूयॉर्क हेराल्ड की लोकप्रियता में काफी बढ़ोतरी हुई।*

इसके कुछ ही दिनों बाद *न्यूयॉर्क हेराल्ड* के प्रतिद्वंद्वी न्यूयॉर्क ट्रिब्यून ने भी वही नीति अपनाई, लेकिन वह एक कदम और आगे बढ़ा। उसके मालिक होरास ग्रीली ने यूरोप के कई देशों और शहरों की यात्रा की और वहां के बड़े-बड़े लेखकों से अपना नियमित पोस्ट भेजने का अनुबंध किया। न्यूयॉर्क ट्रिब्यून को अपना डिस्पैच भेजने वालों में मार्गरिट फुलर, कार्ल मार्क्स, हेनरी जेम्स, चार्ल्स ए डाना, जॉर्ज विलियम कर्टिस और जॉर्ज स्माली जैसे ख्यातिप्राप्त लोग थे। शायद यह विदेश संवाददाता का प्रारंभिक रूप था। जेनेट मैक्विकर ने अपने एक लेख *'नेक्स्ट स्टॉप लिस्बन (और लंदन और लाहौर): अॅ हिस्ट्री ऑफ फॉरेन कॉरेस्पोंडेंट* में लिखा है कि न्यूयॉर्क ट्रिब्यून को नियमित खबरें भेजने वाले जॉर्ज स्माली ने ही 1860 के दशक में लंदन में अखबार का ब्यूरो स्थापित किया था। अखबार न्यूयॉर्क से निकलता था। इस तरह शायद वह पहला फॉरेन ब्यूरो था। लेकिन फ्रांस की न्यूज एजेंसी एएफपी (एजेंसे फ्रांसे प्रेसे) 1835 में ही स्थापित हो चुकी थी। यह सबसे पुरानी समाचार एजेंसी है और सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि दूसरे देशों से समाचार लेने-देने के लिए इसने जरूर वहां अपने संवाददाता, डेस्क और ब्यूरो बनाए होंगे।

10.7.4 विदेशी खबरों का स्वर्ण युग

आपने जोसेफ पुलित्जर का नाम सुना होगा। वे एक महान अमेरिकी पत्रकार थे और 1878 में सेंट लुई डिस्पैच नाम का अखबार निकालते थे, जो बाद में सेंट लुई पोस्ट डिस्पैचर हो गया। पत्रकारों को प्रोत्साहन देने के लिए पुलित्जर ने अपनी कमाई से उनके लिए एक पुरस्कार योजना शुरू की, जो एक ट्रस्ट द्वारा आज भी चलाई जा रही है। हेंज देइत्रिच फिशर ने इन पर एक भारी किताब लिखी है *'द पुलित्जर प्राइज ऑचिव।* इस किताब का पहला वॉल्यूम 1928-85 के बीच की अंतरराष्ट्रीय रिपोर्टिंग पर आधारित है। इस वॉल्यूम में हेंज ने लिखा है, प्रथम विश्व युद्ध के बाद खबरों में अंतरराष्ट्रीय सूचनाओं का महत्व बढ़ गया। हिटलर और मुसोलिनी की बढ़ती हुई ताकत, उनके भय से सहमे हुए पड़ोसी देश और उनकी आपसी तैयारियों पर सबकी नजर थी और संवाददाता अपने अखबार के लिए अधिकाधिक ऐसी खबरें भेजने लगे, जो लोग बहुत चाव और दिलचस्पी से पढ़ते थे। यह अकारण नहीं था कि 1928

में अंतरराष्ट्रीय रिपोर्टिंग के लिए पुलित्जर पुरस्कारों की एक अलग श्रेणी बनाई गई और वह पुरस्कार एक फॉरेन कॉरेस्पोंडेंट को ही दिया गया।

हेमिल्टन ने लिखा है कि दूसरे महायुद्ध के बाद विदेशी पत्रकारिता का स्वर्ण युग समाप्त हो गया। वह शीत युद्ध की चपेट में आ गया। विदेशी संवाददाता शक के दायरे में आने लगे। उनके द्वारा भेजे जाने वाले डिस्पैच की जांच होने लगी। कई जगह ब्यूरो बंद हो गए और वहां नियुक्त संवाददाता अपने देश वापस लौट गए। लेकिन पाठकों की दिलचस्पी अंतरराष्ट्रीय खबरों में जाग चुकी थी। वे बाकी दुनिया से कटकर नहीं रहना चाहते थे। इसलिए उनकी जगह तेजी से इंटरनेशनल न्यूज एजेंसियां वजूद में आने लगीं, जो अपने देश के हितों का ध्यान रखते हुए खबरें तैयार करती थीं और पूरी दुनिया में भेजती थीं। इनकी खबरों का सहारा लेना शीत युद्ध से ग्रस्त दुनिया के लिए एक मजबूरी थी।

10.7.5 भारत में शुरुआत

भारत में संभवत: पहला फारेन कॉरेस्पोंडेंट *रायटर* ने 1865 के आसपास भेजा था। उस समय भारत और यूरोप के बीच टेलीग्राफ लाइनें बिछाई गई थीं और कॉलिंस नाम के उस संवाददाता को एक दिन में सिर्फ 77 शब्द भेजने की इजाजत थी।

कालिंस पूर्णकालिक संवाददाता था। 1947 में भारत को आजादी मिलने के बाद से यहां आने वाले विदेशी पत्रकारों की संख्या तेजी से बढ़ी। अस्सी के दशक में *फाइनांशियल टाइम्स* और *वाल स्ट्रीट जरनल* ने यहां अपना ब्यूरो खोला और उसके बाद पूर्णकालिक फोटोग्राफर भी रखे जाने लगे।

10.8 अंतरराष्ट्रीय पत्रकारिता के रूप में बदलाव

10.8.1 टेक्नोलॉजी का प्रभाव

विदेशों से खबरें मंगाने और विदेशों में अपने संवाददाता रखने का मूल उद्देश्य अंतरराष्ट्रीय खबरें प्राप्त करना और उन्हें अपने पाठकों तक पहुंचाना था। इन खबरों पर दो बातों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा - एक, उस युग में उपलब्ध टेक्नोलॉजी। और दो, विभिन्न देशों के आपसी संबंध। जैसा कि हमने उपर चर्चा की है, जब खबरें डाक से आती थीं, तो वे लेख की तरह लिखी जाती थीं और उनकी संख्या कम होती थी। वे तात्कालिक महत्व यानी एक या दो दिन तक पाठक की जिज्ञासा बनाए रखने वाली खबरें नहीं होती थीं।

जब टेलीग्राफ युग की शुरुआत हुई रिपोर्ट के शब्दों की संख्या महत्वपूर्ण हो गई और बहुत खास-खास खबरें संक्षेप में भेजी जाने लगीं। लेकिन इनका फायदा यह हुआ कि खबरें जल्दी-जल्दी मिलने लगीं। उन्हें पहले की तरह डाक के लिए हफ्तों या महीनों तक इंतजार नहीं करना पड़ता था। आज असंख्य छोटी-बड़ी खबरें इंटरनेट के माध्यम से भेजी जाती हैं। उनमें से अनेक ऐसी होती हैं, जिनकी पठनीयता या महत्व अगले दिन तक समाप्त हो जाता है। आज मोबाइल से भी खबरें भेजी जा सकती हैं। नई तकनीक की वजह से आज कितनी ही दूर की कोई खबर तुरंत और विस्तार से हासिल हो जाती है।

10.8.2 अंतरराष्ट्रीय संबंधों का प्रभाव

विदेश संवाददाताओं द्वारा भेजी जाने वाली अंतरराष्ट्रीय खबरों के स्वरूप पर टक् नोलॉजी के अलावा विभिन्न देशों के आपसी संबंधों और अंतरराष्ट्रीय राजनय का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। मसलन उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में यूरोप एक नई अंगड़ाई ले रहा था। जैसा कि हमने उपर चर्चा की है, दुनिया के अनेक क्षेत्रों में अनेक नई-नई बातें घटित हो रही थीं। तो उस समय की खबरों में उन नई बातों को जानने की तीव्र उत्कंठा थी। एक तरह से उस समय की अंतरराष्ट्रीय रिपोर्टिंग 'द न्यू ब्रेव वर्ल्ड को समर्पित थी।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद वही अंतरराष्ट्रीय रिपोर्टिंग यलो जर्नलिज्म का हथियार बन गई, जिसमें विभिन्न देश मिर्च-मसाला लगी खबरों को एक-दूसरे के खिलाफ दुष्प्रचार हथियार बन गई। दूसरे विश्व युद्ध के बाद जब दुनिया दो ध्रुवों में बंट गई, तब भी वह जासूसी और दुष्प्रचार से बोझिल बनी रही। शीत शुद्ध के दौरान आपको खबरों को तोड़-मरोड़ कर पेश करने के उदाहरण आसानी से मिल जाएंगे। हालांकि उस दौर में उन्हीं अंतरराष्ट्रीय खबरों ने औपनिवेशिक देशों में चल रहे स्वतंत्रताकामी आंदोलनों की भी बहुत मदद की। आज की अंतरराष्ट्रीय खबरें बिजनेस गतिविधियों से ज्यादा प्रभावित हैं। इस तरह से ये खबरें नई टेक्नोलॉजी और जमाने के चलन से निर्धारित होती रही हैं।

10.9 विदेश संवाददाता की चुनौतियां

कुछ मामलों में पूर्णकालिक विदेश संवाददाताओं का काम बहुत मुश्किल और चुनौतीपूर्ण होता है। उन्हें सबसे पहले वहां की भाषा और संस्कृति समझनी पड़ती है, जहां उनकी नियुक्ति होती है। इसके बाद अपने लिए खबरों के स्रोत बनाने पड़ते हैं। यदि मेजबान देश से अपने देश के राजनयिक रिश्ते अच्छे नहीं हुए तो और भी दूसरे तरह की परेशानियां पेश आती हैं। तब खबरें जुटाने का काम बेहद जोखिमपूर्ण हो जाता है।

आपने सुना होगा, कई फॉरेन कॉरेस्पोंडेंटस पर अक्सर विदेशी जासूस होने का आरोप लग जाता है। उनका अपहरण या देशनिकाला हो जाता है। युद्ध या गृहयुद्ध की स्थिति में फॉरेन कॉरेस्पोंडेंट्स का जोखिम काफी बढ़ जाता है। बीती फरवरी में जब सारी दुनिया *जैस्मिन रिवोल्यूशन* की खबरें उत्सुकता से पढ़ रही थी, *संडे टाइम्स* की संवाददाता कॉलविन सीरिया से रिपोर्टिंग करती हुई वहां एक रॉकेट हमले की चपेट आ कर मारी गई। *लंदन टेलीग्राफ* ने 22 फरवरी के अपने अंक में एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी, जिसके अनुसार ऐसे उपद्रवग्रस्त क्षेत्रों से खबरें भेजते हुए 2011 में लगभग 68 पत्रकार मारे गए। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि अशांति की स्थिति में फॉरेन कॉरेस्पोंडेंट कितना जोखिम ले कर अपना काम करते हैं।

लेकिन सामान्य दिनों में भी फॉरेन कॉरेस्पोंडेंट्स को कई तरह की दिक्कतों से जूझना पड़ता है। यह दिक्कत सिर्फ भाषा और संस्कृति को ही समझने की नहीं होती। दिल्ली स्थित फॉरेन कोरेस्पोंडेंट क्लब ने अपनी स्थापना के पचास साल पूरे होने पर 2008 में एक स्मारिका प्रकाशित की थी, जिसमें यहां काम करने वाले कुछ विदेशी पत्रकारों ने अपने अनुभव लिखे थे। इस स्मारिका में न्यूज वीक के भारत स्थित संवाददाता जेरेमी कान ने लिखा था कि यहां आने के बाद समझ में आता है कि यहां मुंबई या कोलकाता के स्लम और बेंगलुरु के आईटी सेंटर के अलावा भी बहुत सारी खबरें होती हैं। लेकिन अमेरिका में बैठे हमारे संपादक यह समझ नहीं पाते।

अक्सर हर देश में दूसरे देश के बारे में एक खास ढंग से ही सोचा जाता है, जिस बंधी हुई धारणा को तोड़ना इन पत्रकारों के लिए सबसे बड़ी चुनौती होती है। उस स्मारिका में एक अन्य विदेशी पत्रकार ने अपना नाम गुप्त रख कर भारत के बारे में भी लिखा है कि जर्मनी जैसे देशों में कोई एप्वायंटमेंट लेने या खबर निकलवाने में कई-कई हफ्ते लग जाते हैं, लेकिन भारत में थोड़ा तिकड़म लगाने से काम हो जाता है। कुछ पत्रकारों के लिए यही तरीका मुश्किल साबित होता है, जबकि कुछ के लिए यह खबरें पाने का आसान रास्ता। उस पत्रकार के भारत के ऐसे अनुभव से हम यह अंदाजा लगा सकते हैं कि यहां से जाने वाले हमारे फारेन फॉरेन कॉरेस्पोंडेंट्स को भी दूसरे देशों में कितनी अदृश्य और छोटी-छोटी समस्याओं से जूझना पड़ता है।

10.10 सारांश

आज की *ग्लोबलाइज्ड* दुनिया में उन तमाम बातों का हम पर प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव पड़ता है। इसलिए विदेशी समाचारों को जानने की इच्छा एक सहज मानवीय जिज्ञासा के अलावा हमारी जरूरत भी है।

उनसे हम नई-नई बातें सीखते हैं और उन परिस्थितियों के लिए खुद को तैयार करते हैं। जैसे खाड़ी देश अगर कच्चे तेल की कीमत बढ़ाते हैं, तो हमारे यहां भी पेट्रोल महंगा हो जाएगा। और यदि अमेरिका, अपने यहां नौकरी या पढ़ाई के लिए दिए जाने वाले वीसा में कटौती करता है, तो भारत में भी ऐसे युवकों को परेशानी हो सकती है, जो वहां पढ़ाई या नौकरी के लिए जाना चाहते हैं। समाचार संगठन हम ऐसी संस्थाओं को कह सकते हैं, जो पेशेवर ढंग से समाचार एकत्र करते हैं और उन्हें आम लोगों तक पहुंचाते हैं, जैसे अखबार, रेडियो और टीवी। इनमें समाचार एजेंसियां भी शामिल हैं। अब ज्यादातर बड़े अखबार समूह और एजेंसियां दूसरे देशों में अपने संवाददाताओं को रखती हैं जिन्हें विदेश संवाददाता कहा जाता है। पूर्णकालिक विदेश संवाददाताओं का काम बहुत मुश्किल और चुनौतीपूर्ण होता है। उन्हें सबसे पहले वहां की भाषा और संस्कृति समझनी पड़ती है, जहां उनकी नियुक्ति होती है। इसके बाद अपने लिए खबरों के स्रोत बनाने पड़ते हैं। यदि मेजबान देश से अपने देश के राजनयिक रिश्ते अच्छे नहीं हुए तो खबरें जुटाने का काम जोखिमपूर्ण हो जाता है।

10.11 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. ग्लोबलाइजेशन के साथ फॉरेन कॉरेस्पोंडेंट्स की संख्या क्यों बढ़ी है? दोनों में क्या संबंध है?

प्रश्न 2. समाचार एजेंसियों में आउटपुट विभाग की क्या जरूरत होती है?

प्रश्न 3. फॉरेन कॉरेस्पोंडेंट्स को किस-किस तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है?

प्रश्न 4. फॉरेन डेस्क अब फ्रीलांसर और स्ट्रिंगर की सेवाएं क्यों लेने लगे हैं?

प्रश्न 5. फॉरेन कॉरेस्पोंडेंट बनने के लिए किस तरह की योग्यता होनी चाहिए?

10.12 संदर्भ ग्रंथ

1. पाण्डेय, डॉ. पृथ्वीनाथ, (2004), पत्रकारिता: परिवेश एवं प्रवृत्तियां, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

2. विलियम्स केविन, 2011, अंतरराष्ट्रीय पत्रकारिता, सेज पब्लिकेशंस

इकाई-11

भारतीय सामाजिक परिवेश

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 परिचय
11.3 सांस्कृतिक उद्भव : ऐतिहासिक संदर्भ
11.4 भारतीय समाज की प्रमुख विशेषताएं
11.5 जाति व्यवस्था
11.6 स्वतंत्र भारत की चुनौतियां
11.7 भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति
11.8 सारांश
11.9 शब्दावली
11.10 संदर्भ ग्रंथ
11.11 लघु उत्तरीय प्रश्न
11.12 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद हम निम्न विषयों को समझने में और उन पर अपनी राय बनाने में सक्षम होंगे : - भारतीय समाज की बुनावट और उसकी विशेषताएं

- भारतीय जाति व्यवस्था
- स्वतंत्र भारत की सामाजिक चुनौतियां, गरीबी, भेदभाव और सामाजिक तनाव
- महिलाओं, दलितों और आदिवासियों की स्थिति

11.1 प्रस्तावना

भारतीय समाज इस हद तक बहुआयामी है, जिसकी मिसाल विश्व की दूसरी महान सभ्यताओं में देखने को नहीं मिलती। आजादी की लड़ाई के दौरान पत्रकारिता की जो नींव पड़ी थी और जो सरोकार पैदा

हुए थे, वे पूंजीवादी समाज बनने के कारण बदल रहे हैं। गरीबी, कुपोषण, स्त्री और दलित के सवाल हाशिये पर चले गए हैं। कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर का यह कथन आज भी कितना प्रासांगिक है कि हमारी आज की समस्याएं राजनीतिक नहीं अपितु सामाजिक हैं यानी सांस्कृतिक हैं। इसी तरह कवि सुमित्रानंदन पंत की ये पंक्तियां, जो विश्व के संदर्भ में कही गईं, मगर हमारे देश के संदर्भ में भी अत्यंत प्रासांगिक हैं-

राजनीति का प्रश्न नहीं, आज जगत के सन्मुख।

आज महत सांस्कृतिक समस्या, खड़ी जगत के सन्मुख।।

15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के सामने जो सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक चुनौतियां थीं, उनसे निपटना आसान नहीं था। स्वतंत्रता प्राप्ति के छह दशकों बाद आज भी देश जातीय संकीर्णताओं से ऊपर नहीं उठ सका है। दलितों और आदिवासियों को देश की मुख्य धारा से जोड़ने के प्रयास हुए हैं, इसमें कामयाबी भी मिली है, लेकिन यह चिंता की बात है कि देश की एक तिहाई से अधिक आबादी आज भी गरीबी की रेखा से नीचे गुजर बसर करने को मजबूर है। वस्तुतः गरीबी और पिछड़ापन आर्थिक ही नहीं एक सामाजिक चुनौती भी है। इसके साथ ही सांप्रदायिक दंगों ने भी देश के सामाजिक ताने-बाने को नुकसान पहुंचाया है। मगर इन सबके बावजूद भारतीय समाज अपने अंतरविरोधों से बाहर निकलने को निरंतर प्रयासरत है।

11.2 परिचय

इस इकाई में हम भारतीय समाज और उसे प्रभावित करने वाले मुद्दों और कारकों को समझने का प्रयास करेंगे। विश्व के दूसरे समाजों से भारतीय समाज न केवल भिन्न है, बल्कि अपनी इंद्रधनुषी छटा के कारण कई अर्थों में वह विशिष्ट भी है। भारतीय सभ्यता में जिस तरह की जातीय और भाषायी विविधता है, वह किसी एक राष्ट्र में दिखाई नहीं देती। ऐसा लगता है मानो भारतीय समाज कई समाजों से मिलकर बना है। भारतीय राष्ट्र के भीतर विभिन्न क्षेत्रीय, सामाजिक और आर्थिक समूह अपनी भिन्न सांस्कृतिक परंपरा और विरासत के साथ रहते हैं।

हिंदू बहुसंख्यकों के साथ, मुसलिम (सबसे बड़ा अल्पसंख्यक समुदाय), जैन, पारसी, सिख, बौद्ध, ईसाई और यहूदी समुदाय इसका अंग हैं। इनके साथ ही जनजाति समूह हैं, जिन्हें आदिवासी कहा जाता है। इसके अलावा एक और विभाजन भारतीय समाज में देखा जा सकता है, वह शहरी समाज और ग्रामीण समाज के रूप में है। भारतीय समाज का अध्ययन करते समय हमें भारत का इतिहास भी ज्ञात होना

चाहिए। अमूमन भारतीय इतिहास को तीन हिस्सों में बांटकर देखा जाता है, प्राचीन, मध्ययुगीन और आधुनिक। दरअसल भारतीय समाज का विकास इन्हीं कालखंडों में हुआ है। प्राचीन काल सिंधु घाटी की सभ्यता से शुरू होता है और ईसवी सन् 1000 में उत्तरी भारत में तुर्की के आक्रमण के साथ खत्म होता है। इसके बाद मध्य युग मुगलों के शासन के साथ आगे बढ़ता है और 18 वीं सदी के मध्य में अंग्रेजों के आगमन तक चलता है। औपनिवेशिक शासन की शुरुआत से लेकर आज तक का दौर आधुनिक काल कहा जाता है। हम देखेंगे कि धर्म ने भारतीय समाज और संस्कृति के विकास में कैसी भूमिका निभाई या उन्हें किस तरह प्रभावित किया। प्राचीन काल में हिंदू धर्म ने भारतीय संस्कृति और परंपरा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जाति व्यवस्था भी हमारी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण की प्रमुख कारक रही है। इसके अलावा महिलाएं भी हमारी सामाजिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

हम हमारे समाज में महिलाओं के महत्व को समझने के साथ ही उनकी चुनौतियों को समझने का प्रयास करेंगे। भारतीय समाज शहरी और ग्रामीण समाज में भी बंटा हुआ है। भारत में समाजशास्त्रियों ने देहात में जो सर्वेक्षण किए हैं, वे यह बताते हैं कि नए विचारों और विधियों को अपनाने में हमारी अनपढ़ ग्रामीण जनता तथाकथित शहरी आदमियों से अधिक सजग है। यह अध्याय हमें आधुनिक भारतीय समाज के अन्य प्रभावी तत्वों को समझने में मदद करेगा। हम देखेंगे कि भारतीय समाज का उद्भव कैसे हुआ और आज उसके सामने किस तरह की चुनौतियां हैं।

11.3 सांस्कृतिक उद्भव: ऐतिहासिक संदर्भ

हर परिवर्तन किसी नए विचार के सामने आने पर होता है। इसलिए आश्चर्य नहीं कि आर्थिक विकास के लिए भी सांस्कृतिक क्रांति आवश्यक होती है। दुनिया में जहां भी आधुनिक ढंग का औद्योगिक समाज बन सका है, वहां पहले कोई न कोई बड़ा आंदोलन चला। यह भी देखा गया है कि आर्थिक विकास और नई सांस्कृतिक चेतना का प्रसार एक-दूसरे को बराबर प्रभावित करते रहते हैं। यह गौर करने लायक बात है कि पश्चिमी देशों में औद्योगिक और वैज्ञानिक क्रांति तब आई, जब मसीही धर्म की प्राचीन कैथोलिक मान्यताओं को प्रोटेस्टों ने चुनौती दी। इसी तरह जापान में आधुनिक विकास की नींव सेमुराई कहलाने वाले शूरवीर समुदाय ने रखी। इन लोगों ने जापान खतरे में है का नारा बुलंद किया और राष्ट्र को वह अनुशासन और उत्साह दिया जो जापान को एक बड़ी आधुनिक सैनिक आर्थिक शक्ति के रूप में उभार सका। भारतीय सभ्यता की जड़ें ईसा पूर्व 2300 की सिंधु घाटी की सभ्यता से आई हैं जिसे

हड़प्पा संस्कृति के रूप में भी जाना जाता है। आगे हम पढ़ेंगे कि किस तरह आर्य भारत आए और यहां बस गए। आर्य अपने साथ अपनी विशिष्ट संस्कृति लेकर आए थे। इस संस्कृति ने स्थानीय संस्कृति को समृद्ध किया। धीरे-धीरे भारत की विशिष्ट संस्कृति, व्यवहार और परंपराओं का उद्भव हुआ।

11.4 भारतीय समाज की प्रमुख विशेषताएं

भारतीय समाज की निम्नलिखित विशेषताएं हैं-

11.4.1 नस्लीय बहुलता :

बहुलता भारतीय समाज की विशिष्ट पहचान है। एथनोलॉजिकल अध्ययन में यह बात सामने आई है कि भारत में छह मुख्य जातीय समूह का अस्तित्व रहा है। इनमें सबसे आदिम नीग्रिटो हैं, जो कि आज भी अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में और दक्षिण भारत के कुछ आदिम आदिवासी समूहों में पाए जाते हैं। उनके बाद प्रोटो ऑस्ट्रेलॉयड, अल्पाइन, मंगोलॉयड और मेडिटेरियंस आए जिनके कंकाल अवशेष आज भी उन जगहों पर मिल जाते हैं, जहां हड़प्पाकालीन खुदाई हुई थी। सबसे आखिर में यहां आर्य आए।

भारतीय आबादी के बुनियादी तत्व प्रोटो ऑस्ट्रेलॉयड से आए हैं। आज भी मध्य भारत, पूर्वी भारत, बिहार और ओडिशा में यह प्रजाति उपस्थित है। मंगोलॉयड का अस्तित्व भारत के उत्तर-पूर्वी और उत्तरी सीमांत क्षेत्रों में रहा है।

11.4.2 भाषायी बहुलता

भारत में चार भाषा समूहों की पहचान की गई हैः द्रविड़, ऑस्ट्रिक, सिनो-तिब्बती इंडो-आर्यन। इंडो-आर्यन भाषा मूलतः पुरातन संस्कृत ही है, जिसे आर्यों ने विकसित किया था। लैटिन और जर्मन भाषाओं से इसकी अद्भुत समानताएं हैं। प्राकृत वैदिक संस्कृत से संबद्ध होने के बावजूद भिन्न थी और यह आर्यों की बोलने वाली भाषा के रूप में प्रसिद्ध थी। अनेक भारतीय भाषाओं की वर्णमाला ब्राह्मी लिपि से ली गई है। इसका उद्भव ईसा पूर्व चैथी सदी में हुआ था। द्रविड़ समूह की भाषाएं तेलुगू, कन्नड़, तमिल और मलयालम पूरी तरह भारतीय मूल की भाषाएं हैं। द्रविड़ समूह से संबद्ध अनेक भाषाएं दक्षिण भारत के टोडा, कोटा और कुडुगस तथा मध्य भारत की गोंडी, कुई, नाइकी और बंगाल, बिहार तथा झारखंड के मालतो, और कुरुख (ओरांव) जैसे आदिवासियों द्वारा बोली जाती हैं।

ऑस्ट्रिक भाषाएं हैं:

मुंडारी, कोल, संथाल, कोरकु और खासी। ये भाषाएं मध्य भारत, पूर्वी भारत और उत्तर-पूर्व क्षेत्र के आदिवासियों द्वारा बोली जाती हैं। सिनो-तिब्बती भाषाएं नगालैंड, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम के

आदिवासियों और हिमालय क्षेत्र के लोगों द्वारा बोली जाती है। भारतीय संविधान ने 18 प्रमुख भाषाओं को मान्यता दी है, लेकिन पूरे देश में 1650 से ज्यादा बोलियां बोली जाती हैं। इस महान भाषायी विविधता के बावजूद सारे भारतीय संस्कृत की समृद्ध साहित्यिक और सांस्कृतिक विरासत का साझा करते हैं।

11.4.3 धार्मिक बहुलता

धार्मिक विचार भारतीय संस्कृति की एक बुनियादी विशेषता है। धार्मिक सहिष्णुता भारतीय मूल के सभी धर्मों का मूल तत्व है। यही वजह है कि इस देश में हिंदू, बौद्ध, जैन, इसलाम, ईसाई, सिख, यहूदी, ज्योरास्ट्र जैसे धार्मिक मत या विचार यहां बिना किसी बाधा के पल्लवित हो सके। समकालीन भारतीय चिंतकों और संतों ने इनमें से प्रत्येक महान धर्म के मानवता को बढ़ाने के लिए दिए गए योगदान और उनमें निहित एकता के विचार के रेखांकित किया है। अध्यात्म और साधना भारतीय संस्कृति के दो विशिष्ट आयाम हैं, जिन्होंने भारतीय संस्कृति को अपनी मौलिकता और विशिष्टता बनाए रखने में मदद की है।

11.5 जाति व्यवस्था

11.5.1 वर्ण व्यवस्था - समाज विज्ञानी एमएन श्रीनिवास के अनुसार जाति निःसंदेह एक अखिल भारतीय अवधारणा है, जिसमें विभिन्न जातीय समूह खास तरह का अनुक्रम बनाते हैं, और प्रत्येक समूह का एक या एक से अधिक पारंपरिक पेशा रहा है, इसके साथ ही स्थानीय जातीय अनुक्रम में उसकी निश्चित जगह रही है। भारत की सांस्कृतिक, धार्मिक और जातीय विविधता जाति व्यवस्था और उसके उपादानों की देन है। इस सामाजिक संकीर्णता ने भारतीय समाज को हजारों छोटे-छोटे समाजों में बांट दिया है। वर्ण और जाति हालांकि एक दूसरे से भिन्न होते हैं, मगर अमूमन उन्हें एक समझने की भूल की जाती है। भगवतगीता ने भी गुणों के आधार पर समाज को चार वर्णों में विभाजित किया है। पूर्व वैदिक काल वर्णों वर्णों का स्पष्ट विभाजन को रेखांकित करता है। प्रत्येक वर्ण को एक विशिष्ट इकाई माना जाता था, और यह अपने सामाजिक जीवन के लिए अपने आपमें पूर्ण इकाई होती थी। इस संदर्भ में यह देखा जा सकता है कि जहां वर्ण व्यवस्था पूरे देश में एक जैसी थी, वहीं जाति व्यवस्था का उदय क्षेत्रीय भिन्नताओं के साथ धीरे-धीरे हुआ।

जाति व्यवस्था के विकास में दो सिद्धांतों को आधार माना जाता है:

1. परिवार की धार्मिक एकता का सिद्धांत और दूसरा

2. स्वक्रम और स्वधर्म का सिद्धांत, किसी भी व्यक्ति द्वारा उस जीवन शैली का अनुसरण करने की आजादी, जिस समुदाय या जाति में उसने जन्म लिया हो।

जातीय संकीर्णता भले ही आज कम हो गई है, लेकिन सामाजिक और राजनीतिक रूप से जाति व्यवस्था अभी खत्म नहीं हुई है। यही वजह है कि एक बार फिर से देश में जाति जनगणना करवाई जा रही है।

जातिवाद के खतरों की ओर आगाह करते हुए कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर ने कहा था-

'हमें यह याद रखना चाहिए कि हम अपने समाज में जिन कमजोरियों को प्रश्रय देते हैं, वे अवश्य राजनीति में खतरे के स्रोत के रूप में उभरकर आएंगी। अपने ही समाज के मानवता के एक बड़े हिस्से को नीची जाति का और अस्पृश्य घोषित करने वाली हमारी मनोवृत्ति हमारी राजनीति को मानवशक्ति के नहीं, मानव शोषण और दमन के साधन के रूप में बदल देगी।'

11.5.2 जजमानी व्यवस्था

एक जाति समूह से दूसरे जाति समूह परंपरा, रूढ़ि और व्यवहार में भिन्न होते हैं। लेकिन एक जाति समूह अपने सदस्यों पर अपना प्रभाव कायम रखने के साथ ही अंतर्जातीय संबंधों और अंतर्जातीय सामाजिक मेलजोल को नियंत्रित करने का प्रयास करता है। चूंकि विभिन्न जातियां अनुवांशिक आधार पर व्यवस्थित की गई थीं, उनके कार्य भी विभाजित किए गए थे। पारंपरिक रूप से किसी भी जाति के सदस्य विभिन्न सेवाओं के लिए दूसरी जाति के सदस्यों पर निर्भर होते हैं, इसे जजमानी व्यवस्था कहा जाता है। समाजशास्त्री एम.एन श्रीनिवास इसे जातियों में क्षैतिज समानता कहते हैं। जजमानी व्यवस्था में किसी भी गांव में एक जाति समूह कुछ निश्चित सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक सेवाएं अन्य जातियों के सदस्यों को प्रदान करता है। मसलन ब्राह्मण जन्म, विवाह और मृत्यु आदि से संबंधित धार्मिक अनुष्ठान करते हैं। इन सेवाओं के बदले उन्हें धन मिलता है। इसी तरह बढ़ई, लुहार, नाई और धोबी आदि के काम बंटे हुए हैं।

जजमानी व्यवस्था की एक विशिष्ट बात यह है कि इसमें जजमान (सेवा प्रदाता) और प्रजन (सेवा ग्रहण करने वाला) के संबंध पीढी-दर पीढ़ी विरासत के रूप में चले आते हैं। जाति व्यवस्था की बुराइयों ने इस व्यवस्था को नुकसान पहुंचाया है। इस व्यवस्था की आड़ में उच्च जातियों के लोग नीची जातियों के लोगों का शोषण करते हैं और उनके साथ जातीय आधार पर भेदभाव करते हैं। इसके बावजूद आज भी ग्रामीण भारत में यह व्यवस्था कायम है। हाल के समय में जाति व्यवस्था सामाजिक और राजनीतिक तनाव का कारण भी बनी है। बल्कि जाति व्यवस्था ने देश की समकालीन राजनीति को काफी प्रभावित किया है।

11.5.3 आदिवासी समुदाय

भारत की कुल आबादी में तकरीबन आठ फीसदी आदिवासी हैं। देश के विभिन्न हिस्सों में 400 से अधिक आदिवासी समूह निवास करते हैं। संविधान में आदिवासी समुदाय को पहली बार 'अनुसूचित जनजातियों के रूप में दर्ज किया गया। अनुच्छेद 366 (25) में अनुसूचित जनजातियों को ऐसी जनजातियों या जनजाति समूहों या ऐसी जनजातियों के भाग के रूप में परिभाषित किया गया है, जो कि अनुच्छेद 342 के अंतर्गत अनुसूचित जनजातियों के रूप में दर्ज हैं। मूलतः वनभूमि और वनोपज पर निर्भर रहने वाले आदिवासियों का जीवन भी समय के साथ बदला है। विकास की नई अवधारणाओं ने उनके जीवन यापन के पारंपरिक साधनों को सीमित किया है, तो दूसरी ओर उन्हें बाहरी समाज से साक्षात्कार का अवसर भी उपलब्ध कराया है और रोजगार के नए अवसर भी दिए हैं। नैसर्गिक रूप से स्वच्छंद जीवन जीने वाले आदिवासियों के विकास के प्रति सरकारों ने भी अपने स्तर पर कोशिशें की हैं, अनेक राष्ट्रीय और राज्य स्तर की योजनाएं बनी हैं, लेकिन आज भी उनका शोषण जारी है। झारखंड, ओडिशा, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल जैसे राज्य, जहां आदिवासी आबादी सर्वाधिक संख्या में निवास करती है, ये राज्य आज भी माओवादी या नक्सली समस्या से लगातार ग्रस्त हैं।

11.5.4 एकता में अनेकता

2011 की जनगणना के अनुसार भारत की आबादी 1.21 करोड़ है। वह दुनिया में जनसंख्या के मामले में चीन के बाद दूसरा बड़ा देश है। भौगोलिक रूप से भी भारत विशाल देश है, जिसकी भौगोलिक सीमाएं 15,200 किमी और समुद्री तटरेखा 6100 किमी तक फैली हैं। इतने विस्तार के बावजूद हमारा देश एकता में अनेकता की मिसाल है। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी और गुजरात से लेकर मणिपुर तक भारतीयता की खुशबू महसूस की जा सकती है। भारतीय संस्कृति की जड़ें प्राचीन अभिलेखों और वेदों में छिपी हैं।

भारतीय संस्कृति की एक विशिष्टता पारिवारिक जीवन के बंधन की पवित्रता में देखी जा सकती है। भारत के सभी धर्म के लोग, चाहे वे किसी भी जाति या पंथ को मानने वाले हों, इसका पूरा सम्मान करते हैं। यही नहीं, भाषायी और क्षेत्रीय विविधता ने भी भारतीय संस्कृति को अत्यंत समृद्ध किया है। इसे देश के किसी भी भू-भाग में आसानी से देखा जा सकता है।

11.5.5 समाज और परंपराएं

पारंपरिक समाजों में शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया ने अनेक विश्लेषकों और विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया है, और उन्होंने इसी आधार पर सामाजिक संस्थानों, संगठनों और मानवीय संबंधों में होने वाले बदलाव के प्रतिमानों का विश्लेषण किया। परंपराएं

किसी भी समाज का अभिन्न अंग होती हैं। भारतीय परंपराओं ने भारतीय समाज को विशिष्ट पहचान दी है।

11.6 स्वतंत्र भारत की चुनौतियां

पश्चात नए शासकों के सामने सबसे बड़ी चुनौती थी, देश को एक ऐसा संविधान देना, जिसमें जाति और वर्ग विहीन समाज के निर्माण की प्रतिबद्धता हो। इसके लिए वयस्क मताधिकार पर आधारित संसदीय लोकतंत्र को अपनाया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय महज 16.6 फीसदी आबादी ही साक्षर थी और 80 फीसदी आबादी गांवों में रहती थी, जहां ढंग की सड़कें और दूसरी बुनियादी सुविधाएं भी नहीं थीं। इन सबको देखते हुए यह एक क्रांतिकारी फैसला था। उस समय देश खाद्यान्न के मामले में भी आत्मनिर्भर नहीं था। आज यदि भारत आठ-नौ फीसदी विकास दर के लक्ष्य की ओर अग्रसर है, मगर यहां तक पहुंचने के लिए उसे काफी संघर्ष करना पड़ा है। सचाई यह है कि आज भी गरीबी और पिछड़ेपन से भारत पूरी तरह मुक्त नहीं हो सका है। कुछेक अपवादों को छोड़ दें तो, 1970 के दशक के बाद रोजगार की तलाश और रोजगार के नए अवसरों ने देश की सामाजिक संरचना में बड़ा बदलाव लाया है। क्षेत्रीय आकांक्षाओं ने भी इसमें सकारात्मक और नकारात्मक दोनों किस्म का योगदान किया है। वर्ष 2000 में उत्तराखंड, छत्तीसगढ़ और झारखंड राज्यों की स्थापना के पीछे इन क्षेत्रों का पिछड़ापन, उपेक्षा तो थे ही, मगर कहीं न कहीं इसके पीछे क्षेत्रीय आकांक्षाएं भी थीं।

संविधान में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के लोगों को शिक्षा से जोड़ने और उन्हें सरकारी नौकरी का अवसर देने के लिए आरक्षण की व्यवस्था पहले से की गई थी। इसके साथ ही अन्य पिछड़ा वर्ग के लोगों की पहुंच शिक्षा और रोजगार में बढ़ाने के लिए 1977 में गठित मंडल आयोग ने ओबीसी के लिए 27 फीसदी आरक्षण की सिफारिश की थी। 1990में इसे मंजूर करने के बाद एक नए तरह का आंदोलन देश में भड़क उठा था। सर्वोच्च न्यायालय ने ओबीसी को 27 फीसदी आरक्षण दिए जाने के फैसले को सही ठहराया है।

धर्मनिरपेक्षता

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विभिन्न धर्मों, संप्रदायों और उप समुदाय में बंटे भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौती थी कि अपनी एकजुटता को किस तरह अक्षुण्ण बनाए रखे। हमारे संविधान निर्मातओं ने सूझबूझ का परिचय देते हुए भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के रूप में स्वीकार किया। विकासशील देशों में भारत ही ऐसा देश है, जिसने धर्म निरपेक्षता को सरकार की नीति और कार्यक्रमों का निर्देशक तत्व माना है।

भारतीय सेक्यूलरिज्म सिर्फ बौद्धिक अवधारणा नहीं है और न ही इसकी उत्पत्ति सैद्धांतिक और वैचारिक ऊहापोह से हुई है। हमारे संविधान में स्पष्ट है कि देश का अपना कोई धर्म नहीं होगा, बल्कि यहां सभी धर्मों के लोगों को अपने धर्म को मानने की स्वतंत्रता होगी। हर धर्म के लोग एक दूसरे धर्म का सम्मान करें, जिससे सौहार्द और एकता को एक नई ऊर्जा मिल सकेगी।

11.7 भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति

समाज सामाजिक संबंधों का जाल है और समाज की स्थिरता के लिए पुरुषों और महिलाओं के संबंधों की सौहार्दता बुनियादी जरूरत है। किसी भी समाज में महिलाओं की स्थिति को उस समाज के सामाजिक संगठनों की ताकत का महत्वपूर्ण संकेतक माना जाता है। साहित्य और ऐतिहासिक साक्ष्य इस बात को स्थापित करते हैं कि वैदिक काल में महिलाओं को पुरुषों की तरह सम्मान और बराबरी का दर्जा प्राप्त था। पति व पत्नी दोनों को संपत्ति का संयुक्त रूप से अधिकार प्राप्त था। वस्तुतः प्राचीन भारत में महिलाओं की स्थिति स्वतंत्रता, बराबरी और परस्पर सम्मान और समन्वय पर आधारित थी। यहां तक कि बौद्ध काल में भी हमें ऐसी महिलाओं के बारे में पता चलता है, जिन्हें बौद्ध साहित्य और शिक्षा में उनके योगदान के लिए सम्मान प्राप्त था। अशोक की बहन संघमित्रा को बुद्ध के उपदेशों के प्रचार-प्रसार के लिए श्रीलंका भेजा गया था। लेकिन मध्य युग के आते-आते महिलाओं के सम्मान में गिरावट आई। परदा प्रथा और सती प्रथा उस दौर के पुरुषवर्चस्ववादी समाज का उदाहरण है। राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर और दयानंद सरस्वती जैसे समाज सुधारकों ने 19वीं सदी में सती प्रथा के खिलाफ जागरुकता फैलाई और महिलाओं की शिक्षा पर जोर दिया। इसी का नतीजा है कि स्वतंत्रता आंदोलन में भी महिलाओं ने बढ़चढ़कर हिस्सा लिया। महात्मा गांधी ने भी स्वंत्रता आंदोलन में महिलाओं को प्रेरित किया था। परदा प्रथा के विरोध के साथ ही महिलाओं की शिक्षा, कम उम्र की विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए आंदोलन हुए और बाल विवाह का विरोध किया गया। स्वामी विवेकानंद ने भी महिलाओं के सामाजित उत्थान के लिए अत्यंत योगदान दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे संविधान में महिलाओं को बराबरी का हक दिया। संविधान ने लैंगिक समानता को मौलिक अधिकार माना है। आज स्थिति यह है कि अनेक राज्यों में पंचायतों में महिलाओं के लिए पचास फीसदी तक पद आरक्षित हैं। हालांकि संसद और विधानसभा में उन्हें अब तक एक तिहाई आरक्षण नहीं मिल सकता है।

11.8 सारांश

इस इकाई में हमने संक्षेप में भारत में सामाजिक-सांस्कृतिक विकास को समझने की कोशिश की। हमने देखा कि भारतीय समाज की बहुलता और वसुधैव कुटंबकम की भावना ने भारतीय संस्कृति को समृद्ध किया है। भाषायी, जातीय और क्षेत्रीय भिन्नताओं के बावजूद भारत की एकता न केवल अक्षुण्ण बना हुई है, बल्कि इसी विविधता ने उसे विशिष्टता भी प्रदान की है। हमने भारतीय समाज की बुनावट और उसकी विशेषताओं को जानने के साथ ही देखा कि किस तरह यह समाज रूढ़ियों से जकड़ा रहा है। स्वंत्रता से पहले और उसके बाद देश के सामने किस तरह की सामाजिक चुनौतियां थीं। सामाजिक आंदोलन स्वतंत्रता आंदोलन का महत्वपूर्ण अंग था। इसके पीछे सबसे बड़ा कारण यह था कि हमारे राष्ट्रीय नेता यह अच्छी तरह जानते थे कि सामाजिक चुनौतियों से निपटे बिना स्वंत्रता का कोई अर्थ नहीं। उन्होंने एक ऐसे राष्ट्र की कल्पना की थी, जिसमें जाति, धर्म, पंथ, अमीर-गरीब या लिंग के आधार पर कोई भेदभाव न हो। उनकी यही भावना हमारे संविधान में परिलक्षित होती है। संविधान में पिछड़े, उपेक्षित, दलित और आदिवासियों के साथ ही महिलाओं का विशेष ध्यान रखा गया। यह अलग बात है कि संविधान की मूल भावना के विपरीत राजनीतिक हितों के लिए इन मसलों का दुरुपयोग किया जाता है।

11.9 शब्दावली

समाज- विभिन्न क्षेत्रीय, सामाजिक और आर्थिक समूह अपनी भिन्न सांस्कृतिक परंपरा और विरासत के साथ समाज का निर्माण करते हैं।

जाति- जाति निःसंदेह एक अखिल भारतीय अवधारणा है, जिसमें विभिन्न जातीय समूह खास तरह का अनुक्रम बनाते हैं, और प्रत्येक समूह का एक या एक से अधिक पारंपरिक पेशा रहा है।

11.10 संदर्भ ग्रंथ

1. सोशल चेंज इन मॉर्डन इंडिया, एमएन श्रीनिवास, ओरिएंट ब्लैक स्वान प्राइ लिमिटेड, नई दिल्ली
2. ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया, रोमिला थापर, पेंग्विन बुक्स
3. परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम, पूरनचंद्र जोशी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

11.11 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. धर्म निरपेक्षता पर टिप्पणी लिखिए।

2. जजमानी व्यवस्था क्या होती है, संक्षेप में समझाएं।

3. स्वतंत्र भारत से पूर्व के दो प्रमुख समाज सुधारकों के नाम और उनके योगदान के बारे में बताएं।

4. वसुधैव कुटंबकम से क्या आशय है।

11.12 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय समाज की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

2. भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति पर निबंध लिखिए।

3. जातियां जोड़ने नहीं, तोड़ने का काम करती हैं। विश्लेषण कीजिए।

4. विकास और रोजगार ने भारतीय समाज को किस तरह प्रभावित किया है? विश्लेषण कीजिए।

5. आज की सामाजिक समस्याएं राजनीति से उपजी हैं। यदि हां, तो विश्लेषण कीजिए।

इकाई-12

भारतीय समाज और मीडिया

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 भारत में संचार
12.3 भारतीय समाज और संचार
12.4 भारतीय समाज में मीडिया का प्रभाव
12.5 लोकतंत्र में मास मीडिया
12.6 सारांश
12.7 शब्दावली
12.8 संदर्भ ग्रंथ
12.9 अभ्यास प्रश्न

12.0 उद्देश्य

इस अध्याय में हम जन संचार और भारतीय समाज के अंतरसंबंधों के बारे में जानेंगे। हम इस अध्याय में निम्न बिंदुओं के बारे में जानने का प्रयास करेंगेः

1. भारत में पत्रकारिता अपने विकास के क्रम में किस तरह मिशन से उद्योग बन गई और इसका लोगों पर प्रभाव।
2. भारतीय संदर्भ में जन संचार का महत्व।
3. भारतीय समाज की सचाइयों को सामने लाने में फिल्मों की भूमिका और समाज पर फिल्मों का प्रभाव।
4. भारतीय समाज पर रेडियो और टेलीविजन का प्रभाव।

5. जन संचार के अत्याधुनिक साधन और उनका भारतीय समाज पर प्रभाव।
6. सांस्कृतिक अपसरण में जन संचार की भूमिका।

12.1 प्रस्तावना

हम जानते हैं कि सूचनाओं, विचारों और व्यवहार का अदान- प्रदान ही संचार है। किसी भी संदेश को दर्शकों, श्रोताओं और पाठकों के व्यापक वर्ग तक पहुंचने के अनेक साधन हैं। किसी भी समाज में जन संचार सूचना के प्रसार का महत्वपूर्ण जरिया हैं। यह सूचना, शिक्षा, मनोरंजन, सांस्कृतिक विकास और सामाजिक एकता को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

हम पिछले अध्याय में भारतीय समाज के उद्भव और विकास के साथ ही उसकी चुनौतियों के बारे में पढ़ चुके हैं। इस अध्याय में हम देखेंगे कि मास मीडिया या जन संचार ने किस तरह भारतीय समाज को प्रभावित किया है, समाज के विकास में उसकी कैसी भूमिका है और उसकी वजह से समाज में किस तरह की नई चुनौतियां सामने आ रही हैं। वास्तव में नई प्रौद्योगिकी ने संचार को पूरी तरह बदलकर रख दिया है, इसका नतीजा है कि दुनिया आज एक गांव में तब्दील हो गई है। दरअसल, ग्लोबलाइजेशन या वैश्वीकरण की अवधारणा को मास मीडिया ने ही अधिक विस्तार दिया है। प्राचीन भारत में मौखिक संदेशों के जरिये संचार होता था। धार्मिक स्थल, शैक्षणिक केंद्र और चौपाल आदि संचार के प्रमुख केंद्र हुआ करते थे। भारत में संचार के आधुनिक साधनों का विकास 18 वीं सदी के अंत में प्रारंभ हुआ जब देश से समाचार पत्रों का प्रकाशन शुरू हुआ था। आज भारतीय प्रेस 30,000 से अधिक समाचारपत्रों के प्रकाशनों के साथ दुनिया के सबसे बड़े केंद्रों में से है। भारत में रेडियो की शुरुआत 1924 में हुई थी। ऑल इंडिया रेडियो (एआइआर) की स्थापना 1936 में की गई थी। भारत में टेलीविजन की शुरुआत 1959 में दूरदर्शन की स्थापना के साथ हुआ। आज पूरे देश में सेटेलाइट और केबल नेटवर्क के जरिये टीवी का जाल बिछ गया है। मगर आज इंटरनेट जन संचार का एक सशक्त माध्यम है। जनसंचार माध्यमों के विस्तार के सामाजिक पहलू के साथ ही इनका एक आर्थिक पहलू भी है। यही कारण है कि इनके संचालन में विज्ञापनों की अहम भूमिका हो गई है। ये दोनों मानो एक-दूसरे के पूरक हो गए हैं।

जनसंचार माध्यम सामाजिक परिवर्तन में किस तरह की भूमिकाएं निभाते हैं इसे हम संचार के दो मॉडल से समझ सकते हैं। संचार के ये दो मुख्य मॉडल हैं- 1. पहला मॉडल इस पर आधारित है कि अभिग्राही (Receiver) जो चीजें ग्रहण करता है, उसे वह कितना आत्मसात कर पाता है। अर्थात उसके आधार पर

उसके व्यक्तित्व और व्यवहार में कितना बदलाव आता है। 2. दूसरा मॉडल इस पर आधारित है कि संचारक (Communicator) अभिग्राही को किस तरह और कितना प्रभावित करता है। इस मॉडल में संचारक और अभिग्राही सूचनाओं का अदान-प्रदान करते हैं और दोतरफा संबंध स्थापित करते हैं।

12.2 भारत में संचार

आज हम संचार को जिस रूप में जानते हैं, उसका जन्म और विकास पश्चिम खासतौर से अमेरिका में हुआ है। प्रौद्योगिकी के विकास के साथ ही संचार के नए साधनों का भी विकास हुआ। संचार के नए साधनों ने संचार को सुगम बना दिया है। अब इंटरनेट और मोबाइल फोन के जरिये दुनिया के किन्हीं भी दो हिस्सों में पल भर में संपर्क स्थापित किया जा सकता है। इसके अलावा टेलीविजन और रेडियो दुनियाभर में खबरें और सूचनाएं प्रसारित करते ही हैं। लेकिन यह भी सच है कि संचार की अवधारणा नई नहीं है। इसका संबंध मनुष्य के अस्तित्व में आने के समय से है। जहां तक भारतीय संदर्भ की बात है, तो उपनिषद, गीता, नाट्य शास्त्र जैसे ग्रंथों के साथ ही संस्कृत साहित्य, भक्तिकाल की रचनाएं, संतों और सूफियों के विचार और उनकी रचनाएं और विचार संचार के महत्वपूर्ण साधन रहे हैं और आज भी यह विचारों और सिद्धांतों को प्रसारित करने का काम कर रहे हैं। छापाखानों के अविष्कार से पहले भी विचारों और शब्दों को संरक्षित रखने का तरीका मनुष्य ने ईजाद कर लिया था। ताड़ के पत्तों और शिलालेखों में दर्ज बातें संचार के प्राचीनतम साधन कहे जा सकते हैं।

12.2.1 संचार और भारतीय दर्शन

कुछ विद्वानों का मानना है कि भारतीय परंपरा में संचार पर शायद ही कोई विचार उपलब्ध है। जो लोग ऐसा कहते हैं उन्हें भारतीय संस्कृति और परंपरा का पर्याप्त ज्ञान नहीं है। असल में यह धारणा इसलिए बनी, क्योंकि संचार शब्द के प्रयोग का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। संभवतः इसलिए प्राचीन भारतीय साहित्य में इस विषय पर अलग से कुछ नहीं मिलता, लेकिन संचार की प्रक्रिया के बारे में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। जैसा कि हम सब जानते हैं संचार निर्वात या शून्य में नहीं हो सकता। संचार हमारे सामाजिक-राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न हिस्सा है। हम देख सकते हैं कि संचार के ये मूल्य आज भी महत्वपूर्ण हैं, इससे हमारे अनेकता में एकता के ताने-बाने को मजबूती ही मिली है। यदि देश के सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों को छेड़ा गया, तो यह ताना-बाना बिखर सकता है। यही भारतीय दर्शन का सार भी है।

12.2.2 जाति व्यवस्था का संचार पर प्रभाव

जाति व्यवस्था ने विशेष रूप से ग्रामीण भारत में संचार के स्वरूपों (Patterns) को प्रभावित किया है। ग्रामीण समुदाय में गहरे तक पैठी जाति व्यवस्था की वर्गीकरण और पदानुक्रम की प्रवृत्तियों के कारण एक ही जाति या वर्ग के लोगों के बीच कहीं अधिक संचार होता है। ग्रामीण क्षेत्रों की अनेक समस्याएं भी इसी जाति व्यवस्था के कारण उपजी हैं, जिसमें संचार की महत्वपूर्ण भूमिका है। हालांकि यह स्थिति अब बदल रही है। इसमें लोकतांत्रिक संस्थाओं के विकास का योगदान है। इसके साथ ही टीवी रेडियो, समाचार पत्र के साथ ही इंटरनेट और मोबाइल फोन जैसे जन संचार के आधुनिक साधनों ने जाति व्यवस्था को तोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

12.3 भारतीय समाज और संचार

भारतीय समाज को प्रायः एकता में अनेकता का प्रतिरूप कहा जाता है। इसके अलावा इसके गांवों को स्वतंत्र गणराज्य भी कहा जाता रहा है। प्राचीन भारत में उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में अनेक संस्कृतियों का विकास हुआ। ये संस्कृतियां एक दूसरे से स्वतंत्र थीं और इन्होंने एक दूसरे को प्रेरित और प्रभावित भी किया। उस समय स्थापित मौखिक परंपरा से इनका विस्तार हुआ। घुम्मकड़ संतों और सूफियों ने संदेशों को प्रसारित किया। उन्होंने रामायण और महाभारत के साथ ही अन्य धर्म ग्रंथों के संदेशों का प्रचार किया और उनमें दी गई बातों की तत्कालीन समाज की सच्चाइयों के अनुरूप व्याख्या की। सामुदायिक स्तर पर भी समाज के विभिन्न वर्गों को संचार ने आपस से जोड़ा।

12.3.1 जनसंचार के आधुनिक साधनों का उद्भव

भारत में शुरुआती स्तर पर प्रिंट मीडिया जन संचार का साधन था। उसके बाद रेडियो और फिर टेलीविजन के आगमन से जन संचार का तरीका बदल गया। इंटरनेट और मोबाइल फोनों ने जन संचार को सहज और सुलभ बना दिया है। सही मायने में जन संचार के इन अत्याधुनिक साधनों ने समाज में क्रांतिकारी बदलाव ला दिया है।

12.4 भारतीय समाज में मीडिया का प्रभाव

जन संचार ने किसी भी दूसरे समाज की तरह भारतीय समाज में गहरा असर डाला है। इसके सकारात्मक और नकारात्मक दोनों असर हुए हैं। इसने सामाजिक आर्थिक उत्थान में मदद की है, तो इसकी वजह से कुछ सामाजिक विकृतियां भी पनपी हैं। जन संचार का पारिवारिक और सामाजिक रिश्तों पर भी असर पड़ा है। समकालीन भारत में हम जन संचार माध्यमों का प्रभाव भारत के स्वंतत्रता आंदोलन से लेकर आज तक देख सकते हैं। भारत का स्वंत्रता का आंदोलन एक व्यापक सामाजिक आंदोलन भी था, जिसमें समाज के हर तबके ने हिस्से लिया था। स्वंतत्रता प्राप्ति के बाद एक नए भारत के निर्माण में भी जन संचार ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उदाहरण के लिए यदि स्वंत्रता प्राप्ति के समय भारत में औसत उम्र 40 वर्ष, साक्षरता की दर 12 फीसदी थी और आज यह बढ़कर क्रमशः 68 वर्ष और 75 फीसदी से अधिक है, तो इसमें जन संचार की भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता। जन संचार सामाजिक ताने-बाने को सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही तरह से प्रभावित कर रहा है।

प्रिंट मीडिया

औपनिवेशिक भारत में कलकत्ता, मद्रास और उसके बाद बॉम्बे प्रिंट मीडिया के प्रमुख केंद्र थे। इन केंद्रों से निकलने वाले समाचार पत्रों ने स्वंतत्रता आंदोलन को आगे बढ़ाया। राष्ट्रीय आंदोलन के आगे बढ़ने के साथ ही दिल्ली, लाहौर, लखनऊ और कानपुर जैसे केंद्रों से भी अखबारों और पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ। जलियांवाला बाग नरसंहार, गांधी जी का असहयोग आंदोलन, और नागरिक अवज्ञा आंदोलन प्रेस की वजह से ही पूरे देश को उद्वेलित कर सके और जोड़ सके। इसी तरह गांधी-इरविन समझौता और गवर्मेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935 को उस वक्त के अखबारों ने अपनी सुर्खियां बनाई थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रिंट मीडिया की भूमिका भी बदल गई। स्वंत्रता आंदोलन में मीडिया जहां मिशन की तरह काम कर रहा था, स्वंतत्रता प्राप्ति के बाद इसने एक व्यवसाय का रूप ले लिया। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि समाचार पत्रों या पत्रिकाओं ने अपने सामाजिक सरोकारों से नाता तोड़ लिया। भाषायी पत्रकारिता के विकास से सामाजिक परिवर्तन को भी गति मिली है। समाचार पत्रों ने सामाजिक विसंगतियों को सामने लाया है और समाज के विभिन्न तबकों और सरकार के बीच सेतू का काम किया है। इससे सामाजिक चिंतन और दर्शन दोनों प्रभावित हुए हैं।

हिंदी भाषी क्षेत्रों की ही बात करें, तो हिंदी प्रदेशों में इस बदलाव में अमर उजाला, दैनिक जागरण, दैनिक भास्कर, आज, प्रभात खबर, जैसे अखबार अपने क्षेत्रीय और जिला स्तर के संस्करणों के जरिये बड़ी भूमिका निभा रहे हैं। समाचार पत्र और पत्रिकाओं में दी जाने वाली खबरों और अन्य सामग्रियों में समाज की विसंगतियां देखी जा सकती हैं। पत्र और पत्रिकाएं सिर्फ सूचना प्रदान करने का माध्यम नहीं हैं, बल्कि यह सामाजिक संरचना, जीवनशैली, खानपान, पहनावा और सोच को भी प्रभावित कर रहे हैं। इसके अलावा सरकारी योजनाओं को लोगों तक पहुंचाने का माध्यम भी हैं समाचार पत्र और पत्रिकाएं। 1980 के दशक के बाद भारतीय समाचार पत्रों में स्वरूप और सामग्री के स्तर पर काफी बदलाव आया है। वरना एक समय था, जब प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के बयान ही अखबारों की सुर्खियां बन जाते थे। मगर अब व्यापक सामाजिक सरोकारों वाली खबरों को प्रमुखता दी जाती है। इसमें सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह की खबरें होती हैं।

रेडियो

टेलीविजन के आगमन से पूर्व रेडियो भारत में सूचनाओं और समाचार प्राप्त करने का बड़ा माध्यम थे। सरकारी नियंत्रण में होने के बावजूद रेडियो ने आकाशवाणी के जरिये भारतीय समाज में क्रांतिकारी बदलाव लाया है। आज स्वायत्त संस्था प्रसार भारती प्रसारण के अधीन काम करते हुए आकाशवाणी से 24 भाषाओं और 146 बोलियों में रेडियो से कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। इनमें सामाजिक विषयों से लेकर खेती किसानी और सांस्कृतिक कार्यक्रमों तक का प्रसारण किया जाता है। इसके अलावा बीबीसी, जर्मन रेडियो, वाइस ऑफ अमेरिका जैसे विदेशी प्रसारणों ने भी भारतीय समाज का परिचय बाहरी समाज से कराया है। वास्तव में रेडियो जन संचार का सबसे सस्ता और सबसे सुलभ माध्यम है। भारत में एफएम प्रसारण की अनुमति मिलने के बाद रेडियो को नया जीवन मिला है, हालांकि एफएम चैनलों के जरिये अभी समाचारों के प्रसारण की अनुमति नहीं है। मगर सामुदायिक रेडियो के जरिये विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में एक बड़ा बदलाव आया है, जहां शिक्षा और सामाजिक जागरुकता फैलाने के साथ ही अंधविश्वास के खिलाफ अभियान भी छेड़ा गया है। सामुदायिक रेडियो खेती-किसानी संबंधी जानकारियों के प्रसारण का भी जरिया हैं।

फिल्म

फिल्में जन संचार का एक सशक्त माध्यम हैं। भारत में पहली बार 7 जुलाई, 1896 को वाट्सन होटल मुंबई में फिल्म दिखाई गई थी। सिनेमेटोग्राफर ल्यूमरे भाइयों ने इसे अंजाम दिया था। चुनींदा दर्शकों को वहां द सी बाथ, अराइवल ऑफ ए ट्रेन, और लेडिज ऑन द व्हील जैसी लघु फिल्में दिखाई गई थीं। लेकिन पहली भारतीय फिल्म 1913 में ही तैयार हो सकी, जब दादा साहब फाल्के ने राजा हरिश्चंद्र बनाई थी। चार रील यानी 37,00 फीट लंबी यह मूक फिल्म थी। इस तरह हम देख सकते हैं कि भारत में सिनेमा के अब सौ वर्ष पूरे हो रहे हैं। फिल्में सामाजिक विसंगतियों, बुराइयों और अच्छाइयों को परदे पर उतार ही नहीं रही हैं, समाज को नई दिशा भी दे रही हैं। सच पूछा जाए तो फिल्में और समाज आज एक दूसरे के पूरक हो गए हैं। बेशक, फिल्में भारत में मनोरंजन का सबसे बड़ा माध्यम हैं, लेकिन फिल्मों की वजह से सामाजिक संस्कार भी बदले हैं। फिल्मों में समाज की सकरात्मक और नकारात्मक दोनों प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं। फिल्मों की लोकप्रियता का यह हाल है कि भारतीय फिल्म उद्योग दुनिया के विशालतम फिल्म उद्योग में गिना जाता है। हिंदी, बांग्ला, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम, असमिया, उडिया, सहित अन्य भारतीय भाषाओं में हर साल हजारों फिल्में बनाई जाती हैं। इनमें सिर्फ मनोरंजन को ही केंद्र में नहीं रखा जाता, बल्कि सामाजिक और पारिवारिक मसलों को भी सामने लाने के प्रयास किए जाते हैं।

उपग्रह संचार और टेलीविजन

भारत में आज जितने टेलीविजन चैनलों के जरिये प्रसारण हो रहा है, उसे देखकर यह अंदाजा लगाना मुश्किल है कि एक समय ऐसा भी था, जब यह बहस छिड़ी थी कि क्या भारत जैसा गरीब देश टेलीविजन जैसे माध्यम का संचालन कर सकता है। भारत में 15 सितंबर, 1959 को पहली बार टेलीविजन पर कार्यक्रम प्रसारित किया गया था। यह सरकारी प्रसारण था, मगर पिछले पांच-छह दशकों में टेलीविजन और सैटेलाइट से होने वाले प्रसारण के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। 26, जनवरी, 1967 को दूरदर्शन से पहली बार ग्रामीणों के लिए कृषि दर्शन कार्यक्रम का प्रसारण शुरू किया गया था। शुरुआत में दूरदर्शन से एक से दो घंटे के कार्यक्रम ही प्रसारित किए जाते थे। मगर आज चौबीसों घंटे टीवी चैनलों से प्रसारण हो रहा है। जनसंचार के क्षेत्र में टेलीविजन ने सचमुच क्रांति ला दी है। अब टेलीविजन न तो सरकारी भोंपू है और न ही नब्बे के दशक का इडियट बॉक्स। टेलीविजन सामाजिक परिवर्तन में एक बड़ी भूमिका निभा रहा है। हालांकि इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि गला काट प्रतिस्पर्धा ने टेलीविजन चैनलों की गुणवत्ता को प्रभावित किया है। दूसरा पहलू यह भी है कि उपग्रह से होने वाले प्रसारणों के कारण दर्शकों के पास आज विकल्पों की कमी नहीं है।

इंटरनेट

इंटरनेट ने जन संचार की परिभाषा ही बदल दी है। इसके जरिये दुनिया के सुदूर छोरों पर बैठे लोग एक दूसरे से संवाद कर सकते हैं और सूचनाओं का पलभर में अदान-प्रदान कर सकते हैं। सही मायने में इंटरनेट को दुनिया को कंप्यूटर और मोबाइल फोन में कैद कर दिया है। भारत में 14 अगस्त, 1995 को पहली बार वीएसएनएल ने छह शहरों में इंटरनेट की शुरुआत की थी। इन 17-18 वर्षों में इंटरनेट का इतना विस्तार हो चुका है कि इसने एक नया सामाजिक विन्यास रच दिया है। इसके जरिये अब शादियां तक तय हो रही हैं।

संस्कृति के विसरण में मास मीडिया की भूमिका

विसरण (diffusion) के जरिये हम सांस्कृतिक विशेषताओं के दूसरे समाजों और क्षेत्रों में विस्तार को समझ सकते हैं। संचार माध्यमों ने खानपान, पहनावा, व्यवहार और सांस्कृतिक मूल्यों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाया है। इसी का नतीजा है कि अब उत्तर भारत के व्यंजन दक्षिण भारत में और वहां के व्यंजन उत्तर भारत में भी आम हो गए हैं। सिनेमा और टेलीविजन ने इस cultural diffusion में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पिछले सदी के अंतिम दशकों ने रामायण और महाभारत जैसी पौराणिक कृतियों को घर-घर तक पहुंचाने का काम किया था, और इसमें जाति या समुदाय का कोई भेद नहीं था। सिनेमा, रेडियो और टेलीविजन जैसे मास मीडिया के साधनों के कारण न केवल हिंदी की स्वीकार्यता बढ़ी है, बल्कि इसने हिंदी को बाजार से भी जोड़ दिया है। इसका एक नतीजा यह हुआ कि गैर हिंदीभाषी क्षेत्रों में भी हिंदी बोली और पढ़ी जा रही है और हिंदी फिल्में और कार्यक्रम देखे-सुने जा रहे हैं।

भारतीय समाज में मीडिया के नकारात्मक प्रभाव

आज हम भले ही 21 वीं सदी में रह रहे है, लेकिन अंधविश्वास से हमारा नाता खत्म नहीं हुआ है। इसे बढ़ाने में जन संचार माध्यमों का बड़ा योगदान है। कई बार जन संचार के माध्यम चाहे वह समाचार पत्र हों, टेलीविजन चैनल हों या रेडियो किसी घटना की वैज्ञानिक पड़ताल किए बिना ही उसे बढ़ाचढ़ा कर पेश करते हैं। कुछ वर्ष पूर्व पूरे देश में गणेश भगवान के दूध पीने की घटना या फिर दिल्ली में मंकी मैन के आतंक की अफवाह ऐसी ही घटनाएं थीं, जिनमें तथ्यों की पड़ताल किए बिना जन संचार माध्यमों ने लापरवाही के साथ खबरें प्रसारित और प्रकाशित की थीं। हम जब टीवी पर कोई धारावाहिक या कोई अन्य कार्यक्रम देखते हैं या थियेटर में कोई फिल्म देखते हैं, तब बहुत-सी तस्वीरें हमारे जेहन में देर तक

बनी रहती हैं। इनमें हिंसा से संबंधित तस्वीरें भी होती हैं। ऐसे कार्यक्रम या तस्वीरें विशेषरूप से बच्चों के मानसिक विकास में बाधक बन जाते हैं। अपराध की कुछेक घटनाओं में किसी फिल्म विशेष की कहानी से प्रभावित होकर अपराध को अंजाम देने की बातें भी सामने आई हैं। एक अध्ययन के मुताबिक सालभर में एक बच्चा तकरीबन 40,000 विज्ञापन देख डालता है।

जन संचार माध्यमों ने सामाजिक संरचना को भी प्रभावित किया है, जिसका असर पारिवारिक जीवन पर भी पड़ रहा है। चैनलों और धारावाहिकों में दिखाए जाने वाले पात्रों और उसके कंटेंट से दर्शक अपने को जोड़ने लगते हैं। और उसी का अनुसरण भी करने लगते हैं।

12.5 लोकतंत्र में मास मीडिया

समाचार पत्र, रेडियो और टेलीविजन जैसे जनसंचार के माध्यम सरकार और जनता के बीच सेतू का काम करते हैं। उदाहरण के लिए यदि सरकार पेट्रोल या रसोई गैस के दाम बढ़ाने या घटाने का फैसला करती है, तो इसकी जानकारी आम जनता तक जनसंचार माध्यमों के जरिये ही पहुंचती है। मीडिया न केवल लोगों तक सूचनाएं पहुंचाता है, बल्कि वह उन्हें जागरुक भी करता है।

मीडिया लोगो के सामान्य व्यवहार, उनकी आदतें और उनके दृष्टिकोण में बदलाव लाने का काम करता है। मीडिया गलत धारणाओं को बदलने का काम भी करता है। उदाहरण के लिए कुष्ठ रोग और एचआईवी तथा एड्स जैसी बीमारियों के बारे में बहुत सी भ्रांतियां फैली हुई है, जिन्हें जनसंचार माध्यमों के जरिये दूर करने का प्रयास किया जाता है। विज्ञापनों, नाटकों और लघु फिल्मों तथा लेखों के माध्यम से इन बीमारियों के संबंध में जागरुकता फैलाई जा रही है। सबसे ताजा उदाहरण पोलियो की बीमारी से संबंधित है। बीते एक साल से देश में यदि पोलियो प्रभावित एक भी मामला सामने नहीं आया है, तो इसके पीछे जनसंचार माध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका है। भारत में पोलियो का आखिरी मामला 13, जनवरी 2011 को पश्चिम बंगाल में सामने आया था, जब वहां एक बच्चा इसके वायरस से ग्रस्त पाया गया था। उसके बाद से पूरे देश में एक भी नया मामला सामने नहीं आया है। पोलियो को खत्म करने में पूरे देश में चलाए जा रहे पल्स पोलियो अभियान की महत्वपूर्ण भूमिका है, जिसे जन संचार माध्यमों के जरिये ही सार्थक किया जा सका है।

मीडिया ने जनमत को भी जगाने का काम किया है। हाल के समय भ्रष्टाचार के खिलाफ जो माहौल बना है, उसमें मीडिया ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विशेषरूप से गांधीवादी सामाजिक कार्यकर्ता अन्ना हजारे के आंदोलन को पूरे देश भर में जो समर्थन मिला, उसमें मीडिया की भूमिका को नजरंदाज नहीं किया जा सकता। यह घटना इस बात का उदाहरण है कि जन संचार माध्यम में किस तरह किसी विषय पर नए दृष्टिकोण का निर्माण करते हैं।

12.6 सारांश

इस इकाई में हमने संचार की भारतीय अवधारणा को समझने की कोशिश की। भारतीय दर्शन में संचार का इतिहास अत्यंत पुराना है। प्रौद्योगिकी के विस्तार से जन संचार का तरीका भी बदलता चला गया। भारत में जन संचार की आधुनिक अवधारणा प्रिंट मीडिया के आगमन से देखी जा सकती है। इसके बाद रेडियो, टेलीविजन और अब इंटरनेट तथा मोबाइल फोन ने जन संचार के क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव ला दिया है। भारतीय समाज और जन संचार के अटूट संबंधों को हमने समझने की कोशिश की। हमने देखा कि जन संचार के अत्याधुनिक साधनों का समाज पर कैसा असर पड़ रहा है, और इस पर भी विचार किया कि इससे भारतीय संचार व्यवस्था किस तरह प्रभावित हो रही है। भारतीय संचार की जड़ें प्राचीन ग्रंथों और वेदों में हैं। हमने समझने की कोशिश की कि कैसे संचार ने भारतीय मूल्यों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके अलावा समग्रता में देखें तो लोकतंत्र में मीडिया की भूमिका को भी रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

12.7 शब्दावली

संचार - सूचनाओं, विचारों और व्यवहार का आपस में आदान- प्रदान ही संचार है।

संस्कृति - किसी जाति के धर्म, साहित्य, रीति-रिवाज और आदर्श के समुच्चय का नाम संस्कृति है।

12.8 संदर्भ ग्रंथ

1. मास मीडिया टुडे, इन द इंडियन कॉटेंक्ट, सुबीर घोष, प्रोफाइल पब्लिशर, कोलकाता
2. इंडियन थ्योरी ऑफ मास कम्युनिकेशन, आई पी तिवारी, आईआईएमसी, नई दिल्ली

3. भारतीय समाज, श्यामाचरण दुबे, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली
4. Media and the Third World, Dr. Mankakar.

12.9 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. प्रसार भारती क्या है, संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
2. अंधविश्वास को रोकने में जनसंचार माध्यमों की कैसी भूमिका हो सकती है।
3. इंटरनेट के सामाजिक प्रभावों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

दीर्घ स्तरीय प्रश्न:

1. जाति व्यवस्था को जनसंचार ने किस तरह प्रभावित किया है, समझाइये?
2. जनसंचार ने सामाजिक क्रांति ला दी है, क्या आप इस वक्तव्य से सहमत है। समझाइये
3. संस्कृतियों के विसरण में जनसंचार की भूमिका को रेखांकित कीजिए।
4. टीवी चैनल भारतीय समाज को कितना प्रभावित कर रहे हैं।

इकाई-13

मानवाधिकार एवं मीडिया

ईकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 मानवाधिकार क्या है

13.4 मानवाधिकार और मीडिया

13.5 सारांश

13.6 अभ्यास प्रश्न

13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.8 शब्दावली

13.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

13.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

13.11 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

ज्यों-ज्यों मानव तरक्की कर रहा है, मानव अधिकार भी जरूरी हो रहे हैं. मानव के विकास में मानवाधिकारों की भूमिका महत्वपूर्ण है। आज के मीडिया के लिए मानवाधिकारों को गंभीरता से लेना आवश्यक हो गया है.

●इस इकाई में मानवाधिकार के बारे में छात्रों को जानकारी दी गई है। छात्रों को समझाने की कोशिश की गई है कि मानवाधिकार किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास व समाज में उसे बनाये रखने में कितने महत्वपूर्ण हैं।

●मानवाधिकार और मीडिया का सम्बन्ध तथा मानवाधिकारों के प्रति समाज और व्यक्ति को सजग करने में मीडिया की क्या भूमिका होती है, इकाई में इसकी पूरी जानकारी दी गई है।

13.2 उद्देश्य

हम अच्छी तरह से जानते हैं कि समाज में संवाद कायम करने तथा हमे अपने अधिकारों के प्रति सजग करने में मीडिया की कितनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मीडिया की इस भूमिका का जिक्र इस इकाई में किया गया है।

इस इकाई से आप जान सकेंगे कि-

●मीडिया किस तरह किसी व्यक्ति को उसके अधिकारों के उपयोग के लिए प्रेरित करता है।

●मानवाधिकारों के प्रति पाठक जागरूक हों, इसलिए इनका अध्ययन जरूरी है. छात्रों में इनके प्रति संवेदनशीलता जागे और यह पता चले कि इसमें इलेक्ट्रॉनिक तथा प्रिंट मीडिया की क्या भूमिका हो सकती है।

13.3 मानवाधिकार क्या है

मानव जीवन की उत्पत्ति के साथ ही मानवाधिकार की अवधारणा अस्तित्व में आ गई थी। मानवधिकार वे अधिकार हैं जो मानव एवं उसके व्यक्तित्व के विकास के लिये अनिवार्य हैं। मूलतः यह व्यक्ति की गरिमा से संबधित हैं। व्यक्ति का मान उसके मानव होने के कारण सभी के बराबबर है, वह चाहे किसी भी राष्ट्र, धर्म, लिंग, जाति, उम्र से संबधित हो। इसका मूल आधार है, हर व्यक्ति की अपनी एक गरिमा होती है. यही सभ्य समाज की पहचान है। यह तथ्य है कि मानव समाज में कई स्तरों पर विषमताएं मौजूद हैं चाहे वह भाषा, वर्ण या लिंग के आधार पर हो, इनके बावजूद सभी समाजों में व्यक्ति को कुछ मूलभूत अधिकार भी प्राप्त हैं. यही अधिकार मानवाधिकार है जो एक व्यक्ति को मानव होने के कारण मिलना चाहिए। - जेसी जौहरी

मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव होने के कारण प्राप्त हैं।

आरजे विसेट के अनुसार- मानवाधिकार संसार के समस्त व्यक्तियों को प्राप्त हैं क्योंकि यह स्वयं में जन्मजात हैं, वे बाद में नहीं दिए जा सकते, वे खरीद या संविदावादी प्रक्रिया से मुक्त होते हैं।

डेविड सेलबाई के अनुसार, मानवाधिकार वे अधिकार हैं, जो मनुष्य के जीवन, उसके अस्तित्व एवं व्यक्तित्व के विकास के लिये अनिवार्य हैं।

प्लानो एवं ओल्टान ने कहा, वस्तुतः मानवाधिकारों की सभी परिभाषाएं मानवीय गरिमा व उसके व्यक्तित्व से संबन्धित हैं और मानव व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास के लिये ये नितांत आवश्यक हैं, जिससे वह समाज में अपने आप को बनाये रखे।

डॉ. मुकुल श्रीवास्तव के अनुसार, वास्तव में मानवाधिकार ऐसे मानक हैं जो सभ्यता की शुरूआत में प्राकृतिक अधिकार के रूप में जाने जाते थे तथा एक व्यक्ति व समाज के बेहतर विकास के लिये जिनकी नितांत आवश्यकता होती है। राज्य की सर्वोच्च सत्ता द्वारा ये सुरक्षित रखे जाते हैं और राज्य के न्यायालय इनका समुचित पालन सुनिश्चित करते हैं। मूलतः मानवाधिकार अत्यधिक समय तक एक सम्प्रभु राज्य के अत्याचारों से भयभीत जूरियों की अपील मात्र नहीं हैं वरन् एक प्रभावी साधन हैं। राज्य की अंतहीन शक्ति को बांधने का इस मान्यता के साथ कि न्यायालय स्वतंत्र और सक्रिय है। इस प्रकार लिखित संविधन में मानवाधिकार की गारंटी का तात्पर्य यह सुनिश्चित करना है कि राज्य की कार्यपालिका तथा विधायिका दोनों में से जो भी मूलभूत अधिकारों का उल्लंघन करते हैं, उन्हें न्यायालय द्वारा दंडित किया जाना चाहिए, क्योंकि संविधान ही मूलभूत विधि है।

मानवाधिकार का सार्वभौम घोषणापत्र

संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना के बाद उसकी आर्थिक और सामाजिक परिषद् की पहली बैठक में मानव अधिकार आयोग की स्थापना की गई। इस आयोग का काम 10 जून सन् 1948 को समाप्त हो गया और 10 दिसंबर सन् 1948 को **मानव अधिकार का सार्वभौम घोषणापत्र** संयुक्त राष्ट्र महासभा में निर्विरोध स्वीकार कर लिया गया। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने अपनी घोषणा में कहा है कि सभी देशों और सभी राष्ट्रों में प्रत्येक मनुष्य और समाज की प्रत्येक संस्था के अधिकारों और उनकी प्रतिष्ठा का सम्मान समान आधार पर किया जाएगा।

मानव अधिकार के सार्वभौम घोषणापत्र को ध्यान में रखकर सभी देशों और सभी स्थानों में सभी मनुष्यों के लिए इन अधिकारों की व्यवस्था राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय आधार पर की जाएगी। इनका प्रचार और प्रसार किया जाएगा।

भारत में मानवाधिकार

देश के विशाल आकार और विविधता, विकासशील तथा संप्रभुता संपन्न धर्म-निरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणतंत्र के रूप में इसकी प्रतिष्ठा, तथा एक भूतपूर्व औपनिवेशिक राष्ट्र के रूप में इसके इतिहास के परिणामस्वरूप **भारत में मानवाधिकारों** की परिस्थिति एक प्रकार से जटिल हो गई है. भारत का संविधान मौलिक अधिकार प्रदान करता है, जिसमें धर्म की स्वतंत्रता भी अंतर्भुक्त है. संविधान की धाराओं में बोलने की आजादी के साथ-साथ कार्यपालिका और न्यायपालिका का विभाजन तथा देश के अन्दर एवं बाहर आने-जाने की भी आजादी दी गई है.

अक्सर माना जाता है, विशेषकर मानवाधिकार संगठनों और कार्यकर्ताओं के द्वारा, कि दलित अथवा अछूत जाति के सदस्य पीड़ित हुए हैं एवं लगातार भेदभाव झेलते रहे हैं. हालांकि मानवाधिकार की समस्याएं भारत में मौजूद हैं, फिर भी इस देश को दक्षिण एशिया के दूसरे देशों की तरह आमतौर पर मानवाधिकारों को लेकर चिंता का विषय नहीं माना जाता है.

भारत में मानवाधिकारों से संबंधित घटनाएं

• 1928- सती प्रथा पर रोक राजा राममोहन राय के ब्रह्मो समाज जैसे हिन्दू सुधारवादी आंदोलनों के वर्षों प्रचार के पश्चात गवर्नर जनरल विलियम बेंटिंक ने औपचारिक रूप से सती प्रथा पर रोक लगाई.
• 1929 - बाल-विवाह निषेध अधिनियम 14 वर्ष से कम की आयु में विवाह पर रोक लगा दी गयी.
• 1947 - भारत ने ब्रिटिश राज से राजनीतिक आजादी हासिल की.
• 1950 - भारत के संविधान ने सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के साथ संप्रभुता संपन्न लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना की. नागरिक को मौलिक अधिकारों की प्राप्ति.
• 1952 - आपराधिक जनजाति अधिनियम को पूर्ववर्ती "आपराधिक जनजातियों को "अनधिसूचित के रूप में वर्गीकृत किया गया तथा परीक्षणाधीन कैदियों का अधिनियम (1952 पारित हुआ. हिन्दुओं से संबंधित परिवार के कानून में सुधार ने हिन्दू महिलाओं को अधिक अधिकार प्रदान किए.
• 1958 - सशस्त्र बल (विशेष अधिकार) अधिनियम

• 1973 - भारत का उच्चतम न्यायालय केशवानन्द भारती के मामले में यह कानून लागू करता है कि संविधान की मौलिक संरचना (कई मौलिक अधिकारों सहित संवैधानिक संशोधन के द्वारा अपरिवर्तनीय है.

• 1975- भारत में आपात काल की स्थिति-अधिकारों के व्यापक उल्लंघन की घटनाएं घटीं.

• 1978 - मेनका गांधी बनाम भारत संघ के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह कानून लागू किया कि आपात-स्थिति में भी अनुच्छेद 21 के तहत जीवन (जीने) के अधिकार को निलंबित नहीं किया जा सकता.

• 1978-जम्मू और कश्मीर जन सुरक्षा अधिनियम, 1978

• -1984 में ऑपरेशन ब्लू स्टार के बाद सिख विरोधी दंगे

• 1985-शाहबानो मामला जिसमें उच्चतम न्यायालय ने तलाकशुदा मुसलिम महिलाओं के अधिकार को मान्यता दी जिसने उच्चनतम न्यासयालय के फैसले के विरोध में चिनगारी भड़का दी। राजीव गांधी की सरकार ने मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकार का संरक्षण) अधिनियम 1986 पारित किया.

• 1989 - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम ,1989 पारित किया गया .

• 1989-वर्तमान- कश्मीरी बगावत ने कश्मीरी पंडितों का नस्ली तौर पर सफाया, हिन्दू मंदिरों को नष्ट-भ्रष्ट कर देना, हिन्दुओं और सिखों की हत्या तथा विदेशी पर्यटकों और सरकारी कार्यकर्ताओं का अपहरण देखा.

• 1992 - संविधानिक संशोधन ने स्थानीय स्व-शासन (पंचायती राज) की स्थापना तीसरे तले (दर्जे) के शासन के ग्रामीण स्तर पर की गई जिसमें महिलाओं के लिए एक-तिहाई सीट आरक्षित की गई. साथ ही साथ अनुसूचित जातियों के लिए प्रावधान किए गए.

• 1992 - हिन्दू-जनसमूह द्वारा बाबरी मस्जिद ध्वस्त कर दिया गया, परिणामस्वरूप देश भर में दंगे हुए.

• 1993 - मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना की गई.

• 2001 - उच्चतम न्यायालय ने भोजन का अधिकार लागू करने के लिए व्यापक आदेश जारी किए.

• 2002 - गुजरात में हिंसा, मुख्य रूप से मुस्लिम अल्पसंख्यक को लक्ष्य कर, कई लोगों की जाने गईं.

• 2005 - एक सशक्त सूचना का अधिकार अधिनियम पारित हुआ ताकि सार्वजनिक अधिकारियों के अधिकार क्षेत्र में संघटित सूचना तक नागरिक की पहुंच हो सके.

• 2005 - राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (एनआरईजीए) रोजगार की सार्वभौमिक गारंटी प्रदान करता है.

• 2006 - उच्चतम न्यायालय भारतीय पुलिस के अपयार्प्त मानवाधिकारों के प्रतिक्रिया स्वरूप पुलिस सुधार के आदेश जारी किए।

13.4 मानवाधिकार और मीडिया

मीडिया मानव अधिकारों की रक्षा के लिए जरूरी है। हालांकि, समाचारपत्रों में मानवाधिकारों के हनन के नाम पर सिर्फ़ पुलिस हिरासत और जेल हिरासत में होने वाली गतिविधियों तथा मौतों की ख़बरें ही प्रकाशित की जाती हैं। परंतु, सामाजिक घटनाओं को अब भी वह स्थान नहीं मिल (मानवाधिकार हनन) पा रहा है, जो उसे मिलना चाहिए। उदाहरणस्वरूप देश के समक्ष बाटला हाऊस मुठभेड़ काफी सुर्खियों में रहा। तत्कालीन मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति एस राजेंन्द्र बाबू ने कहा कि .''मीडिया केवल सामाजिक मुद्दों, गरीबी से उत्पन्न समस्याओं तथा कुपोषण से होने वाली मौतों पर ज्यादा ध्यान दे न कि मुठभेड़ों और पुलिस हिरासत में हुई मौतों को अधिक अहमियत दें। मीडिया को आज अपने अधिकारों से वंचित लोगों के अधिकारों की रक्षा के मुद्दों पर अधिक ध्यान देने की जरूरत है।'

हमें याद रखना होगा कि जनमाध्यम ही ऐसा एकमात्र माध्यम है जो समाज और सरकार के पहरूए हैं। अब से कुछ वर्ष पूर्व तक लोग मानवाधिकर शब्द से ही परिचित नहीं थे, किन्तु आज स्थिति एकदम भिन्न है। भले ही लोग इसकी पूरी अवधारणा से परिचित न हों किन्तु उन्हें कम से कम इतनी जानकारी तो अवश्य हो गयी है कि "मानवाधिकार" अब एक अछूता विषय नहीं रह गया है।

फिल्म और मानवाधिकार

फिल्म एक ऐसा जनमाध्यम है, जिसका समाज पर सीधा प्रभाव पड़ता है। भारत में बोलने वाली फिल्मों का युग 1931 ई0 में "आलम आरा" से शुरू होता है। मानवाधिकारों का सर्वाभौम घोषणा पत्र बहुत बाद में विश्वपटल पर आया। अतः यह सोचना कि मानवाधिकारों का विषय उस समय की फिल्मों में भी परिलक्षित था, गलत होगा। किन्तु हम यह नहीं कर सकते हैं कि मानवाधिकारों की घोषणा के पश्चात् ही फिल्मकारों का ध्यान इस ओर गया। यह कहना तर्कसंगत नहीं होगा। भले ही मानवाधिकार शब्द की अवधारणा को उस समय तक ठीक तरह से परिभाषित नहीं किया गया था। स्वाक् फिल्मों के युग की शुरूआत से ही ऐसे अनेक विषयों को भारतीय फिल्मकारों ने अपने कथानक का विषय बनाया जो मानवाधिकारों की अभिव्यक्ति करते थे। जैसे 1932 ई0 में बनी "चंडीदास" तथा 1936 में निर्मित 'अछूत

कन्या' क्रमशः न्यू थियेटर तथा बाम्बे टाकीज ने बनायी। उपरोक्त दोनों फिल्में अस्पृश्यता तथा छुआछूत जैसे ज्वलंत विषयों को ध्यान में रखकर बनायी गयी थीं। उल्लेखनीय है कि ये फिल्में उस दौर में बनीं थी, जबकि इन विषयों पर सार्वजनिक रूप से बहस करना स्वीकार नहीं किया जाता था।

'साहूकारी पाश', 'टाइपिस्ट गर्ल' भारतीय महाजनी या साहूकारी व्यवस्था, बाबूराव पेंटर द्वारा महाराष्ट्र फिल्म कंपनी के बैनर तले बनायी गयी थी। इस फिल्म में बड़ी निर्भीकता व ईमानदारी से भारतीय साहूकारों के क्रूर चरित्र का चित्रण किया गया था कि वे किस तरह से किसानों के खून को चूसकर अपनी तिजोरियां भर रहे थे। कृषकों की पीढ़ी दर पीढ़ी को अपने साहूकारी जाल में फंसाते जा रहे थे। फिल्म में तत्कालीन भारतवर्ष में फैली अशिक्षा को भी दर्शाया गया है कि भारतीय कृषक सिर्फ ब्याज पर ब्याज देना जानता है तथा वह हमेशा यही समझता है कि उसके दुखों का कारण पूर्व जन्म के कर्म हैं न कि साहूकारी व्यवस्था। इस फिल्म का कथानक भी कहीं न कहीं मानवाधिकारों से ही प्रेरित है।

स्वतंत्रता पश्चात् भारतीय परिप्रेक्ष्य में यदि देखा जाय तो 1950 के बाद बनी फिल्मों में मनोरंजन, सूचना, शिक्षा व विकास के मुद्दों से जुड़े तथ्यों का बखूबी प्रयोग किया गया। भारत में 1957 में महबूब खान के निर्देशन में बनी "मदर इंडिया" एक ऐसी फिल्म थी जिसे देश-विदेश में प्रशंसा मिली और इसे भारतीय फिल्मों में से पहली बार ऑस्कर पुरस्कारों के लिए चुना गया। यह फिल्म मनोरंजन व आदर्श के परिप्रेक्ष्य में एक क्रांतिकारी फिल्म थी।

पचास के दशक की शुरूआत के साथ भारतीय सिनेमा ने गुणवत्ता प्रधान फिल्मों के कई दौर देखे। सत्यजीत रे, ऋत्विक घटक आदि ऐसे निर्देशकों का उदय हुआ जिन्होंने भाषायी सिनेमा को नये आयाम दिये। 1955 में राजेन्द्र सिंह बेदी ने "गरम कोट" का निर्माण किया। कैदियों के पुनर्वास पर बनी फिल्म "दो आंखें बारह हाथ' 1957 में दर्शकों के समक्ष आयी। इस फिल्म में यह बताने की कोशिश की गयी थी कि कैदियों का पुनर्वास हो सकता है और यदि उन पर भारोसा किया जाये तो वे भी बेहतर इंसान बन सकते हैं। इसके अतिरिक्त हर अपराधी पहले इंसान होता है, वह अपराध तो परिस्थितियों के वशीभूत होकर कर बैठता है। इस फिल्म ने वास्तव में मानवाधिकारों के प्रति लोगों को जागरूक करने का कार्य किया है।

1962 में 'साहब बीबी और गुलाम' गुरूदत्त के निर्देशन में बनी, प्रकाश झा की दामुल (1984) सई-परांजये की स्पर्श (1979), कथा (1982), रूदाली (1922) प्रमुख हैं। इन फिल्मों में मानवाधिकार जागरूकता के अंकुर दिखायी पड़ते हैं। किसी फिल्म में ऊँच-नीच से जूझते दलित की

कहानी हो या भ्रष्टाचार, सामंशाही प्रवृत्ति से जूझता एक आम आदमी, किन्तु गौर करने लायक एक महत्वपूर्ण बात यह है कि भारतीय फिल्मों में सामान्य तौर पर दो विचारधाराएं हैं। पहला मसाला या लोकप्रिय सिनेमा और दूसरा समानान्तर सिनेमा। मानवाधिकारों के विषयों से संबधित फिल्मों के निर्माण पर यदि ध्यान केन्द्रित किया जाये तो भारतीय फिल्मों की त्रासदी यह है कि या तो यह विशुद्ध मनोरंजनात्मक होती है या फिर विशुद्ध संवेदात्मक। ऐसे में एक वर्ग का दर्शक दूसरे वर्ग की फिल्मों को देख नहीं पाता या भारतीय सिनेमा में वह दौर बीत सा गया लगता है, जबकि मनोरंजनात्मक फिल्में एक सार्थक संदेश के साथ बना करती थीं और व्यावसायिक रूप से सफल भी रहा करती थीं। आज वह संतुलन कोई भी निर्माता-निर्देशक साधने का साहस नहीं जुटा पा रहा है। यह सत्य है कि भारतीय समानान्तर सिनेमा ने एक से बढ़कर एक शानदार प्रस्तुतियां दी हैं किन्तु अब नया सिनेमा भी व्यावसायिकता की दौड़ में मृतप्राय-सा हो गया है।

मानवाधिकारों की जागरूकता के लिए सिनेमा एक सशक्त माध्यम इसलिए हो सकता है क्योंकि यह एक ऐसी कला है जो मानवीय अनुभवों को व्यक्त करने के लिए अपने अधिर में नितांत नया तरीका अपनाती है। फिल्म की भाषा किसी अन्य माध्यम से भिन्न होती है। फिल्म की भाषा मुद्रण माध्यम की लिखित भाषा से भिन्न होती है। साहित्य की भाषा का आधार शब्द है जिसमें उद्बोधनात्मक शक्ति होती है। शब्द पाठक को उसकी कल्पना की सीमा तक ले जा सकता है जिससे उसे अपना एक अनुभव संसार रचने की छूट होती है। शब्द का आधार ध्वनि होती है। फिल्म की भाषा कैमरे के द्वारा चल चित्रांकन, ध्वनि यंत्र द्वारा ध्वनियों के अंकन तथा उनका पुनर्मिश्रण तथा विभिन्न दुकड़ों के संकलन की तकनीक पर आधारित होती है। देखने सुनने के सीधे इन्द्रिय बांध से जुड़ी होने के कारण यह मानवीय चेतना की उच्च पकड़ से युक्त है। अन्ततः कहा जाय तो फिल्में मानवाधिकारों के प्रति जन-जागृति के लिए एक सशक्त माध्यम है। इसलिए फिल्मकार का यह दायित्व बनता है कि समाज में जो कुछ घट रहा है उसे अपने कथ्य का विषय बनाये। भारतीय फिल्मकार यह कह कर अपने दायित्व से बच नहीं सकते कि ऐसा हमारे समाज में नहीं होता। यह दृष्टिकोण समस्या को बढ़ाता है क्योंकि यदि रोग को छुपाया जायेगा तो वह बढ़ता ही जायेगा।

टीवी और मानवाधिकार

भारत जैसे विकासशील देश में जहां घोर सामाजिक विषमताएं मौजूद हैं, ऐतिहासिक रूप से यह एक पुराना समाज है जो नये आधुनिक रास्ते पर चल रहा है। संविधान में इसका घोषित आदर्श स्वतंत्र, धर्मनिरपेक्ष, सार्वभौम, समाजवादी समाज है। यह दुनिया का एक बड़ा जनतंत्र है इस समाज में अनेक

वर्गीय-उपवर्गीय अंतर्विरोध मौजूद हैं। हमारा समाज एक जटिल संक्रमण की प्रक्रिया में निरन्तर बनता बिगड़ता रहता है। तमाम अंतर्विरोधों से ग्रस्त है, इसमें जड़ता भी है और गति भी। इसमें पुरानापन भी है और नयापन भी। यह एक ही वक्त में पूर्व औद्योगिक समाज भी है और उत्तर औद्योगिक समाज भी। किसी भी माध्यम को इन अंतर्विरोधों के साथ तालमेल बिठाना, समझना और पुनः संचारित करना जरूरी है और इसके लिए उपयुक्त कार्यक्रम की तलाश सबसे बड़ी चुनौती है। इसी लक्ष्य से प्रेरित होकर जोशी कमेटी ने दूरदर्शन के रूप में स्थानीय एवं राष्ट्रीय आकांक्षाओं के अनुरूप परिवर्तन लाने पर जोर दिया। इसका अभिप्राय यह है कि भारतीय दूरदर्शन के कार्यक्रम मूलतः राष्ट्रीय होने चाहिए, जबकि उसका रूप (ढांचा) स्थानीय होना चाहिए। दूरदर्शन के मौजूदा राष्ट्रीय कार्यक्रम पर टिप्पणी करत हुए कहा गया- 'मौजूदा राष्ट्रीय कार्यक्रम का अर्थ सिर्फ यह है कि बहुत से क्षेत्रीय कार्यक्रमों को एक साथ उन दर्शकों के सामने कर दिया जाता है, जो उसे समझ भी नहीं सकते।'

भारत में टेलीविजन की शुरूआत राष्ट्रीय चैनल दूरदूर्शन से हुई, लेकिन आज देश में सैकड़ों राष्ट्रीय तथा स्थानीय समाचार चैनल व मनोरंजन के चैनल मौजूद हैं, जो समाज में सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन लाने में सक्षम हैं। विशेषकर समाचार चैनल प्रत्यक्ष रूप से मानवाधिकारों के लिए समय-समय पर आवाज उठाता रहता है। कुछ मनोरंजन चैनल भी निरंतर धारावाहिकों के माध्यम से समाज में मौजूद रूढ़िवादिता, अंधविश्वास, भ्रष्टाचार को उजागर करने व मानवाधिकारों की रक्षा के लिए निरंतर संदेश देते रहते हैं।

मानवाधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्र कहता है- 'हर व्यक्ति को अपने विचारों और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है। इस अधिकार में बिना किसी हस्तक्षेप के किसी माध्यम से अपने विचार रखने, सूचना एवं विचार खोजने, प्राप्त करने तथा देने का अधिकार शामिल है। भारतीय दूरदर्शन के लक्ष्यों में सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य यह भी था कि वह भारत का एक नया सूचना समाज बनाए। उसके घोषित लक्ष्यों में एक नए मनुष्य, एक नई संस्कृति की परिकल्पना निहित है। किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि भारतीय दूरदर्शन अपने घोषित लक्ष्यों और सूचना के बीच कोई स्वस्थ संबंध नहीं बना पाया। सूचना चुनने से लेकर संप्रेषण की क्रिया तक वह मूलतः सूचना की धनात्मक अवधारणा की जगह ऋणात्मक अवधारणा से परिचालित लगता है।'

धारावाहिकों या नाटकों में इस बात को यदि देखा जाय कि क्या उनमें मानवाधिकारी दृष्टिकोण से दर्शकों को संदेश प्रेषित करने की कोशिश की गयी तो शुरूआत होती है 'हम लोग' से। भारतीय टेलीविजन इतिहास का पहला धारावाहिक 'हम लोग' मूलतः परिवार नियोजन, मद्यनिषेध एवं अन्य सामाजिक

मूल्यों को प्रचारित करने के उद्देश्य से प्रसारित किया गया था। किन्तु ज्यों-ज्यों उस पर लोकप्रियतावाद हावी होता गया, उसके मूल संकल्प पीछे ही छूटते गये। इस धारावाहिक में औरत की तस्वीर मूलतः परंपरागत ही रही। बदलती, कामकाजी औरत की तस्वीर वहां नहीं निखर पायी। इसके पश्चात् लोकप्रिय हुए धारावाहिकों में नाम आता है 'खानदान' का जिसमें 'हम लोग' के निम्न मध्यमवर्गीय परिवार के मुकाबले एक व्यापारी खानदान की कहानी थी। भारतीय समाज में पुराने ढंग से उद्योगपति और नये व्यापारियों के तरीकों एवं हितों को टकराहट प्रमुख रही, किन्तु कलात्मक रूप से 'हम लोग' से बेहतर प्रस्तुति होने के बावजूद यह धारावाहिक उच्च वर्ग में ही लोकप्रिय हो पाया। मानवाधिकारों से इतर अगर इस धारावाहिका का सन्दर्भ लिया जाये तो यह कहा जायेगा कि धारावाहिक 'खानदान' बाद में बनने वाले उच्चवर्ग के जीवन पर आधारित धारावाहिकों का पितामाह था। इसके बाद बुनियाद', 'तमस', 'रजनी', 'स्त्री', 'और भी राहें', 'कसौटी', 'सास भी कभी बहू थी', 'शांति', 'उड़ान', 'हकीकत' आदि धारावाहिक काफी लोकप्रिय एवं पारिवारिक रहे।

रेडियो और मानवाधिकार

भारत में रेडियो का नियमित प्रसारण 23 जुलाई 1927 में प्रारम्भ हुआ था। स्वतंत्रता के पश्चात भारत का पहला रेडियो केन्द्र 1 नवम्बर 1947 को जालधंर में खोला गया। भारत में उपलब्ध जनसंचार के माध्यमों में रेडियो सबसे सशक्त माध्यम है। भारत जैसे विशाल देश में जहां मुद्रण माध्यम या दूरदर्शन की पहुंच की कुछ सीमायें हैं वहां लोगों को सूचना देने और लोगों का मनोरंजन करने में आकाशवाणी की महत्वपूर्ण भूमिका है।

रेडियो के समाचारों का महत्व प्रभाव की दृष्टि से काफी अधिक है। भारतीय संविधान के 38वें अनुच्छेद में कहा गया है- 'सूचना देने का दायित्व राष्ट्र पर है परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि राष्ट्र अपने प्रसारण माध्यमों से लोगों को केवल अनेक प्रकार के आंकड़े ही देता रहे। रेडियो को भरसक निष्पक्षतापूर्वक जानकारी उपलब्ध करानी चाहिए क्योंकि यही किसी भी प्रसारण माध्यम की विश्वसनीयता का आधार है। रेडियो प्रसारण श्रोताओं के लिए है। इसलिए जिन कार्यक्रमों में श्रोताओं की दिलचस्पी ज्यादा होती है उनका प्रसारण करना भी रेडियो का दायित्व है।'

मानवाधिकार और रेडियो, भारत में कम से कम इन विषयों पर सोचना थोड़ी दूर की बात लगती है। यदि हम इसके कारणों का विश्लेषण करें तो हमें कई तथ्यों का पता लगेगा। इसमं सबसे महत्वपूर्ण कारक है भारत में फैली अशिक्षा, गरीबी और जागरूकता की कमी। मूलतः इन तीनों में आपस में परस्पर

सम्बन्ध हैं तथा तीनों मिलकर एक ऐसा दुष्चक्र बनाती हैं। जिन पर नियंत्रण कर पाना किसी भी अल्पविकसित देश के लिए एक कठिन कार्य है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि आकाशवाणी के प्रारम्भिक कार्यक्रमों की रूपरेखा भारतीय ग्रामीण परिवेश को ध्यान में रखकर बनायी गयी थी। उसके 'विज्ञान और किसान' 'ग्राम जगत' आदि जैसे कार्यक्रम खासे लोकप्रिय भी हुये। किसानों ने रेडियो को सुनकर चावल की एक नई प्रजाति विकसित कर ली जिसका नाम ही 'रेडियो राइस' पड़ गया। लोकगीतों के प्रचार में आकाशवाणी ने खासा सराहनीय कार्य किया है। भारत एक विकासशील देश है जिसकी जनसंख्या के आधे से ज्यादा भाग को दो वक्त की रोटी नहीं मिलती और लगभग आधी आबादी निरक्षता के भयानक रोग से ग्रस्त है। ऐसे में उनके लिए ज्यादा आवश्यक है रोटी, कपड़ा, मकान और शिक्षा। कहा भी गया है कि अधिकारों की मांग पेट भरने के बाद ही होती है। भारत के लोगों को पहले रोटी, कपड़ा, मकान और शिक्षा चाहिए। भारतीय अर्थव्यवस्था ग्रामीण अर्थव्यवस्था से हटकर धीरे-धीरे औद्योगीकृत अर्थव्यवस्था की ओर उन्मुख है। यदि सीधे तौर पर मानवाधिकार आधारित कार्यक्रमों का जिक्र किया जाये तो आकाशवाणी का ऐसा कोई कार्यक्रम नहीं है जो प्रत्यक्ष तौर पर मानवाधिकार जागरूकता के लिये कार्य कर रहा हो किन्तु अप्रत्यक्ष तौर पर ऐसे अनेक कार्यक्रमों का प्रसारण आकाशवाणी के विभिन्न कार्यक्रमों के अन्तर्गत किया जा रहा है जो जनता को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक, सचेत और सजग करते हैं। किन्तु मानवाधिकारों के अन्तर्गत विशेषीकृत कार्यक्रमों का प्रसारण नहीं हो रहा हैं विविध भारती सेवा ने उपभोक्ता अधिकारों के प्रति जागरूकता को बढ़ाने के लिये 'अपने अधिकार' शीर्षक के तहत एक प्रायोजित कार्यक्रम प्रारम्भ किया था तथा यह काफी लोकप्रिय भी हुआ। 'आओ हाथ बढ़ाये' जीवन बीमा निगम द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम भी मानवाधिकार जागरूकता कार्यक्रम के तहत रखे जा सकते हैं। मानवाधिकार जागरूकता के लिये रेडियो माध्यम का पर्याप्त दोहन नहीं हो पाया है, रेडियो निरक्षरों के लिये एक वरदान है जिसके द्वारा वे सिर्फ सुनकर अधिक से अधिक सूचना, ज्ञान व मनोरंजन हासिल कर लते हैं। यह सामान्य जनता में भी सुलभ है यही कारण है कि टीवी के व्यापक प्रसार के बावजूद तीसरी दुनिया के देशों में रेडियो का अपना महत्व आज भी कायम है।

रेडियो जनसंचार का एक सरल माध्यम है अर्थात् समाज का सामान्य तबका ही इसका मुख्य लक्षित जन है। शाम को जब गांव के किसान थक-हार कर घर पहुंचते हैं तो उन्हें मनोरंजन की शीतल फुहार चाहिए होती है। ऐसे में रेडियो के समक्ष सामंजस्य विठाने की गंभीर समस्या होती है। रेडियो के कार्यक्रम मूलतः या तो सूचना प्रधान होते हैं या फिर मनोरंजन प्रधान। मानवाधिकार जागरूकता संबंधी कार्यक्रम

के लिये एक विस्तृत नीति की आवश्यकता है। मानव के समग्र विकास के लिये इनकी उनपयोगिता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है किन्तु तथ्यगत बात यह भी है कि जब तक श्रोता इसकी उपयोगिता को नहीं पहचानेंगे तब तक ऐसे कार्यक्रमों का भरपूर प्रवाह प्रारंभ नहीं होगा। रेडियो के उच्चरित शब्द कार्यक्रमों में (वार्ता, फीचर, परिचर्चा, नाटक, जनहित में विज्ञापनों का प्रसारण आदि में) इस विषय को सुरूचिपूर्ण ढंग से उठाया जाना आवश्यक है। किन्तु हमारा भारतीय समाज अनेक विसंगतियों का शिकार है। ये विसंगतियां क्षुद्र रूप में कहीं न कहीं मानवाधिकार से सम्बन्धित है। यथा दहेज प्रथा, बालश्रम, यौन उत्पीड़न, छुआछूत, भेदभाव, ऊँच-नीच आदि। वास्तव में यह सब मानवाधिकारों का हिस्सा ही है और इन मुद्दों पर जागरूकता लाने में रेडियो ने महत्वपूर्ण निभायी है। दहेज प्रथा, बाल विवाह, छुआछूत जैसी कुप्रथाओं पर कुठाराघात किया है किन्तु इन्हें मानवाधिकारों से कभी जोड़कर नहीं देखा गया। आवश्यकता है इस स्थिति को बदलने की।

प्रिन्ट मीडिया और मानवाधिकार

अधिकारों के क्रम में जब हम मानवाधिकारों की बात करते हैं तो हम पाते हैं कि मानवाधिकारों की यह अवधारणा अन्य अधिकारों की अपेक्षा अधिक व्यापक है। मानव के लिए अपरिहार्य इन सब सुविधाओं को अनेक लोकतांत्रिक राष्ट्रों ने अपने नागरिकों के विकास के लिए अनिवार्य समझते हुए अपनी-अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप अपने यहां की राजनीतिक व्यवस्थाओं एवं मूलभूत कानून में स्थान दिया है।

यद्यपि उपरोक्त अधिकार प्रदान अवश्य किये गये हैं किन्तु इन अधिकारों के प्रति आम जनता की जागरूकता में काफी कमी है और इन अधिकारों से जनता को परिचित कराने का कार्य जन-माध्यमों ने किया है। मुद्रण एक सशक्त जनमाध्यम है जिसके तहत समाचार पत्र, पत्रिकाएं प्रमुख से आते हैं। प्रिन्ट एक ऐसा माध्यम है जो सर्वप्रथम जनमाध्यम के रूप में अस्तित्व में आया है और जब से अस्तित्व में आया है तब से ही लोगों के बीच सूचना संप्रेषण व जागृत करने का कार्य कर रहा है। मानवाधिकार संबधी समाचारों में मीडिया का साम्राज्यवाद साफ झलकता है। पूरे विश्व का मीडिया यही बताता है कि मानवाधिकारों का सबसे ज्यादा हनन तीसरी दुनिया के देशों में होता है। सभी समाचार पत्रों में लगभग 50 प्रतिशत समाचारों का योगदान समाचार एजेंसियों का होता है, शेष उसके अपने संवाददाता तथा सूत्रों से प्राप्त समाचार होते हैं। कहा भी जाता है कि किसी भी समाचार पत्र का कलेवर समाचार एजेंसियों से प्राप्त समाचारों से ही निर्धारित होता है।

ऐसे में स्थिति एकदम स्पष्ट हो जाती है कि बड़ी समाचार एजेंसियां हमेशा मानवाधिकार हनन का मामला तीसरी दुनिया के देशों के परिप्रेक्ष्य में ही उठती हैं और दुःख, शोक, चिन्तन बेचकर इन्हें पैसा बनाना भी खूब आता है। किन्तु विकसित देशों में मानवाधिकार हनन का एक भी मामला मीडिया द्वारा सामने नहीं लाया जाता। यदि हम भारतीय पत्रकारिता की बात करें तो कुछ अपवादों को छोड़कर कोई भी समाचार पत्र-पत्रिका उनकों स्थान देना उचित नहीं समझते। कारण स्पष्ट है कि इस तरह के समाचार वे अपने खुद के संसाधन से जुटा नहीं सकते क्योंकि धनाभाव के कारण वे उतने साधन-सम्पन्न नहीं हैं। विदेशी मानवाधिकारों संबधी समाचारों के सबंध में भारतीय पत्रकारिता की स्थिति बिल्कुल अच्छी नहीं है। पत्र-पत्रिकाओं में ही समाचार छपते हैं जो विदेशी समाचार एजेंसियों के सहयोग से प्राप्त किये जाते हैं। अपने साधन ऐसे समाचार सूंघने व लाने की प्रतिभा को अभी भारतीय पत्रकारों को साबित करना होगा। समाचार पत्रों में विशेषीकरण की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। अब अपराध का अलग, राजनीति का अलग विधि का अलग व खेल का अलग उपसम्पादक तथा संवाददाता होता है किन्तु अभी ऐसी प्रवृत्ति मानवाधिकारों संबधी समाचारों में नहीं दिख रही है। मानवाधिकारों की जागरूकता संबंधी प्रक्रिया एक निरंतर व लंबी चलने वाली प्रक्रिया है। यह एक झटके में या एक लेख मात्र से नहीं आ जायेगी। यह तभी होगा जब पत्रकारिता इसके महत्व को पहचानेगी और इसकी उपयोगिता को भी समझेगी किन्तु भारतीय पत्रकारिता में अभी इस मुद्दे के प्रति संवदेनशीलता नहीं झलकती है। भारतीय पत्रकारिता पर एक आरोप यह भी लगता है कि यह मानवाधिकार मुद्दों को उठाकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेती है तथा उसका विश्लेषित अनुवर्त नहीं करती है। जबकि मानवाधिकार संबधी समाचारों में इसकी विशेष आवश्यकता पड़ती है।

हमें यह भी याद रखना होगा कि जहां स्वतंत्रता से पहले भारतीय पत्रकारिता ने भारत की जनता को एक राह व दिशा देकर स्वतंत्रता आन्दोलन में जोड़ा वहीं स्वतंत्रता के बाद यहां की पत्रकारिता ने विशेषकर विकास को अपना उद्देश्य बनाया, लोगों के लिए विकास की राह आसान बनायी तथा मानव के अधिकारों को उन्हें समझाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मानवाधिकार मुद्दों पर जागरूकता फैलाने का यदि कोई ठोस कार्य हुआ है तो वह भारतीय पत्रकारिता द्वारा ही हुआ है। पत्रकारिता को यदि पारंपरिक जनमाध्यमों से जोड़ दिया जाये तो वह और अधिक प्रभावी हो सकती है खासकर मावाधिकार मुद्दों पर। यथा-मानवाधिकार विषय को आधार बनाकर एक नौटंकी किसी गांव में की जाती है तो उससे गांववालों को मानवाधिकार विषय के बारे में जानने में मद्द मिलेगी। यदि इस तरह के समाचारों को समाचार पत्रों में प्रमुखता से प्रकाशित किया जाये तो जहां-जहां उस समाचार पत्र का प्रसार होगा वहां के लोगों को मानवाधिकार के बारे में सूचना व शिक्षा भी मिलेगी तथा नौटंकी के कथ्य से वे मनोरंजित भी

होंगे। पारंपरिक माध्यमों को अगर पत्रकारिता से जोड़ दिया जाये तो निश्चय ही परिणाम चैंकाने वाले प्राप्त होंगे। समाज में आगे बढ़ने व अपने आप को बनाये रखने में जिन मूलभूत आवश्यकताओं की आवश्यकता होती है। उन्हें प्राप्त करना या उनका संरक्षण करना ही मानव अधिकार है। इन मानवाधिकारों को व्यक्ति/मानव को दिलाने में पत्रकारिता की भूमिका महत्वपूर्ण है। विशेषकर कर समाचार पत्र/पत्रिकाएं इसमें अग्रणी है। भारत के परिप्रेक्ष्य में यदि देखा जाय तो समाचार पत्र/पत्रिकाओं का उद्भव ही मानव के अधिकारों को दिलाने के लिए हुआ। जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमें भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान देखने को मिलता है। इस दौरान तो कई समाचार पत्र/पत्रिकाएं लोगों तक स्वाधीनता आंदोलन की सूचना पहुंचाने तथा लोगों को स्वाधीनता के लिए जागृत करने के उद्देश्य को लेकर ही प्रकाशित हुये थे।

13.5 सारांश

अंत में समग्र रूप से इस सम्पूर्ण अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि मानवाधिकरों के प्रति जनचेतना फैलाने में जनमाध्यमों की भूमिका सराहनीय है। यह अलग अध्ययन का विषय है कि वह क्यों सराहनीय है। किन्तु जनमाध्यमों ने मानवाधिकर की अवधारणा को प्रसारित व प्रचारिल किया है। लोगों को अपने अधिकारों के बारे में जानकारी हुई है तथा इसके प्रति उनमें जागरूकता भी बढ़ी हैं लेकिन अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। अशिक्षा का दैत्य अभी भी हमारे समक्ष विकराल रूप में खड़ा है।

गरीबी व भूख से देश की आधी से ज्यादा जनता त्रस्त है। बालश्रम, बेगार प्रथा, दलित उत्पीड़न, बलात्कार, लूटमार की घटनाओं में लगातार वृद्धि हो रही है, तब यह प्रश्न उठना भी स्वाभाविक है कि जब लोगों में मानवाधिकर के प्रति जागरूकता आ रही है तो इस तरह की घटनायें क्यों बढ़ रही हैं, इसका कारण यह भी है कि हम अपने अधिकारों के प्रति सजग हो रहे हैं लेकिन दूसरों के अधिकारों को छीनने के लिए तत्पर हैं। इस समस्या का समाधान स्वचेतना और स्वसजगता से ही सम्भव है, मीडिया तो केवल सूचना पहुंचाने का कार्य कर सकता है।

13.6 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. मानवाधिकार से आप क्या समझते हैं।

प्रश्न 2. जेसी जौहरी ने मानवाधिकार की परिभाषा किस तरह दी।

प्रश्न 3. मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो मनुष्य के जीवन उसके अस्तित्व

एवं व्यक्तित्व के विकास के लिये अनिवार्य हैं। किसने कहा-

(क) जेसी जौहरी (ख) आरजे विसेट

(ग) डेविड सेलबाई (घ) प्लानो एवं ओल्टान

प्रश्न 4. 'टाइपिस्ट गर्ल' फिल्म बनी

(क) 1924 (ख) 1918 (ग) 1934 (घ) 1926

प्रश्न 5. 'शिराज' रिलीज हुई

(क) 1924 (ख) 1918 (ग) 1934 (घ) 1926

प्रश्न 6. भारतीय संविधान के 38वें अनुच्छेद में क्या कहा गया है।

प्रश्न 7. भारत में फिल्मों का इतिहास कब शुरू माना जाता है।

प्रश्न 8. मानवाधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्र क्या कहता है।

प्रश्न 9. दूरदर्शन के शुरूआती दौर के किन्ही चार सीरियलों के नाम बताएं।

प्रश्न 10. पचास के दशक में सिनेमा की सक्रियता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. मानवाधिकार ऐसे अधिकार हैं जो किसी भी व्यक्ति को मानव होने के कारण स्पष्ट कराते हैं। तथा ये अधिकार यह सुनिश्चित करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का मान उसके मानव होने के कारण सभी के बराबबर है, वह चाहे किसी भी राष्ट्र, धर्म, लिंग, जाति, उम्र से संबधित हो।

उत्तर 2. जेसी जौहरी ने कहा- यह तथ्य है कि मानव समाज में कई स्तरों पर विभेद मौजूद है चाहे वह भाषा, वर्ण या लिंग के आधार पर हो किन्तु इनके बावजूद कुछ अनिवार्यतायें सब समाजों में विद्यमान हैं यही अनिवार्यता मानव अधिकार है जो एक व्यक्ति को मानव होने के कारण मिलना चाहिए।

उत्तर 3. प्लानो एवं ओल्टान

उत्तर 4. 1918 में

उत्तर 5. 1926 में

उत्तर 6. भारतीय संविधान के 38वें अनुच्छेद में कहा गया है कि सूचना देने का दायित्व राष्ट्र पर है परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि राष्ट्र अपने प्रसारण माध्यमों से लोगों को केवल अनेक प्रकार के आंकड़े ही देता रहे। रेडियो को भरसक निष्पक्षतापूर्वक जानकारी उपलब्ध करानी चाहिए क्योंकि यही किसी भी प्रसारण माध्यम की विश्वसनीयता का आधार है। रेडियो का पूरा प्रसारण श्रोताओं के लिए है। इसलिए जिन कार्यक्रमों में श्रोताओं की दिलचस्पी ज्यादा होती है उनका प्रसारण करना भी रेडियो का परम दायित्व है।

उत्तर 7. भारत में फिल्मों का इतिहास सन् 1896 में शुरू होता है जब 7 जुलाई 1896 को मुम्बई के टाइम्स आफ इण्डिया में एक फिल्म से संबधिंत विज्ञापन छपा था।

उत्तर 8. मानवाधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्र कहता है- हर व्यक्ति को अपने विचारों और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है। इस अधिकार में बिना किसी हस्तक्षेप के किसी माध्यम से अपने विचार रखने, सूचना एवं विचार खोजने, प्राप्त करने तथा देने का अधिकार शामिल है।

उत्तर 9. दूरदर्शन के शुरूआती दौर के चार प्रमुख धारावाहिक 'खानदान' 'बुनियाद', 'तमस' तथा 'रजनी' हैं।

उत्तर 10. गुणवत्ता प्रधान और भाषा प्रधान फिल्मों का दौर रहा। *(देखें फिल्म और मानवाधिकार)*

13.8 शब्दावली

मानवाधिकार : मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो मानवीय जीवन एवं व्यक्तित्व के विकास के लिये अनिवार्य हैं। मूलतः यह व्यक्ति की गरिमा से संबधिंत हैं। हर व्यक्ति की गरिमा की समान स्वीकृति व्यक्ति के अधिकार एवं कर्तव्य दोनों का आधार है। मानवाधिकार और कर्तव्य बुनियादी मूल्यों की स्वतंत्रता एवं नैतिकता से उत्पन्न होते हैं।

जनमाध्यम : सूचना प्रेषण अथवा सूचना प्रदान कराने वाले ऐसे माध्यम जो जन-जन तक सूचनाओं का संप्रेषण करते हों जनमाध्यम कहलाते हैं। जैसे टीवी, रेडियो, समाचार पत्र आदि।

13.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पचौरी सुधीश: दूरदर्शन : दशा और दिशा: प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली।

2. सिंह ओमप्रकाश : संचार माध्यमों का प्रभाव, क्लासिकल प्रकाशन कम्पनी, नई दिल्ली।

3. श्रीवास्तव मुकुल : मानवाधिकार और मीडिया (2008), अटलांटिक प्रकाशन, राजोरी गार्डन, नई दिल्ली।

4. राय अरूण : भारत का राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग 2002, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

13.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. राय अरूण : भारत का राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (2002), राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

2. श्रीवास्तव मुकुल : मानवाधिकार और मीडिया (2008), अटलांटिक प्रकाशन, राजोरी गार्डन, नई दिल्ली।

3. विकिपीडिया. कॉम

4. जीपी सिंह, दैनिक जागरण, 18 नवंबर, 2011

13.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. मानवाधिकार से आप क्या समझते हैं, इन्हें प्रबल बनाने में तथा इनके लिए आम जन को सजग करने में मीडिया की क्या भूमिका हो सकती है।

2. प्रिन्ट मीडिया किस तरह से मानवाधिकारों के प्रति व्यक्ति को जागृत करने में सक्षम है, इसकी व्याख्या कीजिए।

3. फिल्म और मानवाधिकारों पर एक निबंध लिखिए।

4. क्या स्वतंत्रता से पूर्व भी भारत में मीडिया ने मानवाधिकारों के प्रति लोगों को सजग किया है, उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

इकाई-14

महिला जगत और मीडिया

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 महिला और विमर्श की जमीन के बीच

14.3 महिलाओं का मीडिया में दखल

14.4 महिला अपराध – एक नजर

14.5 मीडिया में महिलाओं की रिपोर्टिंग की सीमाएं

14.6 महिला अपराध रिपोर्टिंग

14.7 महिला पत्रकारों-पत्रिकाओं से जुड़ी रोचक जानकारियां

14.8 सारांश

14.9 शब्दावली

14.10 बोध प्रश्न

14.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.12 संदर्भ ग्रंथ/उपयोग सामग्री

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

-विद्यार्थियों को मीडिया और महिला की मौजूदा स्थिति से रूबरू कराना।

-विद्यार्थियों को महिलाओं के विकास में मीडिया की भूमिका से परिचित कराना।

-विद्यार्थियों को महिला अपराध रिपोर्रिंग की संभावनाओं से परिचित कराना।

-विद्यार्थियों को मीडिया में महिलाओं की रिपोर्टिंग की सीमाओं और नियमों से बोध कराना।

14.1 प्रस्तावना

मीडिया अपने सभी रूपों में समाज के लिए उत्तरदायी है। महिलाओं की स्थिति को लेकर मीडिया काफी सतर्क रहता है, लेकिन कुछ न कुछ कमियां रह ही जाती हैं। बीते कुछ वर्षों में जब से मीडिया का अपना काफी विस्तार हुआ, उसने महिलाओं की कवरेज को लेकर एक नया अध्याय ही रच डाला है। कई मीडियम जहां संवेदनाओं को प्राथमिकता देते हैं और महिलाओं के मामलों को संजीदगी से पेश करते हैं तो कुछ मीडिया संस्थान महिलाओं को भी नहीं बख्शते और सीमाओं को तोड़कर रिपोर्टिंग में लग जाते हैं। इससे समाज में महिलाओं को काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। मीडिया को इससे बचना चाहिए जिससे कि महिलाओं का सम्मान बचा रह सके और वे खुली हवा में सांस ले सकें।

14.2 महिला और विमर्श की जमीन के बीच

स्वामी विवेकानंद ने कहा था - औरत के उत्थान के बिना समाज का उत्थान हो ही नहीं सकता। कोई भी चिड़िया एक पंख से उड़ान नहीं भर सकती। सामाजिक विकास को लेकर होने वाली तमाम बहसों के केंद्र में औरत रही है। आधी आबादी होने का सच और परिवार की आधार होने की प्रमुख सत्ता ने औरत के वजूद को हमेशा वजन दिया है पर साथ ही बरसों के विभिन्न सामाजिक सचों के बीच औरत की स्थिति हमेशा एक गंभीर विमर्श पर भी जोर देती रही है। जेंडर से जुड़ा सवाल मीडिया और कल्चर के संबंध के हर हिस्से को छूता है। इसके केंद्र में जेंडर ही है। वैन जूनेन लिखती हैं - जेंडर के अर्थ कल्चर और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के हिसाब से बदलते रहते हैं। ऐसे में जन संचार पर जेंडर का परिप्रेक्ष्य

समझ के नए आयामों को खोलता है। महिला आंदोलन की तमाम गूंजों के बीच मीडिया एक बड़े औजार के तौर पर उभरा है और उसने हर तरह के आंदोलन की दशा और दिशा तय की है। मीडिया पर होने वाले तमाम विमर्शों के केंद्र में महिला और पूंजी- यह दोनों ही हमेशा से रहे हैं। पूंजी ने जहां मीडिया के टिके रहने की शर्तों को पूरा किया है, वहीं महिला ने सामाजिक जमीन को तैयार किया है। यह बात अलग है कि हरेक माध्यम ने महिला की व्याख्या कुछ अलग ढंग से की है। जनसेवा प्रसारण करते दूरदर्शन या आकाशवाणी पर आती एक व्यवस्थित महिला हो या निजी टीवी चैनल की आकर्षक महिला या फिर सामुदायिक रेडियो को संभालती एक जिम्मेदार महिला – सभी जगहों पर एक अलग बिंब उभरता हुआ दिखता है जो स्त्री विमर्श के नए मुहावरे गढ़ने के लिए मजबूर करता है। मीडिया में महिलाओं का चित्रण समाज के हर पहलू को परिभाषित करता है।

फिल्म डर्टी पिक्चर में विद्या बालन कहती हैं कि फिल्मों में तीन ही चीजें बिकती हैं। वे हैं – एंटरटेंमेंट, एंटरटेंमेंट और एंटरटेंमेंट। यह कहानी सभी माध्यमों की है लेकिन यहां एक बड़ा फर्क यह है कि एंटरटेंमेंट का यह पक्ष आमतौर पर एक अगंभीर और असंवेदनशील जमीन को खड़ा कर देता है। नतीजा यह कि जिस माध्यम से स्त्री विमर्श की गूंज को सशक्त बनाया जा सकता था, वहां सीलन दिखने लगती है। न्यूज मीडिया में जेंडर रिपोर्टिंग पर दुनिया के सबसे शोधपरक प्रयास ग्लोबल मीडिया मॉनिटरिंग रिपोर्ट का यहां जिक्र करना होगा। इस रिपोर्ट को तैयार करने के लिए वर्ष 2009-10 में 130 देशों के 42 सैंपल लिए गए। इसके लिए 14,044 खबरों का चुनाव किया गया। इसमें यह पाया गया कि राजनीति या सरकारी समाचार अब भी कुल कवरेज का 27 प्रतिशत हिस्सा लेते हैं जबकि अपराध और हिंसा 20 प्रतिशत है। रिपोर्ट में यह कहा गया कि सबसे जरूरी मुद्दों पर भी महिलाओं की राय कोई खास मायने नहीं रखतीं। तमाम समाचार माध्यमों में सरकार और राजनीति पर महिला के विचार 4 प्रतिशत और अर्थव्यवस्था जैसे मुद्दों पर सिर्फ 1 प्रतिशत जगह ही हासिल कर पाते हैं। इस रिपोर्ट को देखने के बाद दक्षिण अफ्रीका से निकलने वाले समाचार पत्र डेली लिंक्स के संपादकीय में खास तौर से यह कहा गया कि "अगर कवरेज की स्थिति यही रही तो हमें किसी सफलता तक पहुंचने में कम से एक शताब्दी और लगेगी। महिलाओं की स्थितियों को लेकर वास्तव में मीडिया संस्थानों को संजीदा होना पड़ेगा और उनकी कवरेज को भी हर हाल में बढ़ाना पड़ेगा वरना संतुलन बिगड़ेगा।

14.3 महिलाओं का मीडिया में दखल

70 के दशक में ब्रितानी टेलीविजन में महिला एंकर एंजिला रिपन और अन्ना फोर्ड नियमित तौर पर समाचार पढ़ने लगीं तो यह आम लोगों के साथ-साथ प्रेस के लिए भी बड़ा अजूबा बना। समाज में एक नई भूमिका के साथ मैदान में उतरी ये महिलाएं चुटकुलों, तस्वीरों और द्विअर्थी टिप्पणियों का शिकार बनीं। उनकी लिपस्टिक और टेबल के पीछे छिपी टांगें छींटाकशी पाती रहीं। यहां तक कहा गया कि टीवी के स्क्रीन पर खबर पढ़ी महिला को देखकर पुरूषों की आंखें *फिसलती* हैं। ऐसे में खबर पर ध्यान को टिकाना सहज नहीं हो पाता और खबर भी सिर्फ खबर भर नहीं रह पाती। लेकिन इस कटाक्ष के बावजूद महिलाएं खटाखट खबर पढ़ती गईं और धीरे-धीरे ग्लोबल परिप्रेक्ष्य में भी स्वीकार्य होती चली गईं। इस जिद्दीपने और प्रोयोगिक माहौल का एक सीधा असर यह भी हुआ कि धीरे-धीरे लोगों का मीडिया को पढ़ने और समझने का नजरिया खुलने लगा। समाज की मीडिया और उससे जुड़े संकेतों के प्रति विचारधारा परिपक्व होने लगी।

टेलीविजन मीडिया ने प्रिंट के उस अलिखित नियम को जैसे पलट ही दिया जिसमें महिलाओं को सिर्फ फीचर योग्य ही माना जाता था। इन महिला एंकरों की बदौलत मीडिया की दुनिया को जेंडर सेंसिटिव बनाने का माहौल बनाने की शुरूआत हो गई। दरअसल टेलीविजन मीडिया में आने वाले बदलाव ज्यादा तत्पर होते हैं। यहां नए अलंकार और नए खिलाड़ी रोज आ जुड़ते हैं। लेकिन मीडिया स्टडीज में सबसे बड़ी चुनौती यही है कि तमाम माध्यमों के बीच कॉमन यानी एकसमान है क्या। अलग-अलग देशों की सत्ताओं और रूचियों के आस-पास घूमता मीडिया बाहरी प्रभावों से कतई अछूत नहीं है, ऐसे में राष्ट्रीय प्रणाली से लेकर सांस्कृतिक कलेवर तक मीडिया के पड़ने वाले असर की गहन समीक्षा अनिवार्य हो जाती है। यही वजह है कि पिछले एक दशक में मीडिया से निकलने वाली ध्वनियों और संकेतों पर गहन शोध की जरूरत महसूस की जाने लगी है। नए भारत में भी न्यूज एंकरिंग की स्पेस पर महिलाओं का वर्चस्व कायम हो चुका है। खबर की प्रस्तोता से लेकर खबर को जोड़कर लाने वाली भी महिला ही है। अब अगर यह पूछा जाए कि तमाम न्यूज चैनलों में एक कामन बात क्या है तो उसमें ब्रेकिंग न्यूज की हड़बड़ी के अलावा यह बात जरूर आएगी कि इन्हें पढ़ने वालों में महिलाएं ही ज्यादा हैं।

लेकिन इन कुछ सालों ने महिला एंकरों के चेहरे से लेकर पहनावे और चेहरे के भावों को भी काफी हद तक बदल कर रख दिया है। दूरदर्शन की पाषाणयुगीन भावनाशून्य चेहरा लिए एंकर 90 का दशक पार करते-करते एकदम मुखर हो उठी। वो जैसे अतिरेक उत्साह से भर उठी। कलफदार साड़ी पहनकर एक भारतीय नारी की जो छवि दूरदर्शन ने गढ़ी थी, वो उससे भी चाबुक की गति से बाहर निकल आई। अब

जो छवि बनी, वो चुस्ती, फुर्ती और मस्ती की थी। सबसे पहले तो साड़ी दरकिनार कर दी गई। कुछेक चुनिंदा एंकरों को छोड़ दें तो निजी चैनलों में साड़ी अब बीते समय की बात हो गई लगती है। एक बदलाव आत्मविश्वास को लेकर आया है। ये महिलाएं भरपूर आत्मविश्वास के साथ सामने आती हैं। स्क्रीन पर ये पूरे नियंत्रण में दिखती हैं और एक सधे हुए वातावरण का निर्माण करती चलती हैं। यह सिर्फ सुबह की रौशनी और रात के ढलने तक ही नहीं दिखतीं। यह पूरे चौबीसों घंटे दिखती हैं। इससे एक सीधा संदेश यह भी जाता है कि महिलाओं के इस युग से डर की कंपकपी अब घटी है। बरसों पहले जिन महिलाओं को नाजुक-नरम करार करते हुए उन्हें सीमित अवधियों में बांट कर उन पर जो कटाक्ष किए जाते थे, वे अब सिमटे हैं क्योंकि महिलाओं चौबीसों घंटे मुस्तैद हैं। लेकिन इस सारे खेल के बीच कुछ बातें अब भी समझ में नहीं आतीं। निजी चैनलों में महिला एंकर को लेकर एक परिपाटी जैसे तय ही कर दी गई है। भारतीय मीडिया में शोध की गंभीर कमी का ही असर है कि कुछ बातें खुद ही तय कर ली गई हैं। यह माना जाता है कि दर्शक उन्हें पश्चिमी परिधान में देख कर ही खुशी महसूस करेगा। यही वजह है कि एंकरिंग को काफी हद तक युवतियों तक ही सीमित कर के रख दिया गया है। बीबीसी और सीएनएन से सबक लेने में शायद हमें अभी कई साल लगेंगे। एक बात और। टीवी की महिला एंकर को अब भी सजा-धजा दिखाया जाना अगर मजबूरी है तो वैसी गहन मजबूरी पुरूष एंकर के साथ क्यों नहीं। महिला एंकर को चश्मा पहने दिखाना भी अब तक ज्यादा पाचन योग्य हो नहीं सका है। ऐसे कई सवाल हैं जिनके जवाब मीडिया के इस नए मौसम को बेहतर तरीके से समझने में मदद कर सकते हैं और भविष्य में मीडिया मे महिलाओं की भूमिका को लेकर नए मापदंड तय कर सकते हैं।

14.4 महिला अपराध – एक नजर

15 अक्तूबर, 2003 का वह दिन जब न्यूज मीडिया के हाथ एक धमाकेदार खबर लगी थी। खबर थी - सिरीफोर्ट आडिटोरियम के पास स्विट्जरलैंड की एक राजनयिक का बलात्कार होना। खबर कई वजहों से 'खबर ' लायक बनी। एक, घटना का दक्षिणी दिल्ली में होना (जो कि अपने में एक पॉश इलाका है)। दूसरे, एक विदेशी महिला का बलात्कार होना (गोरी चमड़ी का मामला होना)। तीसरे, घटना का उस समय होना जब दिल्ली में अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह चल रहा था और चौथे, पीड़ित का यह शक जाहिर करना कि अपराधी किसी उच्च वर्ग से ताल्लुक लगता दिखता था क्योंकि वह ' फर्राट्टेदार अंग्रेजी' बोल रहा था।

कुल मिलाकर इस खबर में वह सब कुछ था जो कि बलात्कार की इस घटना को बड़ी कवरेज लायक

बनाता। लिहाजा यह घटना बड़ी बनी। मीडिया इस घटना को पूरे मसाले के साथ उछालता है और 9 दिन पहले (6 अक्तूबर, 2003) दिल्ली के बुद्धा जयंती पार्क में राष्ट्रपति के सुरक्षा गार्डों के हाथों हुए बलात्कार से जोड़ कर दिल्ली को महिलाओं के लिए अत्यधिक असुरक्षित घोषित कर देता है। तो आखिरकार पुलिस यह दरख्वास्त देती है कि अब इस मामले को खत्म करने में ही समझदारी है। क्या इसका मतलब यह समझा जाए कि एक समय के बाद ऐसे मामलों की गंभीरता कम हो जाती है या फिर यह कि मीडिया को घटनाओं को फॉलो करने की आदत अभी ही पड़ नहीं सकी है। इस संदर्भ में दूसरी वजह ज्यादा वाजिब लगती है। भारत में हर साल बलात्कार के 15000 से ज्यादा मामले दर्ज होते हैं और हर तीन मिनट में एक महिला पर किसी न किसी तरह का अपराध किया जाता है। अमरीका के सरकारी आंकड़े कहते हैं कि वहां हर 15 सेकेंड में एक महिला का शोषण होता है और मिस्र में 35 प्रतिशत महिलाओं का उनके पति उत्पीड़न करते हैं। भारत में 1971 से लेकर आज तक बलात्कार के मामलों में 700 प्रतिशत की वृद्धि हुई है जबकि ब्रिटेन में 1985 से लेकर अब तक 400 प्रतिशत की।

भारत में नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो साल 1971 से देश में हो रहे अपराधों का खाका साल दर साल देता आ रहा है। आंकड़ों के आने के बाद एक-दो दिन तक औपचारिक तौर पर अपराधों की बनती-बिगड़ती सेहत पर बहस भी होती है। अपराध क्यों होता है, इस पर सामाजिक-वैज्ञानिक स्तर वैचारिक मंथन की परंपरा भी कुछ हद तक कायम दिखाई देती है लेकिन जो पहलू सबसे ज्यादा विचारणीय लेकिन उपेक्षित लगता है - वह है बलात्कार, हत्या, अपहरण, घरेलू हिंसा वगैरह की कवरेज को लेकर मीडिया का रवैया। यहां बात ज्यादा बलात्कार की ही होगी।

महिला अपराध की रिपोर्टिंग में एक बड़ा सच श्रेणियों का भी है। जैसे कि बलात्कार की कवरेज पीड़ित की क्लास (निम्न, मध्य या उच्च वर्ग), जगह (स्लम, पाश या मध्यमवर्गीय), पारिवारिक पृष्ठभूमि, शहर, शैक्षिक योग्यता वगैरह के आधार पर जगह और प्राथमिकता पाती है। इसके अलावा आरोपी की पृष्ठभूमि भी काफी मायने रखती है। बलात्कार जब तक ठोस खबर की वजह नहीं बनता, वह मीडिया की नजरों से अछूता रहता है और कई बार न्याय पाने में भी पिछड़ जाता है। ऐसे तमाम बलात्कार, जो कि मीडिया को किसी भी तरह से कौतुहल बनाने लायक लगते रहे हैं, की कवरेज भरपूर रस के साथ की जाती रही है। मौलाना आजाद कालेज का बलात्कार मामला (15 नवंबर, 2002) मध्यमवर्गीय पढ़ी-लिखी युवती का था जिससे बलात्कार पुलिस मुख्यालय के एकदम करीब हुआ था। दिल्ली में ही राष्ट्रपति के सुरक्षा गार्डों ने जब बुद्धा गार्डन में एक युवती से बलात्कार किया तो उसे मीडिया ने खूब जगह दी। यह मामला भी कुछ ही घंटों में सुलझा लिया गया।

इसी तरह जयपुर में एक विदेशी महिला के बलात्कार के मामले पर तो *फास्ट कोर्ट* का ही गठन कर दिया जाता है और अपराधियों को चुटकियों में सजा दे दी जाती है लेकिन दूसरी तरफ गरीब बस्तियों में होने वाले बलात्कार बमुश्किल दो कालम की खबर बन पाते हैं। एक तो मीडिया इन्हें 'खास' नहीं मानती और दूसरे इसमें चटखारे लेने लायक कुछ नहीं होता। वैसे भी मीडिया ऐसे वर्ग से जुड़े अपराधों को कवर करने में दिलचस्पी लेता है जिससे वह खुद का जुडा़व महसूस करता हो। चूंकि मीडिया में एक बड़ी हिस्सेदारी मध्यम या उच्च वर्ग के पत्रकारों की है, इसी श्रेणी से कवरेज ज्यादा तवज्जो भी पाती है। मीडिया के इस रवैये को पुलिस भी पहचानने लगी है। यही वजह है कि निम्न वर्ग पर हुए आपराधिक मामले आज भी थानों में आसानी से दर्ज नहीं हो पाते। अगर दर्ज होते भी हैं तो बड़े सच को छोटे में तब्दील कर दिया जाता है। यहां बलात्कार को अक्सर 'छेड़छाड़ ' का मामला बना दिया जाता है और फर्ज निभ जाता है। पर इसका यह मतलब कतई नहीं कि अगर अपराध की बेतहाशा कवरेज होती है तो हर हाल में न्याय पाने का रास्ता भी आसान हो जाएगा। बेतहाशा कवरेज के बावजूद स्विस रेप केस सुलझ नहीं सका जबकि मौलाना आजाद कालेज का मामला चंद दिनों में ही सुलझा लिया गया। अपराध की हर पल की रिपोर्ताज से भले ही पुलिस पर अतिरिक्त दबाव पड़ जाए लेकिन इस वजह से कई बार या तो सही अपराधी पकड़ में नहीं आता या फिर उसे अपनी बात कहने का पूरा मौका नहीं मिल पाता। मामला आनन-फानन में सुलझा हुआ दिखा दिया जाता है। बाद में न्यायिक प्रक्रिया भी कई बार मीडिया रिपोर्ताज से प्रभावित दिखाई देती है।

वैसे इस सच को भी नकारा नहीं जा सकता कि मीडिया का महिला अपराध के प्रति भेदभावपूर्ण नजरिया रहा है। पुरूष के हाथों महिला का यौन शोषण होना बड़े और तीखे सवाल खड़े नहीं करता लेकिन महिला अगर पुरूष पर हमला कर देती है तो वह '*मैन बाइट्स डॉग* ' की तरह देखा जाता है। यह दिलचस्प है कि पूरी दुनिया में मुख्यधारा मीडिया में इस तरह की मानसिकता रही है। 1993 में लोरेना बॉबिट जब अपने पति के अत्याचारों से तंग आकर उसका लिंग काट देती है तो मीडिया हफ्तों इस मामले को भूल नहीं पाती। अमरीकी न्याय विभाग के मुताबिक 89 प्रतिशत यौन अत्याचार पुरूषों के हाथों होते हैं और इनमें से 99 प्रतिशत पीड़ित महिलाएं होती हैं। अब सोचने की बात यह है कि महिला पर होने वाले अपराध क्या उतनी प्राथमिकता हासिल कर पाते हैं ?

14.5 मीडिया में महिलाओं की रिपोर्टिंग की सीमाएं

हालांकि भारत में महिलाओं को लेकर कानूनों में कई फेरबदल हुए हैं लेकिन खुद संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट में इन्हें नाकाफी माना गया है। इस मामले में भारत अब भी काफी पीछे है। यहां अब भी सिर्फ 3 प्रतिशत महिलाएं ही जज बन सकी हैं। 2011 में संयुक्त राष्ट्र संगठन ने "Progress of the World's Women" के शीर्षक से एक रिपोर्ट जारी की जो कि महिला समानता और सशक्तीकरण को समर्पित थी। इस रिपोर्ट में इस तथ्य को रेखांकित किया गया कि तमाम कोशिशों के बावजूद भारत में महिला से जुड़े कानूनों को लागू करना सहज नहीं हो पाया है। इस रिपोर्ट में घरेलू हिंसा नियम, 2005, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 2005, बाल विवाह रोक अधिनियम, 2006 और विशाखा से जुड़े निर्देशों का खास तौर से उल्लेख किया गया। इसी तरह भ्रूण हत्या को लेकर कानून की कमजोरी भी एक बड़ी चुनौती है। हालांकि पंचायती राज संगठन की वजह से ग्रासरूट से जुड़ी सैंकड़ों महिलाओं को स्थानीय नियमन और प्रशासनिक कामों में सक्रिय भागेदारी का मौका मिला है लेकिन इसे बावजूद अनुसूचित जाति-जनजाति से चयनित हुई 119 महिलाओं मे से सिर्फ एक-तिहाई को ही अपने काम को अपने हिसाब से करने की छूट मिल सकी। इसी तरह राजकीय और राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं के लिए कोई आरक्षण नहीं है।

भारत में महिलाओं से जुड़े मुद्दों की रिपोर्टिंग कभी भी पूरी तरह से सधी, संवदेनशील और नियंत्रित नहीं रही है। महिला से जुड़ी रिपोर्टिंग को कई कोणों से जांचा जाता रहा है। हत्या, अपहरण, बलात्कार, घरेलू हिंसा आदि की रिपोर्टिंग कई बार क्रूर होती महसूस की गई लेकिन तीखे सवाल कभी नहीं जगे। भले ही मीडिया की पैनी नजरों की वजह से 21 अप्रैल, 2005 को मेरीन ड्राइव बलात्कार मामले में पुलिस इंस्पेक्टर सुनील मोरे को सजा हो गई लेकिन यहां भी मीडिया समुद्र किनारे बैठने वाले जोड़ों को लेकर नैतिकता का सवाल उठाने से नहीं चूका।

इसी तरह मीडिया को बलात्कार पीड़ित या बाल अपराध के मामलों में पीड़ित या बाल अपराधी की पहचान बतानी चाहिए या नहीं, इस पर भी गंभीर चर्चाएं कम ही हुई हैं। 1996 में डिक हॉस और मेलेडी रामसे ने एक सर्वेक्षण किया और यह नतीजा निकला कि विन्संटन सलेम जरनल में जिन 18 बलात्कार पीड़ितों के नाम छापे गए थे, उन्हें इसका खामियाजा भुगतना पड़ा। इन पीड़ितों का कहना था कि ऐसा किए जाने की वजह से उन्हें भावनात्मक स्तर पर तो जूझना ही पड़ा, उनके निजी सामाजिक रिश्तों में भी कड़वाहट घुल गई। कई महिला पीड़ितों का बयान था कि वे नहीं जानती थीं कि मीडिया उनकी पहचान को इस तरह सरेआम उछाल देगा। अगर वे जानतीं कि ऐसा हो सकता है तो वे अपराध को दर्ज ही न करवातीं।

फरवरी 2012 में दिल्ली से सटे नौएडा में 10वीं कक्षा की एख छात्रा से चलती कार में बलात्कार किए जाने का मामला सामने आता है और नौएडा के पुलिस अधीक्षक बड़े मजे से उस लड़की की पहचान को सार्वजनिक कर देते हैं। बाद में राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (एनसीपीसीआर) सक्रिय होता है और उत्तर प्रदेश सरकार से शहर के पुलिस अधीक्षक के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई की मांग करता है। हालांकि बाल न्याय अधिनियम की धारा 21 के तहत किसी भी मामले में पीड़ित नाबालिगों की पहचान को सार्वजनिक करने की मनाही है लेकिन तब भी इस तरह की घटनाएं काफी आम हैं। भारतीय प्रेस परिषद के अध्यक्ष मार्कंडेय काटजू को भी मीडिया को बार-बार याद दिलाना पड़ता है कि वह महिलाओं और बच्चों से जुड़े अपराधों की रिपोर्टिंग करते समय संयम बरतें लेकिन दुखद बात यह है कि वे भी इस गंभीर मुद्दे को सिर्फ शादी से जोड़ कर मौन हो जाते हैं। वे बयान देते हैं कि अगर रिपोर्टिंग में एहतियात न बरती जाए तो उससे पीड़ित की शादी की संभावना प्रभावित होगी।

इतना साफ है कि बलात्कार जैसे संगीन अपराध पर आज भी वैचारिक, सामाजिक और न्यायिक एकजुटता और प्रतिबद्धती की कमी दिखाई देती है। भारत की संसद में भी तत्कालीन गृह मंत्री लालकृष्ण आडवाणी की मौजूदगी में यह बहस हो चुकी है कि बलात्कारी को फांसी की सजा दी जाए या नहीं। तमाम कोशिशों के बावजूद आज भी बलात्कार के मामलों में आरोपी को सजा दिए जाने की दर चार प्रतिशत के आस-पास है। जाहिर तौर पर इस माहौल में बलात्कार की रपट थाने तक ले जाने के लिए अतिरिक्त हिम्मत चाहिए, फिर जोर लगाकर मामला दर्ज करवाना और मामले को अंत तक ले जाना किसी टेढ़ी खीर से कम नहीं। वैसे भी घर-परिवार से लेकर न्यायिक प्रक्रिया तक में शक बलात्कार करने वाले के बजाय बलात्कार की पीड़ित के आस-पास ही घूमता है और पीड़ित का चारित्रिक विश्लेषण किया जाता है। यही वजह है कि तमाम अपराधों की तुलना में यह शायद इकलौता ऐसा अपराध है जहां पीड़ित को अपराध दर्ज करवाने और न दर्ज करवाने-दोनों ही परिस्थितियों में अनकही सजा भुगतनी पड़ती है।

रोसालिंड गिल ने अपनी चर्चित किताब जेंडर एंड दी मीडिया में साफ तौर पर लिखा है कि बलात्कार की रिपोर्टिंग कई बार गैर जरूरी मुद्दों के आस-पास भटकती है। बलात्कार को स्वाद बढ़ाने की डिश की तरह परोसा जाता है। लड़की पर रिपोर्टिंग 'इच्छुक पार्टनर' की परिपाटी में ढालकर की जाती है। वे दक्षिण अफ्रीका में हुए बलात्कार की कुछ घटनाओं का जिक्र करती हैं जहां कई बार बलात्कारी युवकों की नज़र से बलात्कार की रिपोर्टिंग की जाती है लेकिन युवती के लिए हमदर्दी दिखाई नहीं देती। वे एक अखबार में छपी एक ऐसी ही ख़बर का जिक्र करती है जिसमें बलात्कार के चार आरोपी युवकों को भरपूर कपड़ो में जबकि पीड़ित युवती को लगभग नग्न दिखाया गया है।

सिंथिया कार्टर ने न्यूज़, जेंडर और पावर में तीन महीने में खंगाली गई 840 प्रेस रिपोटों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि यौन शोषण पर आधारित खबरें आमतौर पर अर्धनग्न तस्वीरों के पास छापी जाती हैं ताकि रेप 'सेक्सुअल पैकेज' की तरह उभर कर सामने आए। वे 'दि मिरर' छपी एक खबर का जिक्र करती हैं जहां 21 साल की एक युवती की बलात्कार के बाद हत्या कर दी जाती है। इस ख़बर के साथ एक लेख भी छपा था जो बताता था कि कैसे सेक्स शॉप्स लोकप्रियता पा रही हैं। साथ ही एक अर्धनग्न औरत की तस्वीर थी जो कि लेसयुक्त अंडरवियर पहने हुए थी। कुछ इसी तर्ज पर ब्रिटेन में दि सन में पेज 3 पर नियमित तौर पर अर्धनग्न युवतियों की तस्वीर छपा करती है।

इसी तरह रेप को डेप रेप से जोड़ देने की ब्रिटानी परंपरा भी चर्चा का मुद्दा रही है। इसमें यह जताने की कोशिश होती रही है कि बलात्कार को रोमांचक अनुभव भी माना जा सकता है। कुछ ने यह भी माना कि बलात्कार की घटना को थाने तक ले जाना पीड़ित की 'मानसिकता ' को भी दर्शाता है। ऐसे मामले भी कम नहीं जहां आरोपी युवक के 'अच्छे चरित्र' के कसीदे गढ़े गए है और पीड़ित महिला के चरित्र पर अप्रत्यक्ष तौर पर सवाल खड़े किए गए। बलात्कारी के मामले में उसका परिवार, व्यवसाय, प्रतिष्ठा, दबदबा और किसी तरह की आपराधिक पृष्ठभूमि का न होना काफी मायने रखता है जबकि पीड़ित के मामले में उसका आपराधिक प्रवृति का न होना कोई मायने नहीं रखता। कोशिश रहती है अगर पीड़ित महिला किसी भी दृष्टि से आरोपी से कमजोर हो तो बलात्कार के लिए महिला को ही किसी तरह दोषी ठहरा दिया जाए या फिर उसके मनोबल पर चोट की जाए। दिल्ली के मौलाना आजाद मेडिकल कॉलेज की छात्रा से हुए बलात्कार की घटना (15 नवंबर, 2002) के बाद भी मीडिया ने धीमे से यह टिप्पणी की कि बलात्कार के हफ्ते भर बाद ही पीड़ित युवती कॉलेज की परीक्षा में बैठ गई। मीडिया को सोच शायद अब भी यह है कि बलात्कार पीड़ित युवती का इतनी जल्दी 'सामान्य' दिखना असामान्य है। बेशक मीडिया की तेजतर्रार रिपोर्ताज की वजह से अपराधी जल्द ही पकड़ा गया और एक साल के अंदर ही उसे सजा भी दे दी गई लेकिन यह भी सच है कि लड़की के पिता को इस दौरान मीडियाकर्मियों से हाथ जोड़कर गुहार लगानी पड़ी थी कि वे लड़की की जिंदगी में दखलअंदाजी बंद कर दें। बाद में इसी लड़की को जब *साइकोसिस* नामक बीमारी हो गई तो मीडिया में इस पर कहीं मामूली जिक्र तक नहीं होता। महिलाओं की प्रगति में दृश्य और मुद्रण मीडिया की संभव भूमिका पर केन्द्रीय सरकार ने फरवरी 1995 में प्रेस परिषद् के सम्मुख कुछ विचारों को भेजा। परिषद ने यह रिपोर्ट 8 जनवरी, 1996 को स्वीकार की। महिलाओं के लिए महाराट्र सरकार की नीति की सिफारिशें को रेखांकित करते हुए तथा इनसे सहमत होते हुए, भारतीय प्रेस परिषद ने 17 अधिक सिफारिशें कीं जिनमें से प्रमुख हैं -

(क) महिलाओं पर अत्याचार के समाचार प्रकाशित किये जाने चाहिए परंतु उन्हें सनसनीखेज न बनायें।

(ख) मीडिया के प्रयास बिना इस प्रकार होने चाहिए कि महिलाओं की सकारात्मक उपलब्धियों को उजागर किया जाये

(ग) नैतिक आचार में आधुनिकता की ओर सिखाने की अश्लीलता और अभद्रता का मुकाबला करते हुए जांच की जानी चाहिए।

(घ) भारतीय प्रेस परिषद को महिलाओं की अवमानना के आरोपों पर लायी जाने वाली शिकायतों पर विचार की प्रक्रिया को प्राथमिकता देनी चाहिए और मार्ग निर्देश आदि बनाने चाहिए। लेकिन नियमों और असल कार्यान्वयन के बीच अब भी एक गहरा फासला है

14.6 महिला अपराध रिपोर्टिंग

यहां मुद्दा यह भी है कि महिलाओं या बच्चों से होने वाले संगीन अपराधों को कवर करने वाले पत्रकार कौन है, वे कहां से उगकर आए हैं, उनकी योग्यताएं और क्षमताएं क्या हैं, उनके वर्ग आधारित पूर्वाग्रह क्या हैं? आमतौर पर मीडिया संस्थानों में मीडिया कानून की क्लासों को बहुत गंभीरता से नहीं लिया जाता। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में खास तौर से मीडिया की तथाकथित पढ़ाई कैमरे के सामने दिखाई देने की कसरतों में ही सिमट कर रह जाती है और एक जल्दबाज समाज को और भी मजबूत आधार देती है। मीडिया महिला के साथ हुए अपराध को या तो बहुत बौना बना देता है या फिर दैत्याकार। यहां सारगर्भित पत्रकारिता के आसार कम ही दिखाई देते हैं।

यहां सामान्य कुछ भी नहीं है। वैसे भी अपराध से जुड़े तमाम कार्यक्रमों में जगह और रंग भरने के लिए बलात्कार या किसी भी तरह का यौन अपराध सबसे ज्यादा काम में आता है। इस संगीन अपराध की रिपोर्टिंग में गंभीरता की आंशिक उपस्थिति त्रासदी को बढ़ा देती है। वैसे सोचने की बात यह भी है कि क्या मीडिया का काम तात्कालिक खबरनामा पेश करना भर ही है या संवेदनशील मामलों को उनके सिरे तक पहुंचाना भी? बलात्कार-धमाके-अपराध-इन सब पर क्षणिक तात्कालिक-टीआरपी आधारित रिपोर्टिंग के बीच झूलते-झूलते भूलना अब हमारी फितरत में शामिल होने लगा है। ऐसे अपराधों की कवरेज को लेकर गंभीर शोध, शिक्षण और प्रशिक्षण का काफी अभाव है। इसके अलावा गलत रिपोर्टिंग होने पर किसी सजा की आवाज सुनाई नहीं देती। भारत का सूचना और प्रसारण मंत्रालय हो या

फिर भारतीय प्रेस परिषद ऐसी शिकायतों पर प्रतिक्रिया देने या फिर सही-सटीक कदम उठाने में वे एक लंबा समय लगा देते हैं। यह समस्या की शुरूआत भी है और उसका अंत भी।

14.7 महिला पत्रकारों-पत्रिकाओं से जुड़े रोचक तथ्य

भारत में महिला लेखन की शुरूआत छठी शताब्दी ईसा पूर्व से ही हो गई थी। इतिहास में उसका प्रथम उल्लेख उन बौद्ध भिक्षुणियों की रचनाओं से मिलता है, जिन्हें महात्मा बुद्ध ने कठोर नियमों के साथ अपने मठ में शामिल किया था। इस प्रकार भारत में महिला लेखन की एक दीर्घ और समृद्ध प्रथा पूर्व से ही विद्‌घ्मान है। ऐतिहासिक दस्तावेजों में भारतीय लेखिका का पहली बार उल्लेख उन बौद्ध भिक्षुणियों के रूप में मिलता है जो बौद्ध संघ में शांति और मुक्ति की तलाश में आयीं थीं, किन्तु आरंभ में महात्मा बुद्ध उन्हें अपने संघ में शामिल करने के इच्छुक न थे, पर कालांतर में वे इस पर सहमत हो गए और उन्होंने उन पर कठोर शर्त थोप दी थी। संसार की प्रथम नारी पत्रकार होने का श्रेय संयुक्त राज्य अमेरिका की निवासी एनी न्यूपोर्ट रॉयल को जाता है। उन्होंने 62 वर्ष की अवस्था में अमेरिका से 'पाल प्राई' नामक वीकली समाचार पत्र निकाला। भारत में निस्संदेह महिला पत्रकारिता के जनक होने का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को जाता है। उन्होंने 1874 में काशी से 'बालाबोधिनी' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया था। स्वाधीनता आंदोलन के वक्त विजयलक्ष्मी पंडित और उमा नेहरू की 'स्त्री दर्पण' और 'दीदी' में रचनाएं छपती थीं। इसके अलावा 'आर्य महिला', 'कमला', 'भारत महिला', 'भारत हितनारी', 'स्त्रीशिक्षा', 'कन्या', 'मनोरंजन' आदि पत्र पत्रिकाएं 1914 ई तक प्रकाशित होती रहीं।

अब तक की खोज के आधार पर श्रीमती हेमंत कुमारी को पहली महिला संपादक होने का गौरव प्राप्त है। महिलाओं द्वारा महिलाओं के लिए 1888 ई में प्रकाशित पहली महिला पत्रिका 'सुगृहिणी' की संपादक थीं। वह नवीन चन्द्र राय की सुपुत्री थीं तथा ब्रह्म समाज के आदर्शों और सिद्धांतों से प्रभावित थीं। 1889 में लाहौर से 'भारत भगिनी' नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इसका संपादन बैरिस्टर रोशन लाल की पत्नी हरदेवी ने किया। 1909 ई में प्रयाग से 'स्त्री दर्पण' मासिकी का संपादन रामेश्वरी नेहरू ने किया। 1909 में ही प्रयाग से 'स्त्रीधर्म शिक्षक' और 1911 ई में 'स्त्री चिकित्सक' का प्रकाशन हुआ। 1911 ई में देहरादून से विद्यावती देवी के संपादन में 'महिला हितकारक' नामक पाक्षिक समाचार पत्र का प्रकाशन हुआ। 1912 में गोपाल देवी ने 'गृहलक्ष्मी' पत्रिका का संपादन किया। उन्हीं दिनों सुदर्शनाचार्य बीए ने गोपाल देवी से विधवा विवाह किया। इसके बाद उनका नाम भी पत्रिका में जाने लगा। 1913 में यशोदा देवी ने 'कन्या सर्वस्व' मासिकी का प्रकाशन किया। 1928 ई में जानकी देवी 'विशारद' ने

वारणसी से 'बालिका' पत्रिका का प्रकाशन किया। 1938 में कोलकाता से महिला पत्रिका का प्रकाशन हुआ। 1945-46 में वर्धा से 'महिला श्रम' का प्रकाशन हुआ। कला देवी ने 1947 में 'माला' नामक मासिकी पत्रिका का संपादन किया। इसमें सिलाई, कढ़ाई बुनाई, कसीदाकारी, शिल्प के बारे में छपता था। इसके अलावा 1920 में छपरा से 'महिला दर्पण', 1921 में फतेहगढ़ से 'महिला संसार', 1924 में अलीगढ़ से 'महिला सर्वस्व', 1930 में लाहौर से 'शांति', 1940 में प्रयाग से 'दीदी', 1946 में पटना से 'मोहिनी', 1949 में दिल्ली से 'रूपरानी', 1948 में लखनऊ से 'नारी', 1940 में प्रयाग से 'जीजी', 1940 में ही मंदसौर मप्र से 'आर्य महिला', 1951 में मुंबई से 'सेविका', 1970 में दिल्ली से 'घर-आंगन', 1984 में दिल्ली से 'वामा' जैसी पत्रिकाएं निकाली गईं जो बाद में बंद भी हो गईं। दूसरी ओर, 'मनोरमा' (पाक्षिक 1924), 'जान्हवी' (मासिक 1966), 'गृहशोभा', 'गृहलक्ष्मी', 'बेटी', 'महिला डाकिया', 'वनिता' और 'मेरी सहेली' जैसी पत्रिकाएं आज भी काफी लोकप्रिय हैं।

14.8 सारांश

महिला आंदोलन की टंकार के बीच मीडिया एक बड़े औजार के तौर पर उभरा है और उसने हर तरह के आंदोलन की दशा और दिशा तय की है। मीडिया के विमर्शों के केंद्र में महिला और पूंजी हमेशा से रहे हैं। पूंजी ने जहां मीडिया के टिके रहने की शर्तों को पूरा किया है, वहीं महिला ने सामाजिक जमीन को तैयार किया है। हरेक माध्यम ने महिला की व्याख्या कुछ अलग ढंग से की है। दूरदर्शन या आकाशवाणी पर आती एक व्यवस्थित महिला हो या निजी टीवी चैनल की आकर्षक महिला या फिर सामुदायिक रेडियो को संभालती एक जिम्मेदार महिला सभी जगहों पर एक अलग बिंब उभरता हुआ दिखता है – जो स्त्री विमर्श के नए मुहावरे गढ़ता है। मीडिया में महिलाओं का चित्रण समाज के हर पहलू को परिभाषित करता है। 70 के बाद से मीडिया में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी और बीते 40 वर्षों में कीर्तिमान दर कीर्तिमान बना डाले। चाहे मनोरंजन की दुनिया हो या फीचर का संसार, न्यूज की मारामारी हो या विशेष बीट की रिपोर्टिंग सभी क्षेत्रों में महिलाओं का डंका बज रहा है। चुनौतियों की बीच महिलाओं ने जगह बनाई। चैनलों ने महिलाओं पर होने वाले अपराधों की खबरों को चाशनी में भी डुबोया और कभी-कभी मर्यादाएं भी तार-तार कीं। इसके लिए चैनलों की प्रतिस्पर्धा जिम्मेदार है।

14.9 शब्दावली

महिला विमर्श : महिलाओं की स्थिति को लेकर जब विद्वानों द्वारा चिंतन-मनन किया जाता है। साथ महिलाओं से जुड़े मसलों पर भी बेबाकी से राय रखी जाती है।

गृहिणी : नारी को गृहिणी कहा जाता है। वह घर के कामकाज में अनुशासित ढंग से हाथ बटाती है और घर के सभी सदस्यों का ख्याल भी रखती है।

14.10 बोध प्रश्न

1. औरत के उत्थान के बिना समाज का उत्थान संभव नहीं, उदाहरण देकर स्पष्ट करें।

2. टीवी पर खबर पढ़ने की दुनिया में महिलाओं ने कब कदम रखा, स्पष्ट करें।

3. महिलाओं के साथ होने वाले अपराधों के संदर्भ में मीडिया रिपोर्टिंग का स्तर उदाहरण देते हुए समझाएं।

4. महिलाओं से जुड़े पहलुओं को मीडिया सनसनीखेज क्यों बनाती है, स्पष्ट करें।

14.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मीडिया में महिलाओं की रिपोर्टिंग की सीमाएं और नियम क्या हैं। समझाएं।

2. 70 के दशक के बाद मीडिया में महिलाओं ने झंडा गाड़ा, उदाहरण देकर समझाएं।
3. संतुलन बनाने के लिए मीडिया में महिलाओं का कवरेज आवश्यक है, लिखें।
4. अपने आसपास किसी महिला प्रोफेशनल (डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, कलाकार या अन्य) का साक्षात्कार करें।

14.12 संदर्भ ग्रंथ/उपयोग सामग्री

1. पांडेय, पृथ्वीनाथ (2004), पत्रकारिता : परिवेश और प्रवृत्तियां, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2. फेमिनिस्ट मीडिया स्टडीज, सेज, 2006
3. http://www.indiatogether.org/2010/mar/ajo-gendrep.htm 4.
4. न्यूज कल्चर – स्टूअर्ट एलन, ओपन यूनिवर्सिटी प्रेस, 2004
महिलाओं ने जीती खबर पढ़ने की जंग 13 ,वर्तिका नन्दा -फरवरी ,2011दैनिक हिंदुस्तान
5. Hewitt, D. Kidd & Osborne, Richards: Crime and the Media-The Post Modern Spectacle, Pluto Press, London, 1995

ईकाई-15

साहित्य, संस्कृति और मीडिया

ईकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 सांस्कृतिक-साहित्यिक पत्रकारिता-परिचय एवं स्वरूप

15.3 वैश्विक साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता का इतिहास

15.4 भारतीय साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता - हिंदी पत्रकारिता के संदर्भ में।

15.6 साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता

15.7 लोकतंत्र, सामाजिक आंदोलन और मीडिया

15.8 सारांश

15.9 शब्दावली

15.10 बोध प्रश्न तथा उनके उत्तर

15.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.12 संदर्भ ग्रंथ

15.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य छात्रों को साहित्य, संस्कृति और मीडिया के आपसी रिश्तों के बारे में बताना है। मीडिया का साहित्य और संस्कृति से अनिवार्य रिश्ता है। पत्रकारिता खबरों की रिपोर्टिंग भर नहीं है। यह उस जटिल यथार्थ की खोज भी है, जो ऐसी खबरें पैदा करता है। यह काम साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता करती है।

इस इकाई में छात्र जान सकेंगे

-मीडिया का साहित्य और संस्कृति से संबंध के बारे में।

-साहित्य और संस्कृति का मीडिया पर पड़ने वाले असर के बारे में।

-साहित्य और संस्कृति का मीडिया के लिए कितना महत्व है?

-साहित्यिक-सांस्कृतिक नीतियों और कार्यक्रमों का मीडिया पर कितना असर पड़ता है?

15.1 प्रस्तावना

साहित्य और संस्कृति की तुलना में मीडिया नया है, लेकिन इनका आपसी संबंध न सिर्फ प्रगाढ़ बल्कि महत्वपूर्ण भी है। साहित्य से 'सहित' यानी साथ होने का भाव है। अर्थात जो मनुष्य के साथ रहे वह साहित्य है। साहित्य की परिभाषा बहुत व्यापक है। दूसरी ओर संस्कृति शब्द संस्कार से बना है।

संस्कार का अर्थ है व्यक्ति के मानस पर पड़ने वाला वह प्रभाव जो उसके परिवेश, परिवार और समाज के माध्यम से पड़ता है। हिंदी पत्रकारिता की मूल आत्मा साहित्यिकता-सांस्कृतिकता ही है। बल्कि हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता की सांस्कृतिक दृष्टि जिस राष्ट्रीय परिपक्वता का परिचय देती है, उस पर गर्व होता है। हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता जैसी विविधता अन्यत्र नहीं है। हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत में ज्यादातर अखबारों-पत्रिकाओं के संपादक साहित्यिक रुचि के ही होते थे। हिंदी में 'पत्रकार' शब्द माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा दिया गया था। इसी तरह 'राष्ट्रपति', 'सर्वश्री', 'मुद्रास्फीति' 'धन्यवाद' जैसे शब्द बाबूराम विष्णु पराड़कर ने दिए। बेशक आज आज हिंदी पत्रकारिता पर साहित्य का उतना प्रभाव नहीं है, लेकिन साहित्य और संस्कृति से काटकर पत्रकारिता की कल्पना नहीं की जा सकती। संस्कृति के मुद्दे को उठाने वाली पत्रकारिता सांस्कृतिक पत्रकारिता है। सांस्कृतिक पत्रकारिता मूलतः कोई अलग किस्म की पत्रकारिता नहीं है, वह पत्रकारिता के मूल चरित्र में ही समाई रहती है। नाटक, संगीत, चित्रकला केबारे में लिखना भी सांस्कृतिक पत्रकारिता है और किसी भाषा, लिपि या समुदाय के हाशिये पर चले जाने को रेखांकित करना भी। दरअसल संस्कृति का मुद्दा आज इतना जटिल और व्यापक हो गया है कि उसे बहुमुखी दृष्टिकोण के अलावा समझ पाना कठिन है। इसलिए संस्कृति के साथ अर्थशास्त्र, इतिहास, तकनीकी, विज्ञान और राजनीति के बीच सेतु बनाने की जरूरत है। सचाई यह है कि सांस्कृतिक मुद्दों पर विचार करने की हमारी अब तक की दृष्टि खंडित और एकांगी रही है। हमारी

संस्कृति को खंडित करने में राजनीति का भी बड़ा हाथ रहा है। इस संदर्भ में प्रोफेसर धूर्जटि प्रसाद मुखर्जी की टिप्पणी बहुत प्रासंगिक है कि हमारी राजनीति ने हमारी संस्कृति को नष्ट कर दिया है। पत्रकारिता के विकास के साथ सांस्कृतिक पत्रकारिता भी विकसित हुई। यहां हम इस इकाई के माध्यम से इन्हीं विषयों पर जानकारी इकट्ठा करना चाहते हैं।

15.2 साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता : परिचय व स्वरूप

हिंदी पत्रकारिता ने साहित्य और संस्कृति से जितना ग्रहण किया, उतना शायद ही दुनिया की और किसी भाषा की पत्रकारिता में संभव हुआ होगा। हिंदी के पहले पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' के प्रकाशन का निहित लक्ष्य हिंदी भाषी जनता में जागरण का संदेश देना था। इसी दौर में 'बंगदूत', 'बनारस अखबार', 'मालवा अखबार', 'सुधाकर', 'समाचार सुधावर्षण', 'अल्मोड़ा अखबार', 'सार सुधानिधि', 'भारत मित्र', 'उचित वक्ता' आदि अखबारों ने साहित्यिक पत्रकारिता को शुरुआती आधार दिया। इसके बाद 'कवि वचन सुधा' के साथ भारतेंदु युग की शुरुआत हुई। इस दौर में पत्रकारिता में सामयिकता का दायित्व जुड़ा। स्वाधीनता की मांग इस दौर की पत्रकारिता का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य थी। 'काशी', 'बिहार बन्धु' 'हिन्दी प्रदीप', 'आर्यमित्र', 'सार सुधानिधि', 'ब्राह्मण', 'हिन्दोस्थान' आदि इस युग के उल्लेखनीय पत्र थे। मालवीय युग में हिंदी की पत्रकारिता का अनेक स्तरों पर विकास हुआ। राष्ट्रीय चेतना, जागरण, देशप्रेम, समाज सुधार की भावना के साथ-साथ राजनीतिक प्रश्नाकुलता भी बढ़ी। इस युग में पंडित अंबिकाप्रसाद वाजपेयी ने 'नृसिंह' और बाबूराव विष्णु पराड़कर ने 'हितवार्ता' के माध्यम से पत्रकारिता को राजनीतिक विश्लेषणों से जोड़ने की पहल की। 'आर्यावर्त', 'हिन्दी बंगवासी', 'वेंकटेश्वर समाचार', 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'सरस्वती' आदि इस दौर के महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाएं थीं। इस दौर के पत्रों की राष्ट्रीय चेतना नरमपंथी थी, क्योंकि तब आजादी के संघर्ष का नेतृत्व नरमपंथी कांग्रेसियों के हाथों में था। द्विवेदी युग में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से पत्रकारिता को सांस्कृतिक अनुष्ठान में बदल दिया। आचार्य द्विवेदी ने नए-नए विषयों पर निबंध लिखवाकर ऐसे लेखकों की एक पूरी पीढ़ी तैयार की, जिसने आगे चलकर साहित्य और पत्रकारिता में अपनी जगह बनाई। गांधी युग में कांग्रेस की रीति-नीति पत्रकारिता का ध्येय बनी, क्योंकि तब अंगरेजों की गुलामी से देश को मुक्त कराने का बड़ा लक्ष्य सामने था। गांधी जी के आविर्भाव ने पत्रकारिता को एक बड़े मिशन में बदल दिया। शिवप्रसाद गुप्त, बाबूराव विष्णु पराड़कर, गणेश शंकर विद्यार्थी, पंडित अंबिका प्रसाद वाजपेयी, पंडित लक्ष्मीनारायण गर्दे, माखनलाल चतुर्वेदी, प्रेमचंद, शिवपूजन सहाय जैसे युग निर्माता पत्रकारों ने गांधी जी के अहिंसात्मक आंदोलन का समर्थन किया। 'प्रताप', 'प्रभा',

'सरस्वती','सुदर्शन', 'समालोचक', 'पाटलिपुत्र', 'चांद', 'माधुरी', 'विशाल भारत','हंस', 'सरोज', 'साहित्य संदेश' आदि इस दौर की महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाएं थीं।

15.3 वैश्विक साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता का इतिहास

कागज और मुद्रण का आविष्कार सबसे पहले चीन में हुआ। पेकिंग गजट या तिंचाओ नाम का पहला समाचार पत्र भी चीन से ही निकला। चीन से मुद्रण कला यूरोप पहुंची। साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता की शुरुआत अखबारों की शुरुआत के साथ ही हुई। यह याद रखना चाहिए कि आधुनिक विश्व में तमाम जनक्रांतियों में पत्रकारिता का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। चाहे अमेरिका की स्वतंत्रता की लड़ाई रही हो या भारत का स्वतंत्रता संग्राम या अफ्रीका में जातीय अस्मिता का संघर्ष-इन सबको वाणी पत्रकारिता ने ही दी।

भारतीय समाज पर ग्लोबलाइजेशन का प्रभाव वैश्विक परिदृश्य समाज और पत्रकारिता को किस तरह प्रभावित करता है, इसका पता ग्लोबलाइजेशन के बाद भारतीय समाज में आए बदलाव से चलता है। भूमंडलीकरण से देश में बड़ी पूंजी आई, मध्यवर्ग को नई आर्थिक नीतियों का लाभ मिला, लेकिन गरीबों का इसका बहुत फायदा नहीं मिला। भूमंडलीकरण से पत्रकारिता में बड़ा बदलाव यह देखने को मिला कि अमीरों की सूची बनने लगी और उन्हें महिमामंडित किया जाने लगा। ग्लोबलाइजेशन के कारण गांवों से शहरों की ओर पलायन बढ़ा। नतीजतन खेती और उपेक्षित हुई। नकदी फसलों की बढ़ती प्रवृत्ति ने किसानों पर कर्ज का बोझ डाला, और इसी दौर में उनकी आत्महत्याओं का ग्राफ भी बढ़ा। इस दौरान एकल परिवार और मजबूत हुआ, लोगों में खर्च करने की प्रवृत्ति बढ़ी और विलासिता आवश्यकता में बदल गई। हाशिये पर खड़े लोगों को बेशक ग्लोबलाइजेशन का पूरा लाभ नहीं मिला, लेकिन बदलाव उनमें भी आया। खान-पान और रहन-सहन के साथ उनका नजरिया भी बदला। उनके बच्चे भी अंगरेजी स्कूलों में पढ़ने लगे। जाहिर है, ग्लोबलाइजेशन से हमारे समाज में सकारात्मक बदलाव भी कुछ कम नहीं हुआ।

15.4 भारतीय साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता

हिंदी पत्रकारिता का उद्भव 30 मई, 1826 को कोलकाता में युगल किशोर शुक्ल के 'उदन्त मार्तण्ड' के प्रकाशन के साथ हुआ। 'उदन्त मार्तण्ड' का ध्येय वाक्य था-सूर्य के प्रकाश के बिना जिस तरह अंधेरा नहीं मिटता, उसी तरह समाचार-सेवा के बिना अज्ञानी जन जानकार नहीं बन सकते। यानी हिंदी

पत्रकारिता के सूत्रधारों को इसके मर्म की भलीभांति जानकारी थी। पीढ़ी दर पीढ़ी संपादकों ने पत्रकारिता के मानक गढ़े। समाज के सुख-दुख में भागीदारी करते हुए उन्होंने सामाजिक सरोकार को वरीयता दी। लेकिन समाज की तुलना में राष्ट्र की भावना उस दौर में स्वाभाविक ही अधिक थी। इसलिए अंगरेजों की अन्यायपूर्ण नीति के विरोध को उन्होंने ज्यादा महत्व दिया। हालांकि उन्हें इसका भलीभांति अहसास था कि ब्रिटिशों के छल-छद्म, उनकी शोषणकारी नीतियों की कलई खोलने पर नतीजा भुगतने के लिए भी तैयार रहना पड़ेगा। इसके अलावा स्त्री-जागरूकता, जातिप्रथा और छूआछूत-विरोध को भी अखबारों में जगह मिली। चूंकि उन्नीसवीं शताब्दी में ही बंगाल को छोड़कर पूरे देश में नवजागरण हुआ, इसलिए उस दौर के समाचारपत्रों में नवजागरण का संदेश मिलता है। उस समय एक ओर पत्रकारिता में जहां विचार-स्वातंत्र्य की नींव पड़ी, वहीं आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था की शुरुआत से जनजागृति आई।

इस युग ने पत्रकारिता को व्यापक साहित्यिक-सांस्कृतिक कर्म के रूप में भी स्थापित करने का काम किया। इसी युग में भाषा के स्तर पर हिंदी अधिक से अधिक रचनात्मक और संप्रेषणीय हो पाई। हिंदी ने अपने विभिन्न स्थानीय स्रोतों से शब्द लेकर खुद को समृद्ध करना शुरू किया। भोजपुरी, अवधी, बुंदेली, ब्रज, राजस्थानी, मारवाड़ी, मालवी, मैथिली, मगही, कौरवी जैसी उपभाषाओं के शब्दों-मुहावरों से हिंदी भाषा और इसकी पत्रकारिता का विकास हुआ। इस दौर में साहित्य की जनपक्षधरता लौटी, तो सांस्कृतिक स्तर पर जनता की अभिव्यक्ति भी संभव हुई। इस दौर की पत्र-पत्रिकाएं नवजागरण, छायावाद, प्रगतिवाद जैसे साहित्यिक दौरों का गवाह बनीं, तो नाटक, कला, नृत्य, संगीत जैसी कलाओं की भागीदारी भी इसी दौर में संभव हुई। इस युग की पत्रकारिता स्पष्ट अर्थों में साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता की समृद्ध पृष्ठभूमि बनी। इस पूरे दौर में जिन महानुभावों ने साहित्यिक सांस्कृतिक पत्रकारिता को नई दिशा दी, उनमें भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, महात्मा गांधी, माखनलाल चतुर्वेदी, प्रेमचंद, गणेशशंकर विद्यार्थी, बाबूराव विष्णु पराड़कर आदि प्रमुख थे।

भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885) **:** भारतेंदु हिंदी साहित्य और पत्रकारिता के पितामह थे। उन्होंने साहित्य को जहां रीतिकालीन रूढ़ियों से मुक्त किया, वहीं पत्रकारिता को समसामयिक बनाया, उसे देशभक्ति से ओत-प्रोत किया। कविवचनसुधा के जरिये हिंदी पत्रकारिता में एक नए युग का सूत्रपात हुआ, तो स्त्री जागरण के लिहाज से बालाबोधिनी पत्रिका का जवाब नहीं था। बाद की पत्रकारिता में सत्ता से टकराने का जो जुनून पैदा हुआ, उसके पीछे भारतेंदु का योगदान सर्वाधिक है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864-1938) **:** प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका सरस्वती का 17 वर्षों तक संपादन करने वाले महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिंदी भाषा का प्रसार करने के साथ पाठकों के रुचि परिष्कार और

उनके ज्ञानवर्द्धन में योगदान किया। भारतेंदु युग में लेखकों की दृष्टि शुद्धता की ओर नहीं थी, जिसे देखते हुए द्विवेदी जी ने भाषा को शुद्ध करने का संकल्प लिया। उनका समय हिंदी के कलात्मक विकास का नहीं, हिंदी के अभावों की पूर्ति का था। हिंदी गद्य और पद्य की भाषा एक करने के लिए उन्होंने प्रबल आंदोलन चलाया। उन्हीं के प्रयास से हिंदी में अन्य भाषाओं के ग्रंथों का अनुवाद शुरू हुआ।

महात्मा गांधी (1869-1948) **:** गांधी जी की पत्रकारिता सच्चाई, अच्छाई और अहिंसा की पत्रकारिता है। उनका कहना था, पत्रकारिता का लक्ष्य आजीविका कमाना नहीं, बल्कि लोक शिक्षण है। देशप्रेम और राष्ट्रीयता से ओतप्रोत उनकी पत्रकारिता में समाज के कमजोर तबकेकी चिंता है। राजनीतिक गुलामी से मुक्ति और समाज सुधार के लक्ष्यों के बीच उनकी पत्रकारिता में साहित्य-संस्कृति की चिंता न के बराबर ही रही।

माखनलाल चतुर्वेदी (1889-1968) **:** राष्ट्रीय आंदोलन, खासकर महात्मा गांधी के दौर में पत्रकारिता करने वाले माखनलाल चतुर्वेदी ने असंतोष और पीड़ा को स्वर दिया। कर्मवीर ने स्वाधीनता आंदोलन की आंच तेज करने में अग्रणी भूमिका निभाई। निर्भीकता उनकी पत्रकारिता की विशेषता थी। कर्मवीर जिस भाषा में अंगरेजी राजसत्ता से संवाद कर रहा था, उससे अनुमान लगाया जा सकता है कि भारतीय जनमानस में आजादी पाने की ललक कितनी तेज थी। अपनी पत्रकारिता के माध्यम से साहित्य, कला और संस्कृति को भी उन्होंने महत्व दिया।

प्रेमचंद (1880-1936) **:** माधुरी, हंस और जागरण जैसी पत्रिकाओं के जरिये प्रेमचंद ने राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक असमानता, शोषण और अंगरेजों की दासता से मुक्ति हेतु जागृत किया। प्रेमचंद का समय गांधी के अहिंसात्मक युद्ध का समय था। हंस के अपने पहले संपादकीय (10 मार्च, 1930) में उन्होंने लिखा था-'*हंस भी मानसरोवर की शांति छोड़कर अपनी नन्ही-सी चोंच में चुटकी भर मिट्टी लिए हुए समुद्र पाटने, आजादी की जंग में योगदान देने चला है।*...साहित्य और समाज में वह उन गुणों का परिचय करा ही देगा, जो परंपरा ने उसे प्रदान किए हैं।' उनकी संपादकीय टिप्पणियों में प्रखर राष्ट्रीय चेतना थी, जिस कारण उन्हें अंगरेजों का कोपभाजन भी बनना पड़ा।

गणेश शंकर विद्यार्थी (1890-1931) **:** विद्यार्थी जी ने अपनी पत्रकारिता के जरिये जनता और बुद्धिजीवियों में नया जोश भरा और आजादी की लड़ाई लड़ रहे लोगों को नया रास्ता दिखाया। कहा जाता है कि आजादी की लड़ाई को तेज करने में कानपुर के प्रताप कार्यालय का योगदान बहुत अधिक था। उस समय देश का ऐसा कोई आंदोलन नहीं था, जिसने विद्यार्थी जी से प्रेरणा न पाई हो। देश में

जागरूकता लाने के लिए उन्होंने 'प्रकाश पुस्तकमाला' का आयोजन किया और देश-विदेश के क्रांतिकारियों की जीवनी प्रकाशित की। क्रांतिकारी भगत सिंह ने भी कुछ समय तक 'प्रताप' में काम किया था।

बाबूराव विष्णु पराड़कर (1890-1955) **:** हिंदी बंगवासी, हितवार्ता, भारतमित्र जैसे अखबारों में काम कर चुके बाबूराव विष्णु पराड़कर ने बनारस से दैनिक आज का संपादन करते हुए उन्होंने इस अखबार का इस्तेमाल तलवार की तरह किया। उन्होंने हिंदी भाषा को सैकड़ों नए शब्द दिए। उनके लिखने की अपनी विशिष्ट शैली थी और हिंदी पत्रकारिता को उन्होंने स्वर्णिम ऊंचाई दी। वह हिंदी साहित्य और पत्रकारिता के सेतु पुरुष थे।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय पत्रकारिता

हिंदी पत्रकारिता ने स्वतंत्रता संग्राम के समय जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सवाल उठाए थे, उन्हें ही अपनी परंपरा और चिंतन का केंद्र बनाया। छोटे और व्यक्तिगत प्रयासों से लेकर बड़े संस्थागत अखबारों ने जन्म लिया। हिंदी में 'भारत', 'अमृत पत्रिका', 'आज', 'अभ्युदय', 'चेतना', 'हिंदुस्तान' 'जागरण' 'अमर उजाला', 'भास्कर', 'नवजीवन', 'नवभारत टाइम्स', 'लोकसत्ता', 'जनसत्ता' जैसे महत्वपूर्ण दैनिक निकलने लगे। कई साप्ताहिक और पाक्षिक भी निकलने शुरू हुए। भारतीय गणतंत्र ने अपने लिए जो मूल्य और आदर्श अंगीकार किए थे, पत्रकारिता ने उन्हें ही प्रस्थापित किया। आजादी के तत्काल बाद साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता का एक नया युग शुरू हुआ। अज्ञेय के नेतृत्व में दिनमान और डॉ. धर्मवीर भारती के दिशा-निर्देश में धर्मयुग जैसे समाचार-संस्कृति के साप्ताहिकों ने नया इतिहास रच दिया। इसी तरह मनोहरश्याम जोशी और हिमांशु जोशी ने साप्ताहिक हिंदुस्तान, प्रेमचंद के दोनों बेटों श्रीपतराय और अमृतराय ने क्रमशः कहानी और हंस, हैदराबाद से बद्री विशाल पित्ती के नेतृत्व में कल्पना, कोलकाता से भारतीय ज्ञानपीठ के लक्ष्मीचंद जैन-शरद देवड़ा ने ज्ञानोदय और पटना से उदयराज सिंह-रामवृक्ष बेनीपुरी ने नई धारा का प्रकाशन शुरू किया। इसके अलावा नई कहानियां, सारिका, सर्वोत्तम, कादंबिनी, नवयुग, हिंदी ब्लिट्ज जैसे पत्रकारिता के नए प्रतिमान आए। इंडिया टुडे और आउटलुक जैसी पत्रिकाओं ने बाद के दौर में कंटेंट और तकनीक, दोनों के लिहाज से पत्रकारिता की धारा बदली। लघु पत्रिकाओं का तो जैसे आंदोलन ही चल पड़ा। वैचारिक और परिवर्तनकामी इन पत्रिकाओं में पहल, आलोचना, समकालीन तीसरी दुनिया, उद्भावना, वर्तमान साहित्य, हंस, कथादेश, नया ज्ञानोदय, शेष, तद्भव, वागर्थ जैसी पत्रिकाओं में से ज्यादातर चल रही हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी पत्रकारिता साहित्य से उतनी ओतप्रोत भले न रही, लेकिन साहित्य और संस्कृति के मुद्दे पर उसने लगातार आवाज उठाई। हिंदी को राजभाषा बना देने के बावजूद जिस तरह उसका विरोध शुरू हो गया था और सरकार अपना दामन बचाने लगी थी, उससे हिंदी पत्रकारिता क्षुब्ध थी। इसी दौर में 'कल्पना' जैसी साहित्यिक पत्रिका आई, जिसका उद्देश्य पत्रिका की संख्या बढ़ाना या ग्राहकों का मनोरंजन करना नहीं, बल्कि हिंदी के स्तर को उन्नत करना था। इसी तरह 'प्रतीक 'ने परंपराओं के तिरस्कार और खंडन को नकारा, तो 'आलोचना' ने साहित्यिक प्रयोगों की आलोचना की। इस दौर की साहित्यिक पत्रकारिता ने पंचवर्षीय योजना को महत्व दिया, तो खेती-किसानी पर भी कलम चलाई। इसी युग में कला समीक्षा का विधिवत सूत्रपात हुआ। सिनेमा, संगीत, नृत्य, नाटक तथा रूपंकर कला की समीक्षा अपनी संपूर्णता में सच हुई। सूजा के चित्रों से लेकर 'मदर इंडिया' की समीक्षा तक, जीवन में संगीत के महत्व से लेकर समाज और नृत्य जैसे विषयों पर विमर्श हुए।

रघुवीर सहाय ने कल्पना में फिल्मों की समीक्षाएं लिखीं, तो अज्ञेय और श्रीकांत वर्मा जैसे लेखकों ने कलाओं पर लिखा। इस दौर में धर्मयुग और दिनमान ने साहित्यिक-सांस्कृतिक मोर्चे पर सबसे अधिक सक्रियता दिखाई। दिनमान सरकार की भाषा नीति के खिलाफ खड़ी हुई, तो धर्मयुग अंगरेजी के विरोध में मुखर हुई। इन दोनों ही पत्रिकाओं ने नाटकों की स्थिति पर लिखा। इनका सवाल था कि हिंदी के नाटकों में नए प्रश्नों, विचारों और चिंताओं को जगह क्यों नहीं मिलती। धर्मयुग ने बांग्लादेश युद्ध के दौरान महत्वपूर्ण कलाकारों की कृतियों का उपयोग अपने पन्नों पर किया, तो दिनमान ने भारतीय कला की आधुनिकता पर बहसें चलाई। इस दौर में पूरी तरह नाटकों पर केंद्रित 'नटरंग' जैसी पत्रिका शुरू हुई, तो सिनेमा, नाटक, कला, नृत्य-संगीत पर 'पूर्वग्रह' जैसी पत्रिका निकलने लगी। 'देशबंधु' जैसे अखबार ने फिल्म समीक्षा को समाज से जोड़ा, तो 'नई दुनिया' ने सांस्कृतिक गंभीरता बनाए रखकर साहित्य और अन्य कलाओं की मीमांसा पर बल दिया, जबकि 'रविवार' ने हिंदी सिनेमा पर बहस को संभव बनाया।

दिनमान - दिनमान के माध्यम से अज्ञेय ने हिंदी पत्रकारिता को भाषा और ऐतिहासिक आयाम दिए। यह अज्ञेय जी की दृष्टि का ही परिणाम था कि रघुवीर सहाय, मनोहरश्याम जोशी, श्रीकांत वर्मा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और प्रयाग शुक्ल जैसे साहित्यिकार दिनमान से जुड़े। दिनमान ने हिंदी पत्रकारिता को नई भाषा के साथ खबरों के प्रस्तुतिकरण की एक नई कला दी। इसकी राजनीतिक प्रतिबद्धता पर तरह-तरह की चर्चाएं होती थीं। कोई इसे कांग्रेस की पत्रिका बताता था, तो किसी के मुताबिक यह समाजवादी रुझानों की पत्रिका थी। दिनमान में कला-साहित्य का पन्ना सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर

सहाय और श्रीकांत वर्मा देखते थे तो राजनीति का पन्ना बनवारी जी के जिम्मे था, जबकि कानून जैसे मुद्दे पर लक्ष्मीमल्ल सिंघवी लिखा करते थे। संपादक रहते हुए अज्ञेय इसमें न के बराबर लिखते थे। इसके पिछले सप्ताह कॉलम में देश-विदेश की महत्वपूर्ण घटनाओं पर संक्षेप में सटीक टिप्पणी होती थी तो चर्चे और चर्खे में समसामयिक मुद्दों पर महत्वपूर्ण टिप्पणियां की जाती थीं, जबकि संपादकीय गंभीर विश्लेषण करता दृष्टिसंपन्न नजरिया होता था। इसके हर अंक के आखिरी पन्ने पर एक विदेशी कविता अनूदित होकर छपती थी। दिनमान की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि इसने अपने पाठकों को जागरूक और दृष्टिसंपन्न बनाया। अनेक लोग दिनमान से दीक्षित होकर पत्रकार बने।

धर्मयुग : (1947-1989) धर्मवीर भारती ने धर्मयुग के जरिये पत्रकारिता को साहित्य से जोड़ा और इस मिथ को दूर किया कि साहित्य सामान्य व्यक्ति का विषय नहीं हो सकता। उन्होंने देश के सर्वश्रेष्ठ लेखकों को छापने की एक नई परंपरा शुरू की। सांस्कृतिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक जानकारियों के साथ आर्थिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक सामग्रियों के साथ धर्मयुग में बच्चों और महिलाओं के लिए भी रोचक-ज्ञानवर्द्धक जानकारियां होती थीं। कन्हैया, रवींद्र कालिया, प्रमोद शंकर, योगेंद्र कुमार लल्ला, मनमोहन सरल, सुरेंद्र प्रताप सिंह आदि को शुरुआती पहचान धर्मयुग ने ही दी। आबिद सुरती ने धर्मयुग के लिए आम आदमी को चित्रित करती एक कार्टून स्ट्रिप (कार्टून कोना/ढब्बूजी) बनाई थी। पत्रिका का स्तर गिराए बिना उसे उत्तरोत्तर लोकप्रिय बनाना भारती जी से ही संभव था। इसमें एक ओर तीर और तुक्का जैसे कॉलम प्रकाशित होते थे, काका हाथरसी की कविताएं छपती थीं, तो दूसरी ओर कला वीथिका में विभिन्न कला-अनुशासनों के व्यक्तित्वों को एक मंच पर लाकर बहस करवाने का गंभीर कर्म भी होता था। व्यावसायिक लाभ-हानि के गणित के बीच ही धर्मयुग में कहानी, नई कविता, अकविता, नवचिंतन, नए सिनेमा पर सार्थक बहसें हुईं। समसामयिकता धर्मयुग का बड़ा गुण था। उसकी प्रसार संख्या सर्वाधिक तब हुई, जब अमेरिका चांद पर आदमी उतारने वाला था और धर्मयुग उसकी ब्योरेवार जानकारी दे रही थी। बांग्लादेश युद्ध में तो भारती जी ने स्वयं जाकर रिपोर्टिंग की थी। इस पत्रिका में सौर ऊर्जा के लिए भी जगह थी और पाक कला के लिए भी गुंजाइश। उस दौर में छपाई के साधन इतने उन्नत नहीं थे, फिर भी धर्मयुग न सिर्फ समय पर आती थी, बल्कि उसमें भाषा और वर्तनी की अशुद्धि भी नहीं होती थी। उस दौर में धर्मयुग में छपना गौरव की बात माना जाता था।

सारिका : टाइम्स ऑफ इंडिया ग्रुप की हिंदी कहानी की इस पत्रिका के शुरुआती संपादक हालांकि मोहन राकेश थे, लेकिन इसे प्रसिद्धि की ऊंचाई पर कमलेश्वर ने पहुंचाया। कमलेश्वर ने इसके संपादन के

साथ-साथ 'समांतर कहानी' आंदोलन चलाया, जिसमें मराठी के दलित आंदोलन को शामिल कर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया। सारिका के संपादन के दौरान कमलेश्वर ने तीखे तेवर दिए और साहित्य व पत्रकारिता के बीच बारीक लकीर खींच दी। उनके दिशा-निर्देश में सारिका सामान्य जन के संघर्ष का शंखनाद कर चुकी थी और उनके संपादकीय आम आदमी को समर्पित होते थे। इस पत्रिका में कमलेश्वर ने लेखकों के संघर्ष को चित्रित करता स्तंभ गर्दिश के दिन छापा, जो बेहद चर्चित हुआ। आपातकाल के दौरान कमलेश्वर ने सरकारी पक्ष के बहिष्कार की एक नई तकनीक ईजाद दी। सारिका के पन्नों के उन अंशों को तब सरकारी नौकरशाही के सामने रखने के बजाय काली स्याही से ढककर अपना विरोध दर्ज किया था। सारिका का महत्व इसमें है कि उसने चर्चित विदेशी कहानियों का अनुवाद कर उसे हिंदी पाठकों के लिए पेश किया। उसके कई विशेषांक बेहद चर्चित हुए। लघुकथा को एक साहित्यिक विधा के रूप में महत्व भी सबसे पहले सारिका ने ही दिया।

रविवार : 'दिनमान' की विचार पत्रकारिता को रविवार ने खोजी पत्रकारिता और स्पॉट रिपोर्टिंग से नया विस्तार दिया। इसके पहले संपादक सुरेंद्र प्रताप सिंह थे। राजनीतिक-सामाजिक हलचलों के असर का सटीक अंदाजा लगाना और सरल-समझ में आने वाली भाषा में साफगोई से उसका खुलासा करके रख देना एसपी की पत्रकारिता की शैली था। आधुनिक हिंदी पत्रकारिता का बीज रविवार में था। उन दिनों हिंदी के अखबार अनुवाद के अखबार हुआ करते थे और साहित्य को छोड़कर सब कुछ अनूदित होता था। उस दौर में हिंदी के अखबारों के लिए अलग से रिपोर्टर नहीं रखे जा सकते थे-और न ही हिंदी में फील्ड रिपोर्टिंग जैसी कोई परंपरा थी। पीआईबी (प्रेस इनफॉरमेशन ब्यूरो) और हिंदी की समाचार एजेंसियों के भरोसे हिंदी पत्रकारिता चलती थी। रविवार ने नई शुरुआत की। अब हिंदी के पत्रकार रिपोर्टिंग के लिए फील्ड में जाने लगे। उस दौर में सांप्रदायिक दंगों की खतरनाक रिपोर्टिंग उदयन शर्मा और संतोष भारतीय ने की। उदयन शर्मा की हिंदी रिपोर्ट्टों का अनुवाद अंगरेजी संडे में छपने लगा। हिंदी पत्रकारिता के लिए इस तरह का यह पहला ही उदाहरण था। माया त्यागी मामले में उदयन शर्मा की रिपोर्ट ने हिंदी के पाठकों को झकझोर दिया था। रविवार में उनका कॉलम प्रथम पुरुष बहुत लोकप्रिय था। बाद में उदयन जी रविवार के संपादक बने।

पहल : चर्चित कथाकार ज्ञानरंजन ने जब पहल का प्रकाशन शुरू किया था, तब अधिकांश साहित्यिक पत्रिकाएं बंद हो चुकी थीं। साहित्य के अलावा इसने दूरगामी महत्व के तमाम समसामयिक मुद्दों, जैसे सांप्रदायिकता, भूमंडलीकरण, आर्थिक उदारवाद को जगह दी। मनोरंजन के बजाय सोचने की नई दृष्टि प्रदान करने वाली हिंदी की इस अनूठी पत्रिका ने विश्व साहित्य के क्षेत्र में विलक्षण काम किया, चाहे वह

पाकिस्तान का साहित्य हो या बांग्लादेश का या अफ्रीकी देशों का। पहल वाकई इस उपमहादेश में वैज्ञानिक नजरिये के लिए अनिवार्य पत्रिका थी।

जनसत्ता : जनसत्ता का प्रकाशन हिंदी पत्रकारिता में एक नया प्रयोग था। प्रभाष जोशी के नेतृत्व में शुरू हुए इस अखबार ने साहित्य तथा कलाओं के विकास को अपना मुख्य लक्ष्य माना और पीत पत्रकारिता के खिलाफ भी मुहिम चलाई। जनसत्ता की सफलता में विवेकसम्मत दृष्टि के अलावा उसकी खनकती भाषा का भी योगदान रहा। इसने देशज भाषा के नए प्रयोग किए। इस अखबार ने हिंदी की विचारपरक पत्रकारिता की विस्मृत परंपरा को पुनर्जीवित किया। नवें दशक में यह हिंदी का अकेला अखबार था, जिसने कलाओं पर पूरा एक पृष्ठ निकाला। किताबों के लिए भी इसने पूरा पेज दिया। जनसत्ता ने हिंदी पत्रकारिता की भाषा बदली, तेवर बदले और उसे अंगरेजी पत्रकारिता के बराबर ला खड़ा किया। कविता को सर्वाधिक महत्व देने वाले हिंदी के इस अखबार ने आधुनिक हिंदी साहित्य के मिजाज को भी प्रभावित किया। आधुनिक चित्रकला, संगीत और रंगमंच को जनसत्ता में आज भी जगह मिलती है।

हंस : अगस्त-1986 से अब तक । प्रेमचंद की मौत के पचास साल बाद राजेंद्र यादव ने जब उनकी पत्रिका हंस को पुनर्जीवित करने का बीड़ा उठाया, तब बहुतों को संदेह था कि साहित्यिक पत्रिकाओं के अप्रासंगिक होते जाने के इस दौर में हंस जैसी पत्रिका टिक भी पाएगी या नहीं। लेकिन यह पत्रिका आज 25 साल पूरे कर चुकी है। हंस ने साहित्यिक पत्रकारिता को नया अर्थ देने की कोशिश की। हंस में छपी कहानियां, लेख और संस्मरण हिंदी पट्टी में सनसनी पैदा करते रहे हैं। पिछले ढाई दशकों में हिंदी की महत्वपूर्ण कहानियां हंस में ही छपी हैं। इसने उन तमाम सामाजिक-राजनीतिक मुद्दों पर सवाल उठाए, जो किसी न किसी रूप में साहित्य और समाज को प्रभावित कर रहे थे। इसी दौर में बिहार और उत्तर प्रदेश की बागडोर पिछड़ों-दलितों के हाथों में गई और हंस ने इन राज्यों में बौद्धिक खुराक देने का काम किया। आज महिला, दलित और पिछड़े साहित्य के केंद्र में हैं, तो इसका कुछ श्रेय हंस को भी है। उत्तर यथार्थवाद, दलित विमर्श, स्त्री विमर्श आदि जुमले इसी ने चलाए। हंस ने स्थापित मूल्यों पर सवाल उठाए। इसने चार पीढ़ियों को साहित्य में दीक्षित करने का काम किया।

15.5 साहित्यिक पत्रकारिता के रूप

कहानी : कहानी का मौजूदा स्वरूप पश्चिम में विकसित हुआ है, जहां एडगर एलन पो, मोपासां और चेखव आदि ने इसे आधुनिक रूप दिया। आधुनिक काल में यहां इसकी शुरुआत के साथ ही इसे हाथोंहाथ लिया गया। साहित्य की यह सबसे लोकप्रिय विधा है और हर दौर में सबसे ज्यादा पढ़ी जाती

रही है। प्रेमचंद, जैनेंद्र कुमार, अज्ञेय, मोहन राकेश, कमलेश्वर, शैलेश मटियानी, विद्यासागर नौटियाल, संजीव, उदय प्रकाश तक कथाकारों की कई पीढ़ियां यहां हो चुकी हैं। कहानी एक ऐसी साहित्यिक विधा है, जिसे मीडिया भी महत्व देता है।

कविता : साहित्य की किसी एक विधा ने अगर पत्रकारिता को सर्वाधिक प्रभावित किया है, तो वह कविता है। कविता अपने मनोभावों को व्यक्त करने का माध्यम है। दुनिया की हर भाषा में अभिव्यक्ति का पहला माध्यम कविता ही है, गद्य बाद की खोज है। कई बार कविता वैयक्तिक और जटिल भी हो जाती है। लेकिन अच्छी और सार्थक कविता हमेशा अपने समय से संवाद करती है। रवींद्रनाथ ठाकुर ने कविता में आधुनिक नजरिये की जो शुरुआत की, वह हिंदी में भी लगातार जारी रही। आधुनिक हिंदी कविता की शुरुआत निराला से होती है, जो अज्ञेय, मुक्तिबोध, नागार्जुन और शमशेर में अपनी पूर्णता को प्राप्त करती है। कथ्य की नई जमीन की दृष्टि से देखें, तो समकालीन हिंदी कविता भी काफी समृद्ध है।

संस्मरण : संस्मरण का अर्थ संपूर्ण स्मृति। एक साथ जीने और बीतने में मिला भाव संस्मरण लिखने की भावभूमि होता है। संस्मरण में रचनाकार खुद को भी प्रकाशित करता चलता है। आम तौर पर व्यक्ति या तो अपने मित्रों, परिचितों पर संस्मरण लिखता है या फिर ऐसे सम्मानित व्यक्तियों पर, जिनका सहयोग लेखक के अपने व्यक्तित्व को भी संवारता है, इसलिए वे उसकी स्मृति का एक अभिन्न हिस्सा बन जाते हैं। उपेंद्रनाथ अश्क ने मंटो मेरा दुश्मन जैसी एक कालजयी किताब लिखी है, जिसमें संस्मरणों के जरिये मंटो को बेहतर जाना जा सकता है। हिंदी में संस्मरण लिखने वालों की एक लंबी सूची है, लेकिन इसे हिंदी की केंद्रीय विधा बनाने में महादेवी वर्मा, कान्तिकुमारजैन और काशीनाथ सिंह जैसों का योगदान औरों से ज्यादा है। 'स्मृति की रेखाएं', 'अतीत के चलचित्र' और 'पथ के साथी' महादेवी वर्मा की चर्चित संस्मरण पुस्तकें हैं। महादेवी जी के संस्मरणों में करुणा, संवेदना और लयात्मकता के साथ गहरे सामाजिक सरोकार भी हैं। अब तो बात फैल गई और बैकुंठपुर में बचपन उनकी चर्चित किताबें हैं। रोचकता और तुर्शी उनके संस्मरणों की विशिष्टताएं हैं। काशीनाथ सिंह ने लेखन के नए ढंग, बेबाक अंदाज और दुस्साहसी भाषा से संस्मरणों का एक नया क्षितिज खोला। काशी का अस्सी और रेहन पर रग्घू में उन्होंने बनारस और अस्सी को नितांत आत्मीय और बेलौस अंदाज में पेश किया है।

डायरी : डायरी एक तरल विधा है। यह बहुत व्यक्तिगत होती है। लेकिन निरंतरता का प्रवाह ही उसे रोचक और महत्वपूर्ण बनाता है। डायरी में चूंकि निजता होती है, इसलिए उसकी भाषा अंतर्मुखी होती है। डायरी मूलतः पश्चिम की विधा है। विलियम वड्सवर्थ की बहन डोरोथी वड्सवर्थ, वर्जीनिया वुल्फ, एन फ्रेंक (द डायरी ऑफ ए यंग गर्ल), दोस्तोवस्की, फ्रांज काफ्का ने डायरी विधा को नई पहचान दी।

बल्कि काफ्का की डायरियों के छपने के बाद साहित्य में इस विधा को व्यापक स्वीकृति मिली। हिंदी में अज्ञेय के अलावा शमशेर और मलयज की डायरियां काफी प्रसिद्ध हुई हैं। मुक्तिबोध ने एक साहित्यिक की डायरी जैसी किताब लिखी। अनीता राकेश ने अपने पति मोहन राकेश पर चंद सतरें जैसी डायरी लिखी। जाबिर हुसैन ने डायरी विधा में अभिनव प्रयोग किया है, जो अपनी प्रस्तुति, शैली और शिल्प में नवीन है। हाल के वर्षों में डॉ. नरेंद्र मोहन की साथ-साथ मेरा साया, पुष्पराज की नंदीग्राम डायरी, सुधीर विद्यार्थी की लौटना कठिन है और दामोदर दत्त दीक्षित की अटलांटिक-प्रशांत के बीच जैसी कुछ डायरियां आई हैं।

सांस्कृतिक पत्रकारिता के रूप :

मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत कला, नाटक और फिल्में भी सांस्कृतिक पत्रकारिता के रूप हैं। ये सभी कला रूप हमारे समाज को प्रभावित करते हैं। ये हमारी सांस्कृतिक विरासत हैं और इनका स्वरूप समय के अनुसार बदलता जाता है। मूर्तिकला या चित्रकला का जो स्वरूप कुछ दशक पहले तक था, वह आज नहीं है। नाटकों में पारसी रंगमंच के वर्चस्व के पुराने दौर से आज हम बहुत आगे निकल गए हैं। जो संगीत कला कभी राजघरानों के संरक्षण का मोहताज थी, वह आज व्यावसायिक दोहन के चरम पर पहुंच गया है। कभी बेहतरीन गायक चर्चा और संरक्षण के अभाव में खो जाते थे, आज स्थानीय स्तर की गायन प्रतिभाएं चर्चा और प्रसिद्धि पा जाती हैं। इसी तरह फिल्में लगातार बदलाव के दौर से गुजरती रही हैं।

15.6 साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता

समसामयिक राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को बहुत प्रभावित करती है। हिंदी पत्रकारिता का इतिहास उठाकर देखें, हर युग की साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता ने समसामयिक परिदृश्य को प्रभावित किया है। उदाहरण के लिए, भारतेंदुयुगीन पत्रकारिता ने सामाजिक मजबूती और स्त्री सशक्तीरण के पक्ष में माहौल बनाया, तो गणेश शंकर विद्यार्थी के दौर की पत्रकारिता ने जनमत को क्रांति का समर्थक बनाया, तो प्रेमचंद की पत्रकारिता ने लोगों में देशभक्ति और गुलामी के विरोध को स्वर दिया। आज चूंकि साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता के स्वर खुद मंद पड़ गए हैं, ऐसे में समाज पर उनके प्रभाव की बहुत उम्मीद नहीं की जा सकती। आज न तो सामाजिक मूल्यों की किसी को परवाह है, न पत्रकारीय मूल्यों की। यहां तक कि पत्रकारीय तटस्थता और निरपेक्षता का आग्रह भी कम से कम होता गया है। इस दौर में बेशक मीडिया को साहित्य और संस्कृति से अपना पुराना रिश्ता बहाल

करना होगा। लेकिन साहित्य की दुनिया में भी आज पहले जैसी स्थिति नहीं है। पहले साहित्य समाज के आग-आगे चलने वाली मशाल था, आज साहित्य में बदलाव के स्वर कम ही सुनाई पड़ते हैं। प्रगतिशीलता की जगह जड़ता ने ले ली है।

15.7 लोकतंत्र, सामाजिक आंदोलन और मीडिया

भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में आजादी के बाद सामाजिक आंदोलन हालांकि कम ही हुए हैं। लेकिन जितने भी आंदोलन हुए, मीडिया ने उन सबको समुचित महत्व दिया। हालांकि मीडिया की यह व्यापकता पहले इतनी नहीं थी। आपातकाल के विरोध में जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में खड़ा हुआ आंदोलन आजाद भारत में सबसे बड़ा जनांदोलन था। लेकिन आपातकाल में मीडिया पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। टेलीविजन चैनल तब नहीं आए थे। इसलिए सरकारी दमन और गिरफ्तारियों से जुड़ी खबरों की सत्यता पर यकीन करने के लिए तब बीबीसी का सहारा लेना पड़ता था। नई अर्थनीति के आने से पहले पूंजी का इतना विस्तार नहीं हुआ था और न ही मीडिया इतना ताकतवर और सुदूरप्रसारी था। इसीलिए उस दौर के सामाजिक आंदोलन भी मीडिया में उतनी जगह नहीं बना पाए थे। उत्तराखंड में वनों की कटाई के खिलाफ पैदा चिपको आंदोलन ने तब मीडिया से ज्यादा जनमानस में जगह बनाई थी, तो इसकी वजह यही है। लेकिन उसी उत्तराखंड में डेढ़ दशक पहले शराब भट्ठियों के खिलाफ महिलाओं के आंदोलन ने मीडिया में अपनी सशक्त उपस्थित दर्ज की। अलबत्ता मीडिया की इस अति सक्रियता के अपने खतरे भी हैं। अन्ना आंदोलन इसका ताजा उदाहरण है। आंदोलन शुरू होते ही मीडिया खासकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने इसे हाइजैक कर लिया। उसने यह देखने की भी जहमत नहीं उठाई कि अन्ना आंदोलन के अपने अंतर्विरोध कम नहीं हैं। हालांकि तब भी प्रिंट मीडिया के एक बड़े हिस्से ने अपेक्षाकृत संयम बरता और विवेक का परिचय दिया। इस दौर में मीडिया पहले की अपेक्षा कहीं ताकतवर है। उसके पास संसाधन भी है और उसकी पहुंच भी बहुत व्यापक है। लेकिन इसके साथ-साथ उसकी चुनौतियां भी बढ़ गई हैं।

15.8.सारांश

साहित्य और संस्कृति हिंदी पत्रकारिता की मूल आत्मा रही है। इस कारण पत्रकारिता की शुरुआत के साथ ही जहां हमारे यहां सामाजिक जागरूकता और अंगरेजों के विरोध की भावना देखी गई, वहीं स्वतंत्रता के बाद इसने मोहभंग को रेखांकित किया। चाहे वह हिंदी को राजभाषा बनाने का मामला हो या अंगरेजी का विरोध-हिंदी पत्रकारिता ने लगातार सरकारी नीतियों पर सवाल खड़े किए। उस दौरान

सांस्कृतिक पत्रकारिता का भी उभार देखा गया। लेकिन धीरे-धीरे स्थिति बदलती चली गई। आज की हिंदी पत्रकारिता में न तो साहित्य का उतना दखल है और न ही संस्कृति का। बल्कि ग्लोबलाइजेशन ने हिंदी पत्रकारिता के सामने एक नई किस्म की चुनौती खड़ी कर दी है।

15.9 शब्दावली

साहित्यिक पत्रकारिता : साहित्यिक पत्रकारिता का मतलब है साहित्यिक विधाओं की पत्रकारिता। साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं को इस श्रेणी में रखा जाता है। इसके अंतर्गत कविता, कहानी, उपन्यास आदि के अलावा साहित्यिक बहसया विमर्श आते हैं। हिंदी में साहित्यिक पत्रकारिता का आधार बहुत मजबूत रहा है।

सांस्कृतिक पत्रकारिता - मोटे तौर पर इसमें विविध कला रूप, जैसे नाटक, कविता, चित्रकला, संगीत आदि आते हैं। इन पर निबंध या समीक्षा सांस्कृतिक पत्रकारिता कहलाती है। लेकिन इसकी परिधि इन सबसे कहीं व्यापक होती है। बड़े सांस्कृतिक सवाल भी सांस्कृतिक पत्रकारिता के तहत आएंगे।

ग्लोबलाइजेशन : ग्लोबलाइजेशन का शाब्दिक अर्थ है भूमंडलीकरण। वर्ष 1991 में हमारे यहां जो नई आर्थिक नीति लागू हुई, उसने देखते ही देखते पूरे परिदृश्य को बदल दिया। ग्लोबलाइजेशन से हमारा सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन पूरी तरह बदल गया।

सामाजिक आंदोलन : हमारे समाज में समय-समय पर मौजूदा प्रथाओं के खिलाफ असहमतियां बनती हैं, जो आंदोलन का रूप लेता है। आजादी से पहले सती प्रथा या बाल विवाह के खिलाफ आंदोलन चलते थे। आजादी के बाद सामाजिक आंदोलन बहुत कम हुए। नई अर्थनीति ने ऐसे आंदोलनों की रही-सही संभावना भी खत्म कर दी।

15.10 बोध प्रश्न तथा उनके उत्तर

प्रश्न 1- **हिंदी के पहले समाचार पत्र उदन्त मार्तण्ड का लक्ष्य क्या था**?

उत्तर- उदन्त मार्तण्ड का लक्ष्य हिंदी पाठकों को जागरूक बनाना था। उसका ध्येय वाक्य था-सूर्य के प्रकाश के बिना जिस तरह अंधेरा नहीं मिटता, उसी तरह समाचार-सेवा के बिना अज्ञानी जन जानकार नहीं बन सकते।

प्रश्न 2-हिंदी पत्रकारिता में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के योगदान के बारे में बताएं।

उत्तर- आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से पत्रकारिता को सांस्कृतिक अनुष्ठान में बदल दिया। उन्होंने नए-नए विषयों पर निबंध लिखवाकर ऐसे लेखकों की एक पीढ़ी तैयार की, जिसने आगे चलकर साहित्य और पत्रकारिता में अपनी जगह बनाई।

प्रश्न 3- '**रविवार**' **ने हिंदी पत्रकारिता को किस तरह बदला**?

उत्तर-'रविवार' ने हिंदी में पहली बार संवाददाताओं की नियुक्तियां कीं, जो घटनास्थल पर जाकर रिपोर्टिंग करते थे। 'रविवार' ने हिंदी पत्रकारिता को अंगरेजी के बराबर का महत्व दिया।

प्रश्न 4- **डायरी क्या है**?

उत्तर-डायरी मूलतः पश्चिम की विधा है। चूंकि इसमें निजता होती है, इसलिए इसकी भाषा अंतर्मुखी होती है। इसकी निरंतरता ही इसे लोकप्रिय बनाती है।

प्रश्न 5- **आज की हिंदी पत्रकारिता में साहित्य-संस्कृति की कितनी जगह है**?

उत्तर- समकालीन हिंदी पत्रकारिता में साहित्य-संस्कृति के लिए पहले जैसी जगह नहीं है। दरअसल ग्लोबलाइजेशन के बाद पत्रकारिता में इनकी गुंजाइश कम रह गई है।

15.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न-1 साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता के स्वरूप के बारे में बताएं।

प्रश्न-2 1991 के बाद भारतीय समाज पर ग्लोबलाइजेशन का क्या प्रभाव पड़ा?

प्रश्न-3 'दिनमान' और 'धर्मयुग' ने पत्रकारिता को किस तरह प्रभावित किया?

प्रश्न-4 लोकतंत्र, सामाजिक आंदोलन और मीडिया पर एक टिप्पणी लिखिए।

प्रश्न-5 प्रेमचंद के 'हंस' और राजेंद्र यादव के 'हंस' में क्या अंतर है?

15.12 संदर्भ ग्रंथ

1. जोशी ज्योतिष- साहित्यिक पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

2. श्रीधर विजयदत्त-पहला संपादकीय, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली।

3. जोशी पूरनचंद्र-परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

ईकाई-16

शिक्षा जगत और मीडिया

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 भारत में शिक्षा और साक्षरता की स्थिति

16.3 प्रिंट मीडिया में शिक्षा और शैक्षिक मुद्दे

16.4 शैक्षिक पत्रकारिता के रूप

16.5 शिक्षा और साक्षरता की स्थिति और मीडिया की भूमिका

16.6 साक्षरता के संदर्भ में भारतीय पत्रकारिता की चुनौतियां

16.7 सारांश

16.8 शब्दावली

16.9 बोध प्रश्न और उनके उत्तर

16.10 अभ्यास प्रश्न

16.11 संदर्भ ग्रंथ

16.0 उद्देश्य

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

●विद्यार्थियों को शिक्षा और साक्षरता की मौजूदा स्थिति से परिचित कराना.\विद्यार्थियों को शिक्षा और साक्षरता के विकास में मीडिया की भूमिका को परिचित कराना.

●विद्यार्थियों को साक्षर शैक्षिक पत्रकारिता की संभावनाओं से परिचित कराना

●विद्यार्थियों को हिंदी में शैक्षिक पत्रकारिता का विकास और मीडिया की संभावनाओं से परिचित कराना

16.1 प्रस्तावना

मीडिया अपने सभी रूपों में समाज के लिए उत्तरदायी है। लेकिन मीडिया की महत्ता और उपादेयता उसके रूपों और उसके लक्षित समूह के आधार पर तय होती है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, जिसमें मुख्यत: रेडियो और टेलीविजन आते हैं, ऐसे लक्षित समूह तक संदेश और सूचनाएं पहुंचा सकता है, जो साक्षर नहीं हैं। दृश्य और श्रव्य प्रधान माध्यम होने के कारण रेडियो और टेलीविजन माध्यम में संदेश और सूचनाएं सिर्फ दृश्य और श्रव्य तरीके से प्रसारित किए जाते हैं। लेकिन प्रिंट और इंटरनेट माध्यम के जरिए संदेशों और सूचनाओं को उन्हीं लक्षित समूहों तक पहुंचाया जा सकता है, जो साक्षर हों। इन अर्थों में जब हम शिक्षा और साक्षरता के संदर्भों में मीडिया की चर्चा करते हैं तो इसका महत्व और उद्देश्य व्यापक होता है। लेकिन प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक और इंटरनेट तीनों ही माध्यमों की अपनी-अपनी सीमाएं हैं और निश्चित तौर पर अपना लक्षित समूह भी। इन संदर्भों में शिक्षा और साक्षरता के संदर्भ में मीडिया की भूमिका अलग-अलग हो जाती है। इलेक्ट्रॉनिक माध्यम साक्षरता को बढ़ावा देने में सिर्फ सहयोगी की भूमिका निभा सकते हैं। लेकिन प्रिंट और इंटरनेट माध्यम अपने अक्षर आधारित दुनिया की वजह से साक्षरता को बढावा देने में भी भूमिका निभा सकते हैं। लेकिन जहां तक शिक्षा देने की बात है तो तीनों माध्यमों की भूमिका एक समान है। ये तो हुआ एक पक्ष। इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि भारत में तेजी से साक्षरता दर बढ़ रही है। इसके साथ ही करीब चौबीस करोड़ बच्चे या युवा स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ाई कर रहे हैं। ये बच्चे और नौजवान शैक्षिक पत्रकारिता के बड़े लक्षित समूह हो सकते हैं। भारत का शैक्षिक परिदृश्य बेहद व्यापक है। भारतीय शिक्षा में जितनी विविधता है, उतनी ही उलटबांसियां भी हैं। जाहिर है कि यह एक चुनौतीपूर्ण मसला भी है।

16.2 भारत में शिक्षा और साक्षरता की स्थिति

भारत में साक्षरता के तमाम दावों के बावजूद 26 करोड़ 80 लाख निरक्षर लोग रहते हैं, जो लिखने, पढ़ने में बिल्कुल असमर्थ हैं जो दुनिया कुल निरक्षर जनसंख्या का करीब एक तिहाई है। हमें ध्यान रखना चाहिए कि हम साक्षर किसे कहते हैं। भारत में 1911 की जनगणना के वक्त साक्षरता की जो

परिभाषा दी गई, उसके मुताबिक जो एक पत्र पढ़-लिखकर उसका उत्तर दे देने की योग्यता रखता हो, उसे साक्षर कहा जा सकता है। इसी परिभाषा के आधार पर अब तक साक्षरता को आंका परखा जा रहा है। विद्यालय जाने वाली 4 लड़कियों में से सिर्फ़ 1 ही दसवीं कक्षा तक की पढ़ाई पूरी कर पाती हैं। बाकी तीन बीच में ही पढाई छोड़ देती हैं। भारत में महिलायें औसतन 1.8 वर्ष की विद्यालयीन शिक्षा पातीं हैं | हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत शिक्षा पर अपने सकल घरेलू उत्पाद (डीजीपी) उत्पाद का केवल 3.3 प्रतिशत ही खर्च करता है, जबकि विकसित देश इसकी तुलना में कहीं ज्यादा 5.8 प्रतिशत खर्च करते हैं। भारतीय संविधान के तहत शिक्षा राज्य का विषय है। यही वजह है कि शिक्षा की हालत सुधारने के लिए केंद्र सरकार इसमें सीधे हस्तक्षेप नहीं कर सकती। इसकी वजह से कई बार अपेक्षित ढंग से योजनाएं लागू नहीं हो पाती। भारतीय शिक्षा व्यवस्था की एक खामी यह भी है कि अधिकतर राज्यों में शिक्षा के कुल बजट का 95 प्रतिशत शिक्षकों के वेतन पर ही खर्च हो जाता है, जबकि विद्यालय , अध्ययन सामग्री जैसे दूसरे जरूरी कामों के लिए बजट का महज एक फीसदी हिस्सा ही बाकी बचता है।

सरकारी स्कूलों में एक बड़ी कमी अनुशासन की है। इसके साथ ही अव्यवस्था और बदतर परिस्थितियों का भी बोलबाला है। इसकी वजह से अब भी 4 में से 1 अर्थात 25 प्रतिशत शिक्षक हमेशा कक्षा से अनुपस्थित रहते हैं। भारत में कक्षाओं की संरचना ऐसे की गई है, ताकि हर छात्र पर अध्यापक का पूरा ध्यान रहे। इसके लिए कक्षाओं में विद्यार्थियों की संख्या 40 रखी गई है। लेकिन बिहार समेत उत्तर भारत के कई राज्यों में औसतन एक कक्षा में 83 छात्र / छात्राएं हैं। हालांकि शिक्षा के अधिकार का कानून लागू होने के बाद देश में अध्यापकों की भर्ती में तेजी आई है। लेकिन इसके पहले तक 75 प्रतिशत विद्यालयों में कई कक्षाओं के लिए सिर्फ़ एक ही शिक्षक होता था। भारतीय शिक्षा की भयावहता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि सन् 2004 में स्कूल में भर्ती होने वाले 3 करोड़ 20 लाख बच्चों में से आधे भी 8 साल तक विद्यालय नहीं गए। इसके साथ ही भारत में बाल श्रमिकों की शिक्षा भी एक बड़ी समस्या है। एक आंकड़े के मुताबिक इन दिनों देश में 1 करोड़ 30 लाख बाल श्रमिक हैं |

वैसे यूनेस्को ने 1965 में ईरान की राजधानी तेहरान में निरक्षरता उन्मूलन के लिए पूरी दुनिया के शिक्षा मंत्रियों का सम्मेलन आयोजित किया था। इस सम्मेलन में तय किया गया कि साक्षरता ऐसी हो, जो मनुष्य सामाजिक, नागरिक व आर्थिक भूमिका निभाने लायक बना सके, सिर्फ पढऩा-लिखना सिखाना नहीं। इसके बाद भारत ने शिक्षा आयोग का गठन किया, जिसके अध्यक्ष (1964-66) डॉ. डी.एस.

कोठारी बनाए गए। इसीलिए इसे कोठारी आयोग भी कहते हैं। इस आयोग ने यूनेस्को की तर्ज के मुताबिक आयोग ने अपनी रिपोर्ट में औपचारिक शिक्षा अवसरों के माध्यम से अपना कौशल व शिक्षा बढ़ाने पर जोर देने लायक शिक्षा पर जोर दिया। आयोग ने विज्ञान को शिक्षा व संस्कृति की बुनियाद का अहम हिस्सा बनाने की भी सिफारिश की। जिनमें से ज्यादातर सिफारिशों को मान लिया और 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति वजूद में आई। इसी के अनुरूप स्कूली पाठ्यक्रमों में लड़कों व लड़कियों के लिए साझा योजना के साथ-साथ विज्ञान व गणित को अनिवार्य विषयों में शामिल कर लिया गया।

इसके अलावा कार्यानुभव को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। वैज्ञानिक साक्षरता का प्रमुख उद्देश्य था कि बच्चों को इस काबिल बना दिया जाए कि वे स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग और रोजमर्रा की जिंदगी के अन्य पहलुओं के साथ विज्ञान के संबंध को जान सकें। 1968 की नीति को तमाम कारणों से कार्यान्वित नहीं किया जा सका। इसका नतीजा यह हुआ कि अपव्यय, जड़ता, पहुंच, गुणवत्ता व वित्त से संबंधी जिन समस्याओं का पहले जिक्र किया गया था वे धीरे-धीरे फिर बढ़ गईं। इस पर राजीव सरकार ने ध्यान दिया और 1986 में नई शिक्षा नीति शुरू की गई। पहले जहां पंजीकरण पर ही केवल जोर था, वह अब पंजीकरण के साथ-साथ छात्रों को स्कूलों में बनाए रखने पर भी हो गया।

इसके साथ ही स्कूल प्रणाली के दायरे के बाहर रहे छात्रों और निरक्षरों के लिए सामाजिक व प्रौद्योगिक मिशन के तौर पर राष्ट्रीय साक्षरता अभियान 5 मई 1988 को शुरू किया गया। जिसका उद्देश्य 1995 तक आठ करोड़ निरक्षर प्रौढों को कारगर साक्षरता प्रदान करना। फिर भी साक्षरता और शिक्षा के लक्ष्यों को हासिल नहीं किया जा सका। लिहाजा 1998 में अटल बिहारी वाजपेयी सरकार ने सर्व शिक्षा अभियान की शुरूआत की। इसका मसौदा अक्टूबर 1998 में राज्यों के शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन की सिफारिश पर बनाया गया। इसके तहत केंद्र और राज्य सरकार के बीच 85 और 15 की भागीदारी के आधार पर थी, दसवीं योजना के दौरान 75 और 25 और इसके बाद 50 और 50 के आधार पर थी। इस कार्यक्रम में समूचे देश को शामिल किया गया है। जिसमें 12.3 लाख बस्तियों में 19.4 करोड़ बच्चों की जरूरतों को जोड़ा गया है। इसमें देश के सभी करीब 8.5 लाख प्राथमिक और अपर प्राथमिक स्कूल तथा करीब 33 लाख अध्यापकों को शामिल किया गया। भारत में शिक्षा व्यवस्था में बदलाव के लिए 2005 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद यानी एनसीईआरटी ने राष्ट्रीय पाठ्यक्रम पुनश्चर्या कार्यक्रम तैयार किया। जिसके तहत पूरे देश में नौंवी से लेकर बारहवीं तक की कक्षाओं में विज्ञान, गणित, भारतीय भाषाएं, अंग्रेजी, सामाजिक विज्ञान की पढ़ाई के साथ ही कला, नृत्य, थियेटर और संगीत का शिक्षा में जोर देने और अपने आसपास की परिस्थिति से सीखने पर जोर दिया गया। ये

तो हुई प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की बात। भारत में उच्च शिक्षा की हालत भी बहुत बेहतर नहीं है। देशभर में करीब 455 विश्वविद्यालय हैं, जिनमें 128 डीम्ड विश्वविद्यालय हैं। छह आईआईटी समेत मेडिकल और तमाम तरह की शिक्षा देने वाले करीब 45,000 कॉलेज हैं। तकनीकी शिक्षा पर नियंत्रण के लिए जहां अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद है, वहीं विश्वविद्यालयों पर लगाम लगाने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग है। जो समय-समय पर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में बदलाव भी करता रहता है और वाजिब नियंत्रण भी रखता है।

मेडिकल शिक्षा पर नियंत्रण भारतीय चिकित्सा परिषद करती है। इसके अलावा आईआईएम जैसे उत्कृष्ट संस्थान भी हैं। भारत में 16 केंद्रीय विश्वविद्यालय हैं, जिन पर केंद्र सरकार का नियंत्रण है तो राज्यों में करीब चार सौ विश्वविद्यालय हैं। इसके अलावा कई प्रदेशों में निजी विश्वविद्यालय भी हैं। सबकी अपनी समस्या हैं और अपने फायदे भी। जाहिर है कि भारत का शैक्षिक परिदृश्य बेहद व्यापक है। भारतीय शिक्षा में जितनी विविधता है, उतनी ही उलटबांसियां भी हैं। यह एक चुनौतीपूर्ण मसला भी है और इसके बारे में व्यापक रूप से चिंतन-मनन भी होना चाहिए।

16.3 प्रिंट मीडिया में शिक्षा और शैक्षिक मुद्दे

एक दौर था जब शिक्षा और उससे जुड़े विषयों की कवरेज को खास ध्यान नहीं दिया जाता था। लेकिन आज शायद ही कोई अखबार और पत्रिका हो, जो शिक्षा, उससे जुड़ी गतिविधियां और उनसे जुड़े मुद्दों की कवरेज नहीं करता हो। वैसे यह ध्यान रखना चाहिए कि शैक्षिक गतिविधियों और शिक्षा से जुड़े मसलों की कवरेज के जरिए मीडिया जहां अपने युवा और युवतर पाठकों को शिक्षित करता है, उसे सूचनाओं से लैस करता है और इन सूचनाओं के जरिए उसे भविष्य की चुनौतीपूर्ण भूमिका के लिए तैयार करता है। इसके साथ ही वह भविष्य के पाठक भी तैयार करता है। इस संदर्भ में प्रख्यात पत्रकार हरिशंकर द्विवेदी का एक संस्मरण याद आता है। एक दौर के हिंदी के प्रतिष्ठित अखबार रहे विश्वमित्र के दिल्ली संस्करण के संपादन का जब उन्हें दायित्व सौंपा गया, तब दिल्ली में इस अखबार की कोई खास-पूछ परख नहीं थी। उन्होंने पाया कि दिल्ली का विश्वमित्र छात्रों के लिए खास सूचनाएं नहीं देता। जबकि सत्तर के दशक में दिल्ली शिक्षा का गढ़ बनती जा रही थी। उन्होंने छात्रों के लिए जरूरी सूचनाएं देनी शुरू की और फिर देखते ही देखते दिल्ली में भी विश्वमित्र के पाठक बढ़ गए।

मीडिया में शिक्षा की कवरेज के मूलत: दो रूप हैं। एक सिर्फ शैक्षिक विषयों और गतिविधियों की सूचनाएं देना और इसके जरिए नौजवान वर्ग को भविष्य के लिए तैयार करना। दूसरा रूप है शैक्षिक

संस्थानों की सूचनाएं, गतिविधियां और वहां चल रही उठा-पटक और अच्छी-बुरी हलचलों की खबरें देना। हिंदी का शायद ही कोई अखबार हो, जहां अब शिक्षा बीट पर काम करने वाले पत्रकार अलग से नहीं रखे जाते। मीडिया में शिक्षा का सही मायने में यह पहला रूप है। जबकि दूसरे रूप में मीडिया तैयारियों, प्रतियोगिता परीक्षाओं, विश्वविद्यालयों और बोर्ड की परीक्षाओं की तैयारियों, मानसिक चुनौतियों, नौकरियों की सूचनाएं, उसके लिए तैयारी कराने वाले संस्थानों की सूचनाएं और विश्लेषण देता है। दैनिक हिंदुस्तान का सप्लिमेंट नई दिशाएं, अमर उजाला का उड़ान, दैनिक जागरण का जोश आदि ऐसे ही सप्लिमेंट हैं।

वहीं दैनिक ट्रिब्यून जैसा अखबार हर बुधवार को अलग से शिक्षालोक नाम से पृष्ठ ही प्रकाशित करता है। इन सप्लिमेंट और पृष्ठों में युवाओं के लिए जरूरी शैक्षिक और प्रतियोगितात्मक सूचनाएं दी जाती हैं। इसके अलावा अब तो प्रतियोगिता की तैयारी और उससे जुड़े ज्ञान के लिए अलग से पत्रिकाओं की बाढ़ ही बाजार में आ गई है। इस श्रेणी में आगरा से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका प्रतियोगिता दर्पण सिरमौर बनी हुई है। उसी प्रकाशन का सामान्य ज्ञान दर्पण भी इसी श्रेणी की पत्रिका है। प्रतियोगिता किरण, सिविल सर्विसेज क्रॉनिकल, दैनिक भास्कर समूह का लक्ष्य, अमर उजाला समूह की सफलता और आउटलुक समूह का कैरियर 360 डिग्री जैसी पत्रिकाएं इसी श्रेणी की दूसरी पत्रिकाएं हैं। चूंकि इनमें करियर से जुड़ी तैयारियों और सूचनाओं की भरमार के साथ ही जरूरी सलाह और दिशा-निर्देशन होता है, इसलिए इन्हें कॅरियर पत्रिकाएं भी कहा जाता है।

16.4 शैक्षिक पत्रकारिता के रूप

मीडिया में दो तरह से शैक्षिक गतिविधियों और कैरियर को कवर किया जाता है। एक तो दैनिक या साप्ताहिक आधार पर शैक्षिक संस्थानों, विश्वविद्यालयों, शिक्षा विभाग, शिक्षा बोर्ड की रिपोर्टिंग करता है। इसकी जिम्मेदारी आमतौर पर सिटी रिपोर्टिंग टीम के किसी सदस्य के हाथ होती है। दिल्ली जैसे शहरों में चूंकि कई विश्वविद्यालय, दूसरे शैक्षिक संस्थान और विभाग हैं। लिहाजा शैक्षिक बीट पर कई रिपोर्टर होते हैं और उनकी जिम्मेदारियां बंटी होती है। लेकिन राज्य सरकार के शिक्षा मंत्रालय या इससे जुड़े मंत्रालयों की गतिविधियों और उनमें शैक्षिक मुद्दों पर हो रही राजनीति, उठापटक और नीतिगत फैसलों की रिपोर्टिंग वरिष्ठ स्तर के संवाददाता करते हैं। इसी तरह केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय, जिसे मानव संसाधन विकास मंत्रालय कहा जाता है, उसकी गतिविधियों, उठापटक, राजनीतिक फैसलों, नीतिगत बदलावों आदि की रिपोर्टिंग की जिम्मेदारी राजनीतिक ब्यूरो के वरिष्ठ संवाददाता या विशेष संवाददाता

या प्रमुख संवाददाता के पास होती है। इन सब श्रोतों से मिली खबरें अपनी महत्ता के मुताबिक पहले से लेकर अंदर के किसी पृष्ठ पर जगह हासिल कर लेती हैं। लेकिन अव्वल तो ऐसी खबरों के लिए अलग से अखबारों में कोई डेस्क नहीं होता। लेकिन कॅरियर सप्लिमेंट के लिए सामग्री चयन और की जिम्मेदारी अलग से फीचर विभाग के ऐसे उपसंपादक को दी जाती है, जिसकी अभिरूचि तैयारी और कैरियर से जुड़े मुद्दे और सूचनाओं के प्रकाशन में हो।

कॅरियर पत्रिकाओं में तो रिपोर्टिंग बहुत कम और डेस्क का काम ज्यादा होता है। इसलिए वहां तकरीबन हर पत्रकार को जरूरत पड़ने पर रिपोर्टिंग और डेस्क – दोनों का काम करना पड़ता है। आमतौर पर कॅरियर सप्लिमेंट या पत्रिकाओं के लिए हिंदी में अब भी ज्यादातर सामग्री फ्रीलांसर ही मुहैया कराते हैं। इस काम के लिए उन्हें ज्यादा तरजीह दी जाती है, जिन्होंने कभी राष्ट्रीय और प्रदेश स्तरीय प्रतियोगिता परीक्षा में हिस्सा लिया हो। कभी-कभी किसी विशेषज्ञ से भी प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी को लेकर विशेष आलेख लिखवा लिए जाते हैं।

16.5 शिक्षा व साक्षरता की स्थिति - मीडिया की भूमिका

शिक्षा, साक्षरता और मीडिया का एक दूसरे के साथ अन्योन्याश्रय का संबंध है। शिक्षा हासिल करने की दिशा में साक्षरता हासिल करना एक महत्वपूर्ण पड़ाव होती है। यह जरूरी नहीं कि हर साक्षर व्यक्ति शिक्षित ही हो। लेकिन आम धारणा यही है कि साक्षर व्यक्ति शिक्षित जरूर होता है। लेकिन अगर व्यक्ति साक्षर नहीं है तो यह साफ है कि प्रिंट और इंटरनेट माध्यम सूचनाएं देने, मनोरंजन करने और शिक्षा देने जैसी अपनी तीनों भूमिकाओं का सफल निर्वाह नहीं कर सकता। जाहिर है कि बिना शिक्षित और साक्षर समुदाय के मीडिया के इन दोनों माध्यमों का काम नहीं चल सकता। यानी प्रिंट और इंटरनेट माध्यम के लिए शिक्षित और साक्षर लक्षित समूह जरूरी है। अक्षर ज्ञान की कमी वाले व्यक्ति तक मीडिया के इन दोनों माध्यमों की पहुंच और संदेशों की सफलता की गारंटी नहीं दी जाती। मीडिया का आमतौर पर लक्षित समूह के लिए तीन काम माना जाता है – सूचना देना, मनोरंजन करना और शिक्षित करना। सूचनाएं देकर और शिक्षित करके मीडिया जनमत के निर्माण में भी भूमिका निभाता है। लेकिन मीडिया की पूंजीगत संरचना में आ रहे बदलाव, तकनीक के दबाव और सामाजिक-राजनीतिक कारणों के चलते अब मीडिया पर पूर्वाग्रही होने के भी आरोप लगने लगे हैं। बदलते दौर में नई आर्थिकी राजनीति पर असर डाल रही है। ऐसे में यह मानना कि इसका असर मीडिया पर नहीं पड़ेगा, नासमझी ही कही जाएगी। शायद यही वजह है कि इन दिनों मीडिया साक्षरता की भी नई अवधारणा ने जन्म लिया है।

इसका मतलब यह है कि लक्षित समूह की मीडिया साक्षरता और समझ भी बेहतर होनी चाहिए। तभी जाकर वह मीडिया के जरिए हो रही राजनीति, समाजनीति और संदेशों को सही परिप्रेक्ष्य में ग्रहण कर पाएगा। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि अब मीडिया की भूमिका अपने संदेशों के जरिए लक्षित समूह को शिक्षित करना, मनोरंजन करना और सूचनाएं देना भर नहीं रह गया है। बल्कि मीडिया के जरिए दिए जा रहे संदेशों को सही संदर्भ में ग्रहण करना भी हो गया है।

आज के इस बदलते दौर में हम सभी 'नॉलेज सोसायटी' का हिस्सा हैं, जिसमें ज्ञान के एक बड़े हिस्से को समाज के सभी वर्गों तक पहुंचाने की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी मीडिया के कंधे पर है। लोकतंत्र के महत्वपूर्ण स्तंभ के रूप में भी मीडिया से इस तरह के योगदान की अपेक्षा पहले भी थी और आज भी है। हालांकि हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि किसी नैतिक आधार का निर्माण सिर्फ मौजूदा समाज और नीतियां नहीं कर सकतीं। यूनेस्को की एक रिपोर्ट "The World Ahead : Our Future in the Making", में यह साफ रेखांकित किया गया है कि किसी भी नैतिक समाज का निर्माण बाजार नहीं कर सकता। इन संदर्भों में भी मीडिया की भूमिका को देखा-परखा जाना जरूरी है। लेकिन भारत में यह चुनौती कहीं ज्यादा है। इसकी वजह है यहां की साक्षरता दर।

2001 की जनगणना के मुताबिक करीब 65 फीसदी आबादी ही शिक्षित थी। लेकिन 2011 की जनगणना के मुताबिक करीब 74 फीसदी जनसंख्या साक्षर हो चुकी है। इस आंकड़े के मुताबिक करीब 82 फीसदी पुरूष इन दिनों साक्षर हैं, जबकि 65 फीसदी महिलाओं को ही अक्षर ज्ञान है। इन आंकड़ों के आधार पर ही देखें तो अभी इस देश में सकल साक्षरता की दर हासिल करने के लिए कम से कम 16 फीसदी का आंकड़ा और हासिल किया जाना है। संयुक्त राष्ट्र संघ के मानकों के मुताबिक शत-प्रतिशत साक्षरता का मानक देश की करीब 90 फीसदी आबादी का साक्षर होना है। 2011 की जनगणना के ही मुताबिक करीब भारत की जनसंख्या 121 करोड़ है। इस आधार पर देखें तो मौजूदा आंकड़ों के ही मुताबिक करीब 89 करोड़ 54 लाख लोग ही साक्षर हैं। यानी शत-प्रतिशत साक्षरता दर हासिल करने के लिए अभी 19 करोड़ 36 लाख लोगों को साक्षर बनाया जाना है। भारत जैसे देश में जहां अभी-भी जनसंख्या की विकास दर 12.81 फीसदी सालाना है। जाहिर है कि भारत को इस मोर्चे पर काफी काम करना है। निश्चित तौर पर इसमें तमाम भाषाई समूह हैं। लिहाजा मीडिया की चुनौती भी उतनी ही बढ़ जाती है।

जिन विकसित देशों में साक्षरता की शत-प्रतिशत कामयाबी हासिल कर ली गई है, वहां मीडिया पारंपरिक भूमिका में ही है। यानी सिर्फ सूचनाएं देना और मनोरंजन करना। इसके जरिए जाने-अनजाने वह

शिक्षित भी कर रहा है। लेकिन भारत में मीडिया की एक बड़ी चुनौती साक्षरता विकास दर को भी हासिल करना है। यानी यहां खासतौर पर प्रिंट और इंटरनेट मीडिया को अपने लिए नया पाठक वर्ग भी तैयार करना है। भारत में नब्बे के दशक में सब राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की स्थापना हुई और भारत में साक्षरता दर हासलि करने की दिशा में तेज काम होने लगा तो इसमें प्रिंट मीडिया की भी सहायता ली गई। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के राष्ट्रीय महानिदेशक रहे सुदीप बनर्जी ने मीडिया के जरिए साक्षरता के लिए नया अभियान चलाया। तब खासतौर पर भाषाई और क्षेत्रीय मीडिया में नवसाक्षरों के लिए सामग्री प्रकाशित करने पर जोर दिया गया। पारंपरिक मीडिया के माध्यमों मसलन लोककलाओं, नाट्यकला आदि के जरिए भी लोगों को इस तरफ जोड़ने की कोशिश की गई। देश में नए-नए विकसित हो रहे टेलीविजन के जरिए भी साक्षरता के प्रति सम्मोहित करने वाले संदेश प्रसारित किए गए। रेडियो के जरिए भी गांव की पगडंडियों, खेत-खलिहानों से लेकर कारखानों और झुग्गियों के बीच तक साक्षरता की अलख जगाने की कोशिश की गई।

'चलो पढ़े-लिखें, कुछ कर दिखाएं' उस दौर के मशहूर नारे रहे। जिनका श्रव्य और दृश्य माध्यमों ने खूब इस्तेमाल किया और उन लक्षित समूहों को आकर्षित किया, जिन्हें अक्षर ज्ञान नहीं था। फिर इन नवसाक्षरों को अक्षर विश्व से परिचित कराने, उसमें दिलचस्पी बनाए रखने और उसे आगे बढ़ाने में भाषाई और क्षेत्रीय मीडिया ने सफल भूमिका निभाई। अगर भारत की आज की 74 फीसदी की साक्षरता दर भले ही कम लगती हो, लेकिन अगर आजादी के बाद के आंकड़ों से इसकी तुलना करते हैं तो ये आंकड़े कामयाबी की लंबी कहानी को बयान करते हैं। आजादी के बाद भारत की साक्षरता दर महज 12 फीसदी थी। जाहिर है कि इसमें मीडिया की एक बड़ी भूमिका रही है।

16.6 साक्षरता के संदर्भ में भारतीय पत्रकारिता की चुनौतियां

मीडिया जब साक्षरता में बढ़ोत्तरी करने में भूमिका निभाता है तो वह सिर्फ देश या समाज का ही भला नहीं कर रहा होता है, बल्कि वह अपने लिए नए शिक्षित और साक्षर लक्षित समूह भी तैयार कर रहा होता है। इन लक्षित समूहों के जरिए वह दरअसल अपने लिए नया पाठक, श्रोता और दर्शक भी जोड़ता है। फिर 1 अप्रैल 2010 से शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकारों की श्रेणी में जोडा जा चुका है। वैसे 2010 के एक अनुमान के मुताबिक भारत में करीब 22 करोड़ बच्चे और किशोर स्कूली शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं, जबकि करीब डेढ़ से पौने दो करोड़ उच्च शिक्षा की पढ़ाई कर रहे हैं। लेकिन शिक्षा का अधिकार लागू होने के बाद जाहिर है कि इस संख्या में और इजाफा होना है। यानी एक विशाल पाठक

वर्ग भारतीय मीडिया के लिए संभावनाओं का नया दरवाजा खोलने वाला है। इसके साथ ही श्रोताओं और दर्शकों का भी एक बड़ा लक्षित समूह तैयार होने वाला है। जाहिर है कि इनकी भी मानसिक भूख होगी, जो वे आंखों और कान के जरिए पूरा करना चाहेंगे। इसकी तस्दीक दुनिया की एक बड़ी सर्वे और शोध एजेंसी प्राइसवाटर हाउस कूपर की रिपोर्ट भी करती है। 2009 में आई इस रिपोर्ट के मुताबिक 2008 में भारत में प्रिंट मीडिया उद्योग करीब 140.7 बिलियन डॉलर का था। यह बढ़त पिछले साल के मुकाबले करीब सात फीसदी ज्यादा थी। इस तरह 2009 में बढ़कर यह उद्योग 146.4 बिलियन डॉलर हो गया। यानी पिछले साल की तुलना में करीब चार फीसद की बढ़त दर्ज की गई। कूपर ने जब ये रिपोर्ट जारी की थी, तब आर्थिक मंदी शुरू नहीं हुई थी। इसी तरह कूपर ने 2010 में यहां के प्रिंट माध्यम का बिजनेस करीब 154.8 बिलियन डॉलर तक पहुंच जाने का अनुमान लगाया था। यानी पांच दशमलव आठ फीसदी की बढ़त होनी है।

इसी तरह 2011 में इस उद्योग के 166.5 बिलियन डॉलर तक पहुंचने अनुमान था। यानी साढ़े सात फीसदी की बढ़ोत्तरी। जो लगभग ऐसा ही रहा। इसी तरह 2012 में सात फीसद की बढ़त के साथ 178.1 बिलियन डॉलर तक पहुंचने का अनुमान था। इस एजेंसी के मुताबिक 2013 में भारतीय समाचार पत्र उद्योग का कारोबार 184.8 बिलियन डॉलर तक पहुंचने का अनुमान लगाया है यानी करीब तीन दशमलव सात फीसदी की बढ़त। 2008 से 2013 के बीच की ये बढ़त प्राइसवाटर हाउस कूपर के मुताबिक करीब पांच दशमलव छह फीसदी बैठती है। यह तो सिर्फ प्रिंट माध्यमों को लेकर प्राइसवाटर हाउस कूपर का अनुमान है। इसी अंदाज में दृश्य यानी टेलीविजन और श्रव्य यानी रेडियो का भी विकास होना है।

इन आंकड़ों से जाहिर है कि मीडिया की कोशिशें कम से कम भारत जैसे देश में उसके लिए ही बड़े लक्षित समूह के तौर पर फायदेमंद होती जा रही है। यानी इतने बड़े पाठक, श्रोता और दर्शक समूह के लिए सूचनाओं और मनोरंजन की जरूरत होगी। जिसे अपने विभिन्न माध्यमों के जरिए मीडिया को ही पूरा करना होगा। फिर इतने बड़े समूह में शिक्षा हासिल करने की दिशा में आगे बढ़ रहा समूह भी होगा। जाहिर है कि उसकी भी जरूरतें पूरा किया जाना जरूरी होगा।

भारत में अंगरेजी मीडिया इस जरूरत को ध्यान में रखकर स्कूली बच्चों को ही अखबार से जोड़ने की कोशिश कर रहा है। हिंदुस्तान टाइम्स का 'एचटी नेक्स्ट' और टाइम्स ऑफ इंडिया का 'स्कूल टाइम्स' ऐसी ही कोशिशें हैं। द हिंदू समूह अभी तक यंग वर्ल्ड सप्लीमेंट के ही जरिए नए पाठकों को जोड़ रहा है। मलयाला मनोरमा समूह का मैजिक वर्ल्ड भी स्कूली छात्रों की जरूरतों को पूरा करने की कोशिशों का

ही नतीजा है। हालांकि हिंदी समेत भाषाई मीडिया में अभी तक सिर्फ कहानी-कविता से ही नए पाठकों को ज़ोड़ने की कोशिश जारी है...लेकिन उनकी भी जरूरतों को ध्यान में रखकर आगे बढ़ना ही होगा। मनोरंजन मीडिया में कार्टून नेटवर्क, हंगामा टीवी जैसे चैनल हैं, जो खास बच्चों के लिए हैं। इस दौर में प्रतियोगिता पत्रिकाओं की बाढ़ और अखबारी सप्लिमेंट में उनकी कमी पूरी करने की कोशिशें भी तेज हो गई हैं। जाहिर है कि नए और युवा होते पाठकों को जोड़ने की कोशिशें और उनकी मानसिक और सामाजिक जरूरतों के मुताबिक सूचनाएं मुहैया कराने का दौर जारी है। टेलीविजन चैनल और एफएम रेडियो भी अब प्रतियोगिताओं की तैयारी और सूचनाओं की जानकारी देने वाले कार्यक्रम बनाने और प्रसारित कर रहे हैं। लेकिन अभी इस मोर्चे पर बहुत कुछ किया जाना बाकी है। जाहिर है कि इतने बड़े कारोबार में प्रशिक्षित पत्रकारों की जरूरत होगी। वैसे भारत में पिछले कुछ सालों से आई 'सूचना क्रांति' के दौर में मीडिया ने ज्ञान की सभी परंपराओं को पछाड़ते हुए समाज की शिक्षा को नई दिशा दी है। समाचार, दृश्य और विश्लेषण की त्रि-आयामी जकड़ ने आज आदमी को देश और दुनिया की गतिविधियों को जानने के लिए प्रेरित किया है। फिर बेशुमार पैसे की आवक भी बढी है। जिसके चलते मीडिया में फैशन, ब्यूटी, अपराध, हत्याओं की खबरें बढ़ती गई हैं। जिसका असर नई पीढ़ी पर दिखाई पड़ रहा है। इसे लेकर दुनिया में शोध और अध्ययन जारी हो रहे हैं। इसी के चलते विचारक और नीति निर्देशक मीडिया साक्षरता को पाठ्यक्रम का आवश्यक अंग मानने लगे हैं। उनका मानना है कि छात्रों को शुरू से ही यह पता होना चाहिए कि समाज और संस्कृति की चेतना में मीडिया की क्या भूमिका है। भारत के लिए भले ही यह नई अवधारणा हो, लेकिन दुनिया के कई हिस्सों, खासकर विकसित राष्ट्रों में कई साल से इसको लेकर चिंतन और अध्ययन हो रहे हैं। भारत में इसे लेकर एनसीईआरटी ने भी अध्ययन शुरू किया है।

16.7 सारांश

कुल मिलाकर कह सकते हैं कि मीडिया का शिक्षा और साक्षरता के साथ सहजीवी रिश्ता है। मीडिया एक ऐसे समाज में जहां साक्षरता दर कम है, वहां साक्षरता और शिक्षा की दर को बढ़ावा देने में सक्रिय और कामयाब भूमिका निभाता है तो दूसरी तरफ वह ऐसा करके अपने लिए नया लक्षित समूह भी तैयार करता है। जिसमें पाठक, श्रोता और दर्शक तीनों होते हैं। साक्षरता को बढ़ावा देने में अपने खास चरित्र और बुनावट के जरिए प्रिंट माध्यम ही सक्रिय और सीधी भूमिका निभा सकता है। अपनी खास बुनावट और प्रभावी भूमिका के कारण रेडियो और टेलीविजन साक्षरता को बढ़ावा देने में सिर्फ सहयोगी भूमिका ही निभा सकते हैं। लेकिन तीनों का समन्वित प्रयास ऐसे लक्षित समूह का निर्माण करता है, जो शिक्षित

और जागरूक हो। शिक्षा और जागरूकता का असर समाज, राजनीति और अर्थनीति को लेकर जनमत बनाने में भी अहम भूमिका निभा सकता है। तीनों का समन्वित प्रयास मीडिया साक्षर लक्षित समूह को भी तैयार करता है। जो सामान्य लक्षित समूह की तुलना में कहीं अधिक सक्रिय, जागरूक और प्रभावी होता है। भारत में अभी शत-प्रतिशत साक्षरता दर को हासिल किया जाना बाकी है। लिहाजा यहां के मीडिया को कई स्तरों पर काम करना है। एक तरफ उसे साक्षरता के विकास की गति को तेज करने में भूमिका निभानी है तो दूसरी तरफ साक्षर और शिक्षित हो रहे या हो चुके लक्षित समूह की मानसिक भूख को पूरा करने की तैयारी भी करनी है। जाहिर है कि भारतीय-खासकर भाषाई मीडिया के सामने बड़ी चुनौती है। क्योंकि शत-प्रतिशत साक्षरता दर भाषाई समूहों में स्थानीय भाषाओं के जरिए ही हासिल होनी है।

16.8 शब्दावली

साक्षरता - सामान्य अक्षर ज्ञान हासिल करना, लिखना-पढ़ना सीखना।

मीडिया साक्षरता – मीडिया के हर माध्यम की अपनी सीमाएं और बुनावट होती है। लिहाजा उनके जरिए दिए जाने वाले संदेश भी अलग-अलग स्तरों पर दिए जाते हैं। इन संदेशों को समझने के लिए बुनियादी समझ को मीडिया साक्षरता कहा जाता है।

शैक्षिक पत्रकारिता – शिक्षा और साक्षरता से जुड़े मुद्दों की पत्रकारिता को शैक्षिक पत्रकारिता कहा जाता है।

कॅरियर पत्रकारिता – पत्रकारिता का वह क्षेत्र, जिसमें कॅरियर की तैयारी आदि से जुड़ी सूचनाएं और विश्लेषण को पेश किया जाता है।

कैंपस रिपोर्टिंग - विश्वविद्यालयों और शैक्षिक संस्थानों के अंदर छात्रों और अध्यापकों से जुड़ी घटनाओं और विषयों की रिपोर्टिंग को कैंपस रिपोर्टिंग कहा जाता है।

16.9 बोध प्रश्न और उनके उत्तर

प्रश्न- भारत में साक्षरता दर कितनी है?

उत्तर – 2011 की जनगणना के मुताबिक भारत की साक्षरता दर 74 फीसदी है। इसके मुताबिक भारत के 82 फीसदी पुरूष साक्षर हैं, जबकि सिर्फ 65 फीसदी महिलाएं ही साक्षर हैं। आजादी के वक्त भारत की साक्षरता दर महज 12 फीसदी ही थी।

प्रश्न – मीडिया साक्षरता को बढ़ावा कैसे देता है?

उत्तर- भारत जैसे देश में प्रिंट माध्यम नवसाक्षरों के लिए अक्षर ज्ञान की सामग्री प्रकाशित करके जहां साक्षरता को बढ़ाने की बुनियाद रखते हैं, वहीं अपनी प्रभावी भूमिका और दर्शकों-श्रोताओं के दिल तक सीधी पहुंच रखने की ताकत के चलते रेडियो और टेलीविजन इसके लिए माहौल तैयार करते हैं।

प्रश्न- भारत में शैक्षिक पत्रकारिता की कैसी संभावना है?

उत्तर- भारत में शिक्षा का अधिकार को मौलिक अधिकार में शामिल कर लिया गया है। इससे हर बच्चे को पढ़ने का मौलिक हक मिल गया है। जाहिर है कि इसके असर से नए पाठक, दर्शक और श्रोताओं की संख्या में खासी बढ़ोत्तरी होने वाली है। फिर 2010 के एक अनुमान के मुताबिक भारत में स्कूलों में करीब 22 करोड़ बच्चे शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। इसके अलावा करीब पौने दो करोड़ युवा उच्च शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। साफ है कि इनकी भी अपनी मानसिक भूख है, जरूरतें हैं और उन्हें पूरा करने का दायित्व मीडिया पर ही है। यही वजह है कि मीडिया का चाहे जैसे भी माध्यम हों, सबके लिए शैक्षिक मुद्दों और जरूरतों के मुताबिक काम करने वालों की जरूरत बनी हुई है। इस दिशा में अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। इस लिहाज से भारत में शैक्षिक पत्रकारिता के लिए संभावनाओं का अपार संसार खुला पड़ा है।

16.10 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न-1 भारत में शत-प्रतिशत साक्षरता हासिल करने के लिए मीडिया की चुनौतियों पर प्रकाश डालिए.

प्रश्न-2 भारत में मीडिया किस तरह साक्षरता और शिक्षा के मोर्चे पर अहम भूमिका निभा सकता है

प्रश्न-3 भारतीय साक्षरता और शिक्षा की मौजूदा स्थिति में मीडिया किस तरह बदलाव ला सकता है, सोदाहरण विवेचन कीजिए।

प्रश्न-4 कॅरियर पत्रकारिता और कैंपस रिपोर्टिंग में मूलभूत क्या अंतर है ? दोनों के बीच की समानताओं का जिक्र करते हुए दोनों पर प्रकाश डालिए।

16.11 संदर्भ ग्रंथ

1. राज समाज और शिक्षा- कृष्ण कुमार

2. हिंदी पत्रकारिता विविध आयाम- वेद प्रताप वैदिक

3. शिक्षा और विकास के सामाजिक आयाम- मूनिस रज़ा

4. उत्पीड़ितों का शिक्षा शास्त्र- पॉओलो फ्रेरे

5. आदिवासी समाज और शिक्षा- रामशरण जोशी

6. शिक्षा, संस्कृति और लोकतंत्र – नरिंदर सिंह

7. ग्रहणशील मन- मारिया मांटेसरी

8. बच्चे असफल क्यों होते हैं- जॉन होल्ट

ईकाई-17

रोजगार और मीडिया

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 भारत में रोजगार का परिदृश्य

17.3 मीडिया में रोजगार की रिपोर्टिंग

17.4 रोजगार से संबंधित पत्रकार

17.5 सारांश

17.6 अभ्यास प्रश्न

17.7 संदर्भ सूची

17.0 उद्देश्य

इस इकाई के प्रमुख उद्देश्य हैं-

-भारत में रोजगार के परिदृश्य का आकलन करना।

-आजादी के बाद देश में रोजगार की स्थिति क्या बनी।

-मीडिया में रोजगार को लेकर कैसी स्थितियां तैयार हुईं।

17.1 प्रस्तावना

मीडिया का समाज से रिश्ता बहुत पुराना है, बल्कि आदिम युग से है। आखिरकार सभ्यता के विकास के शुरुआती दौर में, जब वर्णों की कोई सुव्यवस्थित रूपरेखा नहीं थी, लेखन के लिए प्रयुक्त जरूरी सामग्रियों का ईजाद नहीं हुआ था, तब भी एक-दूसरे से संवाद व संचार के लिए मानव समाज ने कुछ संकेतक गढ़े ही थे। सुसभ्य होने की प्रक्रिया में मानव समाज ने वे तमाम जरूरी चीजें गढ़ीं, अर्जित कीं, जिनसे उसका जीवन सरल व सुगम हुआ। कालांतर में अखबार व रेडियो की खोजों तथा लोकप्रियता के बाद टेलीविजन के आविष्कार ने समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। कंप्यूटर क्रांति ने तो मीडिया की संरचना में ही आमूल-चूल परिर्वतन नहीं किया है, बल्कि उसने इंसानी जिंदगी में भी जबर्दस्त हस्तक्षेप किया है। अब तो मीडिया ने प्रकारांतर से ही सही, लेकिन मानव जीवन को नियंत्रित करना शुरू कर दिया है।

दरअसल, लोकतांत्रिक व्यवस्था के विस्तार के साथ-साथ उसके एक जरूरी स्तंभ के रूप में मिशन के साथ शुरू हुई पत्रकारिता, खासकर हिंदी पत्रकारिता 20वीं सदी के आखिरी कुछ दशकों में व्यावसायिक रूप लेने लगी थी। 21वीं सदी के आते-आते तो वह बिल्कुल एक नए रूप में हमारे सामने खड़ी हो गई है। अपने व्यापक अर्थों में पत्रकारिता अब मीडिया शब्द से कहीं अधिक पहचानी और परिभाषित होने लगी है। साफ है, अब यह एक इंडस्ट्री है, जिसका प्राथमिक मकसद सूचना देना और मनोरंजन करना तो है ही, एक बड़े वर्ग को करियर मुहैया कराना भी है। इस क्षेत्र की लोकप्रियता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसके विविध रूपों, प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक, साइबर मीडिया आदि के प्रति बड़ी संख्या में लोगों का रुझान बढ़ रहा है।

इस इकाई में छात्र-छात्राओं को यह जानने का मौका मिलेगा कि किस तरह से हिंदी मीडिया एक बड़े कॅरियर विकल्प के रूप में उभर रहा है। किस तरह से यह समाज को जागरूक कर रहा है। इसकी क्या-क्या चुनौतियां हैं। इस इकाई के तहत हम रोजगार और मीडिया के संबंधों का अध्ययन करेंगे और इसके विभिन्न पहलुओं पर विचार करेंगे।

17.2 भारत में रोजगार का परिदृश्य

भारत में कृषि कर्म व इससे जुड़े रोजगार सदियों से समाज के जीने का आधार रहे हैं। आजादी के बाद स्थितियां बदलीं। देश में औद्योगिकीकरण को बढ़ावा मिला, विकास की नई-नई परियोजनाएं शुरू हुईं, जिनमें बड़ी संख्या में देश की पढ़ी-लिखी पीढ़ी को रोजगार के अवसर मिले। आजादी के बाद शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ता गया।

समाज के सभी तबकों में शिक्षा के प्रति बढ़ी ललक ने व्यवस्था को उनके लिए रोजगार सृजन की दिशा में कदम उठाने को बाध्य किया। हालांकि मांग और आपूर्ति के बीच का फर्क कायम ही रहा, फिर भी पिछले दो-ढ़ाई दशकों में देश के रोजगार क्षेत्र में जबर्दस्त बदलाव देखने को मिला है। आज भारत एक उभरती हुई आर्थिक शक्ति है। यह बात पूरी दुनिया ने मान ली है। विकास दर के मामले में ही नहीं, मानव विकास के विभिन्न सूचकांकों के आधार पर भी हम तेजी से विकसित देशों की कतार की ओर बढ़ रहे हैं। और इन सूचकांकों में एक कसौटी रोजगार सृजन की स्थिति भी है। कुल मिलाकर देश में रोजगार का परिदृश्य सकारात्मक है। ऐसा नहीं कि बेरोजगारी की स्थिति चिंता पैदा करने वाली नहीं है, लेकिन संतोष की बात यह है कि रोजगार के नए-नए क्षेत्र खुल रहे हैं। कुल मिलाकर भारतीय परिदृश्य उम्मीदों से भरा हुआ है।

रोजगार की पृष्ठभूमि

1931 की गणना के अनुसार, कृषि पर गुजारा करने वालों की तादाद भारत की कुल आबादी का 73.8 प्रतिशत थी, जबकि कारखानों तथा दूसरे कारोबारों में काम करने वालों की तादाद 10.6 प्रतिशत और व्यापार-व्यवसाय वालों की तादाद 7.1 प्रतिशत थी। यूरोप के मुकाबले में यह कितनी शोचनीय अवस्था थी! क्योंकि उससे 50 वर्ष पूर्व फ्रांस और जर्मनी जैसे उन्नत देशों में भारत की अपेक्षा कहीं ज्यादा लोग खेती पर निर्भर रहा करते थे। मगर औद्योगिक उन्नति ने यूरोप की इस समस्या को हल कर दिया। भारत में इससे ठीक उलटी गंगा बही। ब्रिटिश साम्राज्य में भारत के तमाम धंधे, वाणिज्य और व्यवसाय चैपट हो गए और लोग अधिकतर खेती पर गुजारा करने लगे।

1901 में खेती पर गुजारा करने वालों की तादाद 61.06 से बढ़ती हुई 1931 में 73.8 हो गई। आजादी से पहले देश में ज्यादातर जूट और कपड़ा उद्योग अस्तित्व में थे और इन्हें भी देश के विभाजन से गहरा धक्का लगा, क्योंकि इन्हें ज्यादातर कच्चा माल मुहैया कराने वाले इलाके पाकिस्तान में चले गए। इसलिए नए आजाद हुए मुल्क के सामने गंभीर समस्या खड़ी हो गई। देश के पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू दूरदर्शी राजनेता थे। उन्हें साफ दिख रहा था कि जिस गति से आबादी बढ़ रही है, उसमें कृषि क्षेत्र पर दबाव बढ़ेगा। फिर बेरोजगारी की समस्या सामाजिक अस्थिरता की वजह बन सकती है। इसलिए तरक्की के नए रास्ते तलाशने होंगे।

आजादी के बाद रोजगार की स्थिति

आजादी के बाद देश ने योजनागत विकास की रूपरेखा तैयार की गई। 1951-56 में सिंचाई, कृषि आदि क्षेत्रों पर ध्यान दिया गया, लेकिन दूसरी पंचवर्षीय योजना में पश्चिमी देशों की विकसित अर्थव्यवस्थाओं को ध्यान में रखते हुए रणनीतियां व योजनाएं बनाई गईं। पंडित नेहरू पश्चिम की औद्योगिक प्रगति से बेहद प्रभावित थे। उन्हें देश की समस्याओं का समाधान तेज औद्योगिकीकरण में दिखा। इसमें कोई दोराय नहीं कि पंडित नेहरू की मंशा अच्छी थी और वह काफी दूर की देख भी रहे थे। लेकिन औद्योगिकीकरण की ललक में कृषि क्षेत्र उपेक्षित हो गया। नीति बनाने वाले लोग भूल गए कि औद्योगिक तरक्की के लिए कृषि क्षेत्र का भी समान विकास होना आवश्यक है। यहीं हमारी रणनीतिक चूक साबित हुई। हम अपनी नीतियां बनाते समय गांव को भूल ही गए। इसका दुष्परिणाम जल्दी ही सामने आ गया। कृषि व्यवस्था के बिगडने से इन पर आधारित ज्यादातर लघु व कुटीर उद्योग बंद हो गए। जाहिर है, यह क्षेत्र काफी बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार मुहैया कराने वाला था। चूंकि कुटीर उद्योग बंद होने लगे, इसलिए बड़ी संख्या में लोग बेरोजगार होने लगे और वे शहरों की ओर पलायन करने लगे। जाहिर है, उस वक्त शहरी ढांचे व उद्योगों में इतनी क्षमता ही नहीं थी कि वे सभी आने वाले लोगों का भार उठा सकें या सभी को काम के अवसर मुहैया करा सकें। लिहाजा बड़ी संख्या में शहरों के इर्द-गिर्द स्लमों की संख्या बढ़ती गई और साथ ही बेकार लोगों की आबादी भी।

कृषि क्षेत्र की उपेक्षा का एक दुष्परिणाम यह भी हुआ कि पढ़े-लिखे लोग खेती-किसानी से कतराने लगे। उन्हें शहरों में मामूली रकम पर मजदूरी तो सही लगने लगा, मगर वे खेतों में काम को हेय दृष्टि से देखने लगे। इससे स्थितियां काफी बिगड़ीं। श्रम मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार, इंप्लॉमेंट एक्सचेंज में अपना पंजीकरण कराने वाले बेराजगारों की संख्या 1961 में 18.33 लाख थी, जो अपने पिछले साल के मुकाबले करीब 14.1 प्रतिशत अधिक थी। ऐसे में, अशिक्षित बेरोजगारों की संख्या व स्थिति के बारे में सिर्फ कल्पना ही की जा सकती है।

आर्थिक सुधारों के बाद का ट्रेंड

इस नियोजित आर्थिक विकास के बावजूद ग्रामीण और शहरी भारत के बीच असंतुलन की खाई बढ़ती ही रही। 1950 से 1970 के बीच देश की आर्थिक विकास दर औसतन 3.5 प्रतिशत रही। शिक्षा का प्रचार-प्रसार हुआ। बड़ी संख्या में शिक्षण केंद्रों से डिग्री लेकर निकले नौजवानों के लिए रोजगार के अवसर उस अनुपात में पैदा नहीं हो पा रहे थे। इसलिए सरकार ने आर्थिक नीतियों को कुछ खोलने का फैसला किया। छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) में लालफीताशाही को कम करने के प्रयास किए गए। सरकारी मूल्य नियंत्रण की नीति में कुछ ढील दी गई। लेकिन बेरोजगारी के मोर्चे पर स्थितियां गंभीर

बनी रहीं। 1978 में पंजीकृत बेरोजगारों की संख्या 3 करोड़, 27 लाख, 76 हजार तक पहुंच गई थी, जो उसके पिछले साल के मुकाबले 9.1 फीसदी अधिक थी। उधर बेरोजगारों की इस संख्या का सामाजिक-राजनीतिक स्थिति में दबाव साफ दिखने लगा। आरक्षण विरोधी आंदोलन के रूप में उसका उग्र रूप पूरे देश के सामने दिख रहा था। स्थिति विस्फोटक हो रही थी। ऐसे में हालात को बेहतर मोड़ देने के लिए केंद्र सरकार ने 1981 में डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू की।

हालांकि आर्थिक सुधारों के बावजूद बेरोजगारी की समस्या पर निर्णायक जीत अब तक नहीं मिली है, लेकिन इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि इसने भारतीय नौजवानों के लिए अवसरों के द्वार खोल दिए हैं। 1981 के बाद अनेक विदेशी कंपनियों, निजी क्षेत्र की कंपनियों ने बड़ी संख्या में भारतीयों को रोजगार मुहैया कराया है। भारतीय कंपनियां जहां अपना विस्तार कर रही हैं, वहीं बड़ी भारी मात्रा में विदेशी कंपनियां भारत में निवेश कर रही हैं, जिससे कई क्षेत्रों में अभूतपूर्व रोजगार के अवसर पैदा हो रहे हैं। जनसंख्या विस्तार की गति को थामकर और रोजगार के वैकल्पिक दरवाजे खोलकर, लोगों को अपना कारोबार शुरू करने के लिए प्रोत्साहित करके बेरोजगारी का भार कम करने की कोशिश की जा रही है। और इसका सकारात्मक असर भी देखने को मिल रहा है। अमेरिकी व बाद में यूरोपीय मंदी के बावजूद सस्ते श्रम के कारण भारतीय नवयुवकों को आउटसोर्सिंग के जरिये जबर्दस्त मौके मिल रहे हैं। श्रम व उद्योग मंत्रालय के एक सर्वे के मुताबिक, बीपीओ क्षेत्र में साल 2009 के अक्तूबर-दिसंबर के बीच 4.86 लाख नौकरियां भारतीयों को मिली थीं। सूचना-प्रौद्योगिकी के साथ-साथ, ढांचागत निर्माण, पर्यटन, विमानन, स्वास्थ्य सेवा, मीडिया आदि क्षेत्रों में अवसरों की जबर्दस्त बढ़ोतरी देखने को मिली।

17.3 मीडिया में रोजगार की रिपोर्टिंग

तेजी से बढ़ती शिक्षा दर ने समाज में कॅरियर रोजगार को लेकर भी जबर्दस्त चेतना पैदा की। जो मीडिया (खासकर हिंदी पत्रकारिता) राजनीति, धर्म, अर्थव्यवस्था और सामाजिक अपराधों से जुड़ी खबरों पर अपना ध्यान केंद्रित रखता था, उसने आहिस्ता-आहिस्ता महसूस किया कि युवा पीढ़ी के सरोकार को नजरअंदाज करके वह अपनी प्रासंगिकता नहीं बनाए रख सकता। इसलिए बेरोजगारी और उससे उत्पन्न स्थितियों के साथ-साथ रोजगार कॅरियर की संभावनाओं व अवसरों को भी मीडिया के अलग-अलग माध्यमों में महत्व दिया जाने लगा।

खबरों में रोजगार के कवरेज

ब्रिटिश भारत में ज्यादातर फौज में युवकों की भर्ती की खबरें छपा करती थीं या फिर मजदूरों को किन्हीं वजहों से निकाले जाने की। अलबत्ता, कुछ ऐसी भी खबरें छपती थीं, जिन्हें हम रोजगार के नए अवसरों की पड़ताल करने वाली और भविष्य की शिनाख्त करती रिपोर्टिंग कह सकते हैं। उदाहरण के तौर पर, 17 मार्च, 1936 के 'हिन्दुस्तान' में पृष्ठ संख्या- पांच पर 'अच्छे दिमागों को व्यापार में डालो' शीर्षक से एक समाचार छपा है, जो दिलचस्प है। खबर की तफसील कुछ इस तरह है-

'बंबई, 28 मार्च। भारत सरकार द्वारा गत नवम्बर मास में आमन्त्रित की गई ब्रिटिश शिक्षा विशेषज्ञों की समिति करीब 4 महीने तक हिन्दुस्तान की शिक्षा सम्बन्धी स्थिति का अध्ययन करके गत शनिवार को श्वित्रल्य जहाज से इंग्लैंड लौट गई।...इंग्लैंड रवाना होने से पूर्व एक पत्र प्रतिनिधि के भेंट करने पर समिति के सदस्य श्री ए. एब्बट और एचएस वुर्ड ने इस बात से सहमति प्रकट की कि प्रत्येक तेज दिमाग के व्यक्ति को विश्वविद्यालय की शिक्षा से गुजरना जरूरी है। एक समाचार का जिक्र करते हुए आपने कहा कि यह बात बिल्कुल गलत है कि इंग्लैंड में स्कूल लीविंग सर्टिफिकेट मिलने के बाद होशियार लड़के विश्वविद्यालय की पढ़ाई की ओर झुकते हैं और कम होशियार तथा निकम्मे व्यापारिक-व्यावसायिक तथा दूसरे क्षेत्रों में चले जाते हैं। इंग्लैंड में अनेकों जहीन लड़के व्यापारिक-व्यावसायिक तथा दूसरे क्षेत्रों में जाते हैं। हिन्दुस्तान में भी वह वक्त जल्द आने वाला है, जब जहीन विद्यार्थी विश्वविद्यालयों में न जाकर व्यापार और व्यवसायों की ओर जाना चाहेंगे।'

आज से सात दशक से भी अधिक समय पहले भारतीय रोजगार क्षेत्र के भावी परिदृश्य का आकलन करती यह रिपोर्ट अखबार में प्रमुखता से छपी है। विशेषज्ञों की दूरदर्शिता का तो इससे इलहाम होता ही है, साथ ही जिस अंदाज में इसे अखबार में छापा गया है, उससे संपादक और रिपोर्टर के विजन का भी पता चलता है। बहरहाल, उदारीकरण के बाद अखबारों में रोजगार के विभिन्न पहलुओं को समेटती बड़ी-बड़ी खबरें प्रकाशित होने लगीं। कई बार वे लीड खबर भी बनती हैं। जैसे 12 अप्रैल, 2012 के अपने अंक में दैनिक हिन्दुस्तान ने एक साथ करें इंजीनियरिंग-एमबीए शीर्षक से कॅरियर से संबंधित खबर को प्रथम पृष्ठ पर दूसरी लीड के रूप में पेश किया है। इसी वर्ष अप्रैल के शुरुआती अंकों में इसी अखबार ने उत्तर प्रदेश के रोजगार दफ्तरों पर बेरोजगारी भत्ता हेतु पंजीकरण कराने वालों की उमड़ी भीड़ को लीड खबर के रूप में प्रकाशित किया था। इसी तरह, नई दिल्ली से प्रकाशित प्रतिष्ठित दैनिक समाचारपत्र- नवभारत टाइम्स में आठ अप्रैल, 2012 को प्रथम पृष्ठ पर दो खबर प्रमुखता से छपी है, जो दर्शाती हैं कि रोजगार और कॅरियर से जुड़ी खबरें कितनी अहम हो चली हैं। इन खबरों के शीर्षक हैं- 5 लाख स्टूडेंट आज देंगे परीक्षा और डीयू प्लेसमेंट का आखिरी दौर 16 को। इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में भी

कॅरियर से जुड़ी खबरों को काफी महत्व मिलता है। 12 अप्रैल, 2012 को बीबीसी-हिंदी की वेबसाइट पर सोनी में जाएंगी 10,000 नौकरियां शीर्षक की खबर काफी देर छाई रही। कुल मिलाकर, जिन्हें हम हार्ड न्यूज के रूप में देखते हैं, उनमें भी नौकरियों व रोजगार से जुड़ी खबरों को भरपूर तवज्जो मिलने लगी है।

विशेष अखबारों व परिशिष्टों का प्रकाशन

चूंकि अखबारों, मीडिया का विशाल पाठक वर्ग युवा और प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करने वाले युवा हैं। इसलिए इन्हें खुद से जोडने के लिए कई तरह के प्रयोग किए। यह न सिर्फ मीडिया घरानों के व्यावसायिक हितों के मुफीद था, बल्कि उसके सामाजिक सरोकार से भी प्रेरित था। आज स्थिति यह है कि भारत में कॅरियर पर आधारित पत्र-पत्रिकाओं की न सिर्फ बहुत बड़ी संख्या है, बल्कि उनकी जबर्दस्त लोकप्रियता भी है।

इस लिहाज से रोजगार के अवसरों पर आधारित इंप्लॉयमेंट न्यूज का नाम सबसे पहले कौंधता है। अप्रैल 1966 में डीएवीपी के तहत आया यह साप्ताहिक समाचार पत्र जनवरी 1967 में प्रकाशन विभाग के अधीन आ गया। इसमें मुख्य रूप से केंद्र व राज्य सरकारों की नौकरियों के अलावा सार्वजनिक उपक्रमों एवं स्वायत्त निकायों में रिक्त स्थानों से संबंधित सूचनाएं तो होती ही हैं। कॅरियर से संबंधित दूसरे आलेख भी होते हैं। इसके पहले पृष्ठ पर किसी ज्वलंत मुद्दे पर विशेषज्ञ का विस्तृत लेख होता है, जो सिविल सेवाओं की तैयारी करने वाले छात्र-छात्राओं के लिए बेहद उपयोगी माना जाता है। शायद यही वजह है कि देश में सर्वाधिक बिकने वाले साप्ताहिक अखबारों में एक इंप्लॉयमेंट न्यूज भी है। अब इसका हिंदी संस्करण रोजगार समाचार और इंटरनेट संस्करण भी उपलब्ध है। इनके अलावा नॉकरी डॉट कॉम, फ्रेशर्स वर्ल्ड डाट कॉम, मॉन्सटर जैसी कॅरियर से संबंधित कई वेबसाइट्स भी खासा लोकप्रिय व उपयोगी हैं।

जहां तक मुख्यधारा के प्रिंट मीडिया का सवाल है, तो साल 2019 में दैनिक हिन्दुस्तान ने 'हिन्दुस्तान जॉब्स' नाम से एक साप्ताहिक अखबार की शुरुआत की है। यह हर रविवार को बाजार में आता है। आखिर बड़े मीडिया घराने को इसकी जरूरत क्यों पड़ी? इस प्रश्न का जवाब देते हुए हिन्दुस्तान दिल्ली के वरिष्ठ स्थानीय संपादक प्रताप सोमवंशी बताते हैं, हमने कई सर्वे कराए और पाया कि रोजगार की तलाश में भटक रहे युवाओं को ऐसे अखबारों की जरूरत है, जो उन्हें उनकी योग्यता के हिसाब से अवसर की सूचनाएं खबर के रूप में पहुंचाए। इंटरनेट पर अपार सूचनाएं हैं, मगर उन तक बहुत सारे

युवकों की अब भी पहुंच नहीं बन सकी है। फिर हमारी कोशिश है कि योग्यता के हिसाब से रोजगार के अवसरों की जानकारी दी जाए। मसलन, बारहवीं पास वर्ग के लिए कौन-कौन से क्षेत्र में कहां-कहां अवसर मौजूद हैं। ग्रेजुएट के लिए कहां क्या है। हम पाठकों को मोटे तौर पर खबर की शक्ल में बताते हैं कि नौकरी क्या है, आवेदन का अंतिम दिन कब है, कितने का ड्राफ्ट लगना है, योग्यता क्या होनी चाहिए आदि...।'

रोजगार और कॅरियर पर आधारित अनगिनत पत्रिकाएं बाजार में उपलब्ध हैं, लेकिन कॉम्पिटिशन सक्सेस रिव्यूय, सिविल सर्विसेज क्रॉनिकल प्रतियोगिता दर्पण प्रतियोगिता किरणए अमर उजाला समूह की सफलता, इंडिया टुडे समूह की स्पायर ने खासी प्रतिष्ठा कमाई है। इन तमाम पत्रिकाओं में कमोबेश प्रतियोगी परीक्षाओं के लिहाज से विषय-वस्तु होती हैं, लेकिन इनमें विभिन्न परीक्षाओं के सफल परीक्षार्थियों के इंटरव्यू नियमित रूप से प्रकाशित होते हैं, जिससे नई पीढ़ी के परीक्षार्थियों का न सिर्फ मार्गदर्शन होता है, बल्कि कई बार वे इनसे प्रेरित होकर अपना मुकाम भी तय करते हैं। इस लिहाज से ये पत्रिकाएं सफल हैं।

पाठकों की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए हिंदी और अंग्रेजी के लगभग तमाम अखबार विशेष परिशिष्टों का प्रकाशन करते रहे हैं। इनमें टाइम्स ऑफ इंडिया समूह के 'एसेंट', हिन्दुस्तान टाइम्स के 'शाइन जॉब्स' खासा लोकप्रिय हैं। टाइम्स ऑफ इंडिया के एसेन्ट का इंटरनेट संस्करण जनवरी 2007 में शुरू हुआ। और इसकी लोकप्रियता का आलम यह है कि यह टीओआई का एक ब्रांड प्रोडक्ट बन गया है। यह दस संस्करणों में प्रसारित होता है। अमूमन सभी अखबारों के रोजगार व कॅरियर से संबंधित परिशिष्ट नए अवसरों के बारे में तो सूचनाएं देते ही हैं, उनमें कॅरियर काउंसलरों की उपयोगी सलाहें भी होती हैं। मसलन, इनमें सरकारी क्षेत्रों व कॉरपोरेट सेक्टर व स्वशासी निकायों में नौकरियों के विज्ञापन के अलावा व्यक्तित्व को निखारने और इंटरव्यू की तैयारी करने संबंधी बारीकियों से संबंधित आलेख भी प्रकाशित होते हैं। जैसे, साक्षात्कार देते समय प्रतिभागियों को क्या-क्या ध्यान में रखना चाहिए। किस तरह के कपड़े पहनने चाहिए, कैसे साक्षात्कार लेने वालों का अभिवादन करना चाहिए, किन-किन बातों से बचना चाहिए। अक्सर ये परिशिष्ट नए किसी बड़े पदाधिकारी का इंटरव्यू प्रकाशित-प्रसारित करते हैं, जिनसे यह पता चलता है कि उन्हें किस तरह के लोगों की तलाश है या एक नव-नियुक्त व्यक्ति से उनकी क्या-क्या अपेक्षाएं होती हैं। इनके अलावा इन परिशिष्टों में दफ्तर के भीतर की गतिविधियों से संबंधित विषयों, तनावों-दबावों से निपटने के गुर, व्यक्तित्व के विकास व साथी कर्मचारियों से व्यवहार, नेतृत्व क्षमता विकसित करने आदि से संबंधित आलेख भी होते हैं। इनका काफी बड़ा पाठक वर्ग है।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में हालांकि इस तरह के कार्यक्रम बहुत कम दिखाए जाते हैं, लेकिन समय-समय पर इंटरव्यू दिखाकर वह लक्ष्य वर्ग तक पहुंचने की कोशिश करता है। हिंदी में जो बेहद लोकप्रिय परिशिष्ट हैं, उनमें दैनिक जागरण का जोश, हिन्दुस्तान का करियर तरक्की, दैनिक भास्कर का करियर मंत्रा, अमर उजाला का उड़ान आदि शामिल हैं।

17.4 रोजगार से संबंधित पत्रकार

लगभग सभी अखबारों में शिक्षा व रोजगार बीट पर काम करने के लिए पत्रकारों की जरूरत होती है। यह एक महत्वपूर्ण बीट तो है ही, अखबार की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाला तथा उसकी प्रसार संख्या को प्रभावित करने वाला भी होता है। इसलिए इस बीट की जिम्मेदारी देने से पहले संपादक संबंधित पत्रकार की योग्यता की गहन पड़ताल करता है। संजीदा और उत्साही युवकों को यह जिम्मेदारी सौंपी जाती है। रोजगार से संबंधित पत्रकारों को तीन श्रेणियों में बांट सकते हैं।

उप-संपादक

किसी भी अखबार में उप-संपादकों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। उन्हें न सिर्फ रिपोर्ट के एक-एक शब्द पर अपनी पैनी निगाह रखनी होती है, बल्कि उनसे भाषा व वर्तनी की अशुद्धियां दूर करने तथा आकर्षक हेडिंग लगाने की अपेक्षा की जाती है। उप-संपादक को तथ्यों की पड़ताल करते समय अतिरिक्त सावधानी बरतनी चाहिए। कहते हैं कि जिस अखबार में उप-संपादकों की फौज मजबूत हो, वह अपनी आधी जंग तो यों ही जीत चुकी होती है।

एक उप-संपादक को चूंकि टीम के साथ करना होता है और यह पेशा ही टीम वर्क का है, इसलिए उसे हमेशा यह कोशिश करनी चाहिए कि जहां कहीं भी उसे कोई परेशानी महसूस हो या कोई आशंका हो तो साथी उप-संपादक या मुख्य-उपसंपादक की मदद लेनी चाहिए। कॅरियर और एजुकेशन परिशिष्ट पर काम करने वाले उप संपादक को हमेशा यह ध्यान में रखना पड़ता है कि वह लाखों युवाओं के भविष्य को बनाने से जुड़े पन्ने पर काम कर रहा है। इसलिए पेज छोडने से पहले यह पूरी तरह से संतुष्ट हो जाना चाहिए कि कोई भी तथ्य अपुष्ट न रहे। इस संबंध में कॅरियर काउंसिलर बहुत मददगार साबित होते हैं। चूंकि यह जमाना विज्ञापनों और जन-संपर्क का है, इसलिए उप-संपादक को इस बात का संजीदगी से अहसास होना चाहिए कि उसकी एक गलत सूचना कई लोगों के लिए अनर्थकारी हो सकता है। उदाहरण के लिए, दिल्ली के लक्ष्मी नगर स्थित एक शिक्षण संस्थान ने शत-प्रतिशत प्लेसमेंट के नाम पर

अखबारों में विज्ञापन व एडवरटोरियल प्रकाशित कराए। जब पढ़ाई पूरी होने को आई, तो छात्रों ने प्लेसमेंट संबंधी अपनी चिंताएं जाहिर कीं। प्रबंधन उन्हें बहलाता रहा। महीनों तक प्रबंधन का रुख टालमटोल वाला देखते हुए जब छात्रों ने संस्थान के बारे में गहराई से पता किया, तो पता चला कि वह तो पंजीकृत संस्थान भी नहीं है। एक बड़े अखबार ने अपने आलेख में इस संस्थान का नाम छापा था और उस समाचारपत्र की प्रतिष्ठा को देखते हुए संस्थान की विश्वसनीयता जांचने की छात्रों ने जरूरत नहीं समझी थी। परिणामस्वरूप कई दर्जन बच्चे फर्जीवाड़े का शिकार हो गए। इनमें से एक हताश बच्चे ने जब खुदकुशी कर ली, तो संस्थान के खिलाफ मुकदमा दर्ज हुआ और प्रबंधक को जेल जाना पड़ा। लेकिन इस एक घटना ने यह साबित किया कि यदि उस अखबार ने तथ्यों की सटीक पड़ताल की होती, तो शायद कुछ लोग फर्जी संस्थान के झांसे में आने से बच जाते। इसलिए उप-संपादक को हमेशा चैकन्ना रहना चाहिए। उसे न सिर्फ रोजगार के पुराने-नए क्षेत्रों के बारे में विस्तृत जानकारी अर्जित करते रहना चाहिए, बल्कि उन्हें रोचक अंदाज में परोसने का अंदाज भी उसे आना चाहिए। उसे पाठकों को आलेखों के जरिये आगाह करते रहना चाहिए कि शिक्षा व रोजगार के क्षेत्र में फर्जी संस्थाओं की भरमार है, इसलिए अच्छी तरह जांच-पड़ताल के बाद ही संस्थान का दामन थामें।

रिपोर्टर

कॅरियर रोजगार से संबंधित रिपोर्टर की जिम्मेदारी नए भविष्योन्मुखी अवसरों से संबंधित खबरें संकलित करने की तो होती ही है, उससे यह उम्मीद की जाती है कि वे अधिकृत सूत्रों के हवाले से हों। इसके लिए उसका अपनी बीट पर कमांड होना चाहिए। जैसे, मान लें कि यदि रोजगार के किसी क्षेत्र में कोई बड़ा नीतिगत फैसला होने वाला हो, तो इसके लिए उसे संबंधित महकमें के बड़े व जिम्मेदार अधिकारी का वर्जन जरूर लेना चाहिए। साथ ही किसी विशेषज्ञ की टिप्पणी भी शामिल करनी चाहिए। रोजगार संवाददाता को यह भी मालूम होना चाहिए कि उस फैसले के क्या निहितार्थ हैं, और उसका रोजगार परिदृश्य पर क्या असर पड़ेगा। अब खबरों को प्रस्तुत करने के तरीके बदल गए हैं, कंप्लीट पैकेजिंग पर ज्यादा जोर रहता है, इसलिए रिपोर्टर को अपनी खबर में वे सारी चीजें डालनी चाहिए, जिससे डेस्क को प्वाइंटर्य, हाईलाइट्स निकालने में परेशानी न हो। चूंकि रोजगार से संबंधित खबरें आज काफी चाव से पढ़ी जाती हैं। इसलिए संवाददाता की जरा-सी अतिरिक्त मेहनत उसे खास बना सकती है।

फीचर लेखक

फीचर लेखन के काम को आम तौर पर लोग गंभीरता से नहीं लेते, लेकिन यह एक ऐसी विधा है, जो न सिर्फ आपको समाज में एक लेखक के तौर पर स्थापित कर सकती है, बल्कि आपकी रचनात्मकता को नए विस्तार भी दे सकती है। चर्चित रोजगार विशेषज्ञ डॉ. अशोक सिंह कहते हैं, 'दुर्योग से हिंदी ही नहीं, इन दिनों अंग्रेजी में भी यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है कि नए फीचर लेखक पुराने तीन-चार आलेखों की कतरनें सामने रखते हैं और उनसे एक नया आलेख तैयार कर देते हैं। इस कोशिश में तो कई बार वाक्य और पैराग्राफ तक हूबहू उठा लिए जाते हैं। यह बेहद खतरनाक स्थिति है। शॉर्ट कट्स से कभी अच्छा रिजल्ट नहीं निकल सकता। इससे पाठकों का तो नुकसान होता ही है, फीचर लेखक की विश्वसनीयता पर भी सवाल खड़े हो जाते हैं। दरअसल, फीचर लेखक को अपने विषय को अच्छी तरह से समझने की कोशिश करनी चाहिए। जरूरी नहीं कि आप विशेषज्ञ हों, तभी किसी विषय पर कलम चलाएं। लेकिन एक फीचर लेखक को विषय से संबंधित अधिकृत स्रोतों का गहन अध्ययन करना चाहिए। और इन दिनों तो तमाम विभागों व क्षेत्रों की अधिकृत वेबसाइट्स उपलब्ध हैं। उनसे तथ्य लेते हुए आलेख तैयार करना चाहिए। जैसे, यदि कोई लेखक रूरल टूरिज्म के क्षेत्र में अवसरों पर कोई फीचर तैयार कर रहा है, तो उसे न सिर्फ यह जानने की कोशिश करनी चाहिए कि दुनिया में सबसे पहले इसकी शुरुआत कहां हुई और वहां इस क्षेत्र में क्या-क्या बदलाव आए, बल्कि उसे भारत के किन-किन राज्यों में किस-किस गांवों में इस तरह की योजनाएं चल रही हैं और वहां के लोगों के ऊपर पड़े उसके आर्थिक फायदे-नुकसान को भी समझने का प्रयास करना होगा। वहां किन-किन देशों के टूरिस्ट आए और उनकी आमद किस रफ्तार में रही, उन्हें संतुष्ट करने के लिए क्या-क्या साधन हैं। यदि फीचर लेखक इन बातों से अवगत नहीं होगा, तो वह कभी आकर्षक फीचर नहीं लिख सकेगा। एक अच्छे फीचर लेखक को भाषा पर भी ध्यान देना चाहिए। उसकी भाषा में रवानी होनी चाहिए। एकदम बोलचाल की भाषा। शब्दों के दोहराव हो। ऐसा तभी संभव है, जब उसके पास शब्द भंडार अच्छे हों। शब्द भंडार को बढ़ाने का एकमात्र तरीका ज्यादा से ज्यादा साहित्य, अखबार, पत्रिकाओं का अध्ययन ही है। फीचर लेखकों को बॉक्स छोटे-छोटे देने चाहिए। फीचर में इंट्रो की भूमिका सबसे अधिक है। वह पाठक को पूरा आलेख पढने का एक तरह से न्यौता है। इसलिए कैची हेडिंग से कम महत्वपूर्ण इंट्रो नहीं है। इसलिए इसमें वही जानकारी देनी चाहिए, जो खास हो और पाठकों को बिल्कुल नई-सी लगे। रोजगार के क्षेत्र के फीचर लेखक को हमेशा यह ध्यान में रखना पड़ता है कि उसका पाठक वर्ग कौन-सा है। यदि 12वीं पास विद्यार्थियों के लिए कोई फीचर लिखा जा रहा हो, तो उसे उनकी मनोवस्था का भी खयाल रखना चाहिए।

17.5 सारांश

दुनिया भर में प्रिंट मीडिया के सिकुडने की आशंकाएं जताई जा रही हैं, लेकिन भारतीय उपमहाद्वीप में स्थितियां बिल्कुल अलग है। यहां शिक्षा के विस्तार के साथ-साथ और आर्थिक तरक्की की रफ्तार को देखते हुए न सिर्फ मीडिया इंडस्ट्री के लिए बेहतर भविष्य है, बल्कि यह इंडस्ट्री रोजगार मुहैया कराने के बड़े अवसर भी लेकर आ रही है। लेकिन हमें नहीं भूलना चाहिए कि यह आम इंडस्ट्री नहीं है। पत्रकार सिर्फ कर्मचारी नहीं होते हैं, उनके कंधों पर लोकतंत्र और समाज के भविष्य की जिम्मेदारी होती है। इसीलिए जब शीर्ष अदालत के पूर्व प्रधान न्यायाधीश न्यायमूर्ति काटजू कहते हैं कि बौद्धिकता पत्रकारों की बुनियादी खुराक होनी चाहिए, तो उसके मूल में यही चिंता है कि यह एक प्रतिष्ठित पेशा है और इसकी आबरू हर कीमत पर बचाई जानी चाहिए।

17.6 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न-1 आजादी से पूर्व देश में रोजगार की क्या स्थिति थी?

प्रश्न-2 आर्थिक उदारीकरण के बाद देश में रोजगार के परिदृश्य में आए बदलाव पर टिप्पणी लिखें।

प्रश्न-3 कॅरियर और एजूकेशन से संबंधी परिशिष्टों की जरूरत व भूमिका को रेखांकित करें।

प्रश्न-4 एक रोजगार बीट के रिपोर्टर को किन-किन बातों का खयाल रखना चाहिए?

प्रश्न-5 फीचर लेखन विधा पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

17.7 संदर्भ सूची

1- भारतीय पत्रकारिता कोश- विजयदत्त श्रीधर
2- जर्नलिज्म इन मॉडर्न इंडिया- रॉलैंड ई वोल्सले
3- संपादन कला- डॉ. हरिमोहन
4- आधुनिक पत्रकारिता- डॉ. अर्जुन तिवारी
5- दैनिक हिन्दुस्तान (आर्काइव)

ईकाई-18

अपराध और मीडिया

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 अपराध की अवधारणा एवं स्वरूप
18.3 भारत में अपराध एवं माफिया का आरंभ
18.4 भारत में अपराध के नए ट्रेंड
18.5 भारत में अपराध की वर्तमान स्थिति
18.6 अपराध, मीडिया और समाज
18.7 टेलीविजन के दौर में अपराध पत्रकारिता
18.8 अपराध पत्रकारिता के समाज पर सकारात्मक प्रभाव
18.9 अपराध पत्रकारिता के समाज पर नकारात्मक प्रभाव
18.10 क्राइम शो एवं उनकी निर्माण प्रक्रिया
18.11 सारांश
18.12 शब्दावली
18.13 अभ्यास प्रश्न
18.14 संदर्भ ग्रंथ

18.0 उद्देश्य

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

1. विद्यार्थियों को अपराध की अवधारणा एवं स्वरूप से परिचित कराना।
2. भारत में अपराध के नए ट्रेंड और वर्तमान स्थिति से विद्यार्थियों को अवगत कराना।

3. भारत में अपराध पत्रकारिता की शुरुआत और विस्तार की परिस्थतियों से विद्यार्थियों को परिचित कराना।

4. उपग्रह टेलीविजन के दौर में अपराध पत्रकारिता के बदलते रूप से विद्यार्थियों को परिचित कराना।

5. बदलती अपराध पत्रकारिता के सकारात्मक और नकारात्मक पक्षों से विद्यार्थियों को अवगत कराना

6. टीवी पर दिखाए जाने वाले क्राइम शो के निर्माण के विभिन्न चरणों से विद्यार्थियों को अवगत कराना

18.1 प्रस्तावना

बीते कई दशकों से आज तक अपराध की दुनिया में वास्तव में बहुत बदलाव आए हैं। इस इकाई में अपराध, मीडिया और समाज के बीच का संबंध टटोलने की कोशिश की जाएगी। अपराध की अवधारणा पर बात करते हुए उसके बदलते स्वरूप, ट्रेंड और अपराध को कवर करने के मीडिया के तौर तरीकों और समाज पर असर को संक्षेप में बताया जाएगा। इसके अलावा टीवी पर दिखाए जाने वाले क्राइम शो के निर्माण के विभिन्न तौर तरीकों की भी जानकारी दी जाएगी।

18.2 अपराध की अवधारणा एवं स्वरूप

मानव समाज के आरंभ से अपराध की मौजूदगी रही है। जिस वक्त मानव समाज की रचना हुई अथवा मनुष्य ने अपना सामाजिक संगठन आरंभ किया, उस वक्त अपने संगठन की रक्षा के लिए कुछ नैतिक, और सामाजिक आदेश बनाए। इन आदेशों का पालन मनुष्य का धर्म बताया गया। लेकिन, शुरुआती दौर से इन आदेशों के विरुद्ध काम करने की मनुष्य की प्रवृत्ति रही।

अवधारणा :

अपराध की व्याख्या करने का प्रयास सदियों से हो रहा है। फिर भी, कुछ परिभाषाओं के जरिए अपराध की अवधारणा को समझने की कोशिश की जाती है।

"अपराध कानूनी तौर पर वर्जित और साभिप्राय कार्य है, जिसका सामाजिक हितों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है, जिसका अपराधिक उद्देश्य है और जिसके लिए कानूनी तौर से दण्ड निर्धारित है।" (हाल जिरोम)

"उन कार्यों को करने में चूक जो समाज में प्रचलित मानदण्डों की दृष्टि में समाज के कल्याण के लिए इतने हानिकारक हैं कि उनके संबंध मे कार्यवाही किसी निजी पहलशक्ति या अव्यवस्थित प्रणालियों को नहीं सौंपी जा सकती परन्तु वह कार्यवाही संगठित समाज द्वारा परीक्षित प्रकियाओं के अनुसार की जानी चाहिए।" (माउरेर)

"समुदाय का बहुमत जिसे सही बात समझे, उसके विपरीत काम करना अपराध है।" (सारजेंट स्टीफन)

अपराध की अनेक व्याख्याएं हैं, जिनके बीच एक स्पष्ट व्याख्या देना कठिन है। फ्रायड वर्ग के विद्धान् अपराध को कामवासना का परिणाम बतलाते है तथा हीली जैसे शास्त्री उसे सामाजिक वातावरण का परिणाम कहते हैं। इस तरह अलग अलग विद्वानों के अपने मत हैं। लेकिन, आधुनिक वक्त में अपराध की पूरी अवधारणा को सिर्फ पुराने मतों के आधार पर नहीं देखा सकता। आज नए किस्म के अपराध हो रहे हैं। इंटरनेट के आने के बाद साइबर अपराधों की पूरी फेहरिस्त है। पोर्न फिल्मों के निर्माण से लेकर जाली सीडी बनाने तक कई अलग अपराध हैं, जिनकी कुछ वर्षों पूर्व तक कल्पना कठिन था। इस तरह अपराध की पहचान अब यही है कि जो काम कानून संगत नहीं है,वो अपराध है। और जिसने कानून तोड़कर काम किया, वह अपराधी।

18.3 भारत में अपराध एवं माफिया की शुरुआत

चोरी, लूटपाट, हत्या, डकैती, मिलावटखोरी, ज़मीन का हड़पना और भ्रष्टाचार जैसे अपराध सदियों से होते रहे हैं। देश में आज़ादी से पहले अंग्रेजों की सत्ता थी और उनके अपने नियम-कानून थे। उस दौर में अपराध की कानूनी परिभाषा भी अलग थी। लेकिन, 15 अगस्त 1947 को भारत को मिली आज़ादी के बाद देश में एक संविधान बना। नए नियम-कायदों ने लोगों के अधिकारों को अपराध के दायरे से बाहर निकाला। आजादी के बाद वास्तव में कानूनों में काफी बदलाव आए और लोगों को इसका फायदा भी मिलना शुरू हुआ।

माफिया की शुरुआत :

आज़ादी के बाद भारत में संगठित अपराध की शुरुआत हुई। संगठित अपराध यानी वे अपराध, जो बड़े पैमाने पर किए जाते हैं। संगठित अपराधों के पीछे अपराधियों का बड़ा समूह काम करता है। इनका

कार्यक्षेत्र भी अपेक्षाकृत विस्तृत होता है और इनके पास संसाधन अधिक होते हैं। संगठित अपराध को अंजाम देने वाले अपराधियों को 'माफिया' भी कहा जाता है। यूं माफिया इटली के सिसिली के अपराधी तत्व थे, जिनकी अपने क्षेत्र में तूती बोलती थी। भारत में माफिया या संगठित अपराध की शुरुआत मुंबई से मानी जाती है। आज़ादी के बाद मुंबई देश के युवाओं के मन में एक सपने की तरह जगह बना रहा था। माना जाता है कि इसी दौर में मुंबई शहर में संगठित अपराध की शुरुआत गैंबलिंग और नशीले पदार्थों की तस्करी से हुई।

अयूब खान : अयूब खान उर्फ़ अयूब लाला को मुंबई माफिया का पहला बड़ा नाम कहा जा सकता है। अफ़गानिस्तान से आकर मुंबई में बसे लगभग 13000 अफ़गानियों के एक संगठन पख्तून जिरगा ए हिंद का संस्थापक प्रमुख भी अयूब लाला ही था। मुंबई में चलने वाले तमाम गैम्बलिंग क्लब, जिसे स्थानीय मारवाड़ी, मराठी या मुसलमान चलाते थे, उन सब पर अयूब लाला का नियंत्रण था।

वरदराजन मुदलियार : माफिया डॉन का दर्जा वरदराजन मुदलियार ने हासिल किया। मुंबई अंडरवर्ल्ड की दुनिया में 1960 से 1980 तक वरदराजन का अघोषित राज चला। मुदलियार ने जुएखोरी, नशीले पदार्थों की तस्करी के धंधे में कामयाबी हासिल की तो फिर डॉक थेफ्ट, सुपारी और कई दूसरी चीजों की तस्करी शुरु की। वरदराजन ने अपनी पहचान रॉबिनहुड सरीखी बनाने की कोशिश की। 80 के दशक में पुलिस ने वरदराजन के गुर्गों को निशाना बनाना शुरु किया तो वो चेन्नई भाग गया। 1988 में उसकी मौत हो गई। मणिरत्नम की 'नायकन' और फिरोज खान की 'दयावान' जैसी फिल्में कथित तौर पर वरदराजन की जिंदगी से प्रेरित थीं।

हाजी मस्तान : साइकिल रिपेयरिंग की दुकान चलाने वाले मस्तान मिर्जा ने कस्टम ड्यूटी बचाने के खेल को समझा। उस दौरान देश में इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं का क्रेज था। 1950 के दशक में मोरारजी देसाई ने मुंबई प्रेसीडेंसी का मुख्यमंत्री बनने के बाद शराब के व्यापार पर प्रतिबंध लगा दिया और मस्तान ने शराब की स्मगलिंग की और खूब मुनाफा कमाया। आपात काल में 18 महीने जेल में रहने के बाद मस्तान मिर्जा बाहर निकला तो उसने हाजी मस्तान के रुप में पहचान बनाई। अपनी अकूत दौलत को उसने फिल्मों में भी लगाया। कई बड़ी फिल्मी हस्तियों के साथ उठना बैठना शुरु किया। उसके बढ़ते प्रभाव के चलते करीम लाला और वरदराजन जैसे डॉन ने उससे दोस्ती की। हाजी ने सोना नाम की एक अभिनेत्री से शादी भी की। राजनीति में पैर जमाने की नाकाम कोशिश के बाद उसकी दिल की बीमारी से मौत हो गई।

दाऊद इब्राहिम : हाजी मस्तान के गैंग में शामिल रहे दाउद इब्राहिम ने मुंबई अंडरवर्ल्ड का नाता अंतरराष्ट्रीय अपराध जगत से जोड़ दिया। दाउद से पहले माफिया डॉन स्मगलिंग से लेकर बाकी कई

अपराध को अंजाम दे रहे थे, लेकिन दाउद ने इन अपराधों के साथ 12 मार्च 1993 के मुंबई विस्फोट को अंजाम देने में बड़ी भूमिका निभाकर आम लोगों के बीच नफरत फैलाने का काम भी किया। दाउद के गैंग के काम करने का अंदाज बिलकुल अलग था और उसे 'डी कंपनी' के नाम से जाना गया। दाउद ने फिल्मी हस्तियों से वसूली को बड़ा धंधा बनाया। टी सीरिज के मालिक गुलशन कुमार की हत्या फिरौती न देने की वजह से की गई। 2009 में दाऊद इब्राहिम को भारत के संगठित अपराधों का 'गॉडफादर' बताते हुए अमेरिका के एक प्रभावशाली रिपब्लिकन सांसद ऐड रॉयस ने विदेशी मामलों पर सदन की कमिटी द्वारा पायरेसी पर आयोजित बैठक में कहा था कि डी-कंपनी का बॉलवुड में भारी दखल है। वह बड़े पैमाने पर पायरेसी में शामिल है। 2003 में संयुक्त राष्ट्र दाउद को अंतरराष्ट्रीय आतंकवादी घोषित कर चुका है।

इसमें कोई शक नहीं है कि मुंबई संगठित अपराध का गढ़ रहा है। दाऊद इब्राहिम के वक्त में ही अरुण गवली गैंग, अमर नायक गैंग और छोटा राजन (दाउद का साथी भी रहा) गैंग की भी गतिविधियां थी। लेकिन, मुंबई के अलावा कुछ दूसरे शहरों में भी अंडरवर्ल्ड की गतिविधियां सुर्खियां बटोरती रहीं हैं। मसलन बेंगलौर में 1960 के दशक में कोडीगेहल्ली मुने गौड़ा यहां का पहला अंडरवर्ल्ड डॉन बना। शुरुआत में हफ्ता वसूली करने वाला गौड़ा कई दूसरे धंधों में उतर गया। 70 के दशक में कोटवाल रामचंद्रा और जयराज का नाम उभरा। और हफ्तावसूली का दायरा वेश्यालयों और ताड़ी बनाने वालों से बढ़कर शराब की दुकानों, मसाल पार्लर, गेम पार्लर आदि तक पहुंच गया। रामचंद्रा और जयराज के राजनीतिक संपर्क भी थे। 1990 में मुथप्पा राज, अग्नि श्रीधर जैसे नामों ने बेंगलौर अंडरवर्ल्ड को और सुर्खियां दिलाई।

लेकिन, आज संगठित अपराध का गढ़ कोई एक शहर या राज्य नहीं है। अब माफिया अलग अलग रुपों और अलग अलग शहरों में अपना काम कर रहा है। आज खनन माफिया से लेकर तेल माफिया तक अलग अलग क्षेत्रों के माफिया हैं, जो अलग अलग राज्यों में सक्रिय हैं।

18.4 भारत में अपराध के नए ट्रेंड

एक वक्त था, जब कुछ गिने-चुने किस्म के अपराधों से जुड़ी ख़बरें मीडिया में जगह पाती थीं। लेकिन, अब इतने अलग अलग किस्म के अपराध हो रहे हैं, जिनकी कल्पना भी कुछ वर्षों तक संभव नहीं थी। चोरी, हत्या, लूट, बलात्कार, मिलावटखोरी, फिरौती, अपहरण, नशीले पदार्थों और हथियारों की

तस्करी के अलावा कांट्रैक्ट कीलिंग, पोर्न फिल्मों का निर्माण व वितरण, पाइरेटेड फिल्मों की कालाबाजारी, क्रिकेट व दूसरे खेलों में सट्टेबाजी, मनी लॉड्रिंग व हवाला, गैरकानूनी प्रव्रजन, ऑनलाइन जालसाजी, क्रेडिट कार्ड से धोखाधड़ी जैसे सैकड़ों अलग किस्म के अपराध हैं। इंटरनेट की लोकप्रियता के साथ साइबर अपराधों में तेजी से इजाफा हुआ है, लिहाजा साइबर कानून को लगातार सख़्त किए जाने की वकालत हो रही है।

18.5 भारत के संदर्भ में अपराध की वर्तमान स्थिति

राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो की ताजा रिपोर्ट के अनुसार देश में 2008, 2009, 2010 में अपराध के क्रमश: 20,93,397, 21,21,345 और 22,24,831 मामले दर्ज किये गए। इस प्रकार से 2008 से 2010 तक तीन वर्षो के दौरान पूरे देश में अपराध के 63,39,555 मामले सामने आए। आंकड़ों से इतर बात करें तो सच यही है कि हज़ारों अपराध दर्ज नहीं हुए। इस तरह की शिकायतें लगातार सामने आई हैं।

18.6 अपराध, मीडिया और समाज

आज़ादी के बाद समाचार पत्रों में सामाजिक, वाणिज्यिक, खेल, फिल्म और आर्थिक मसलों से जुड़ी ख़बरें प्रमुखता से दिखायी देती थी, जबकि अपराध से संबंधित ख़बरों को बमुश्किल ठीक-ठाक जगह मिल पाती थी। लेकिन, 1970 के दशक में आंदोलनों के दौर और शहरीकरण की रफ्तार के बीच अपराध संबंधी ख़बरें अख़बारों में जगह पाने लगीं। हालांकि, आंदोलनों या शहरीकरण का अपराध से कोई सीधा वास्ता नहीं है, लेकिन गरीबी, बेरोजगारी, लोगों की नाराजगी और रोजी रोटी की तलाश में शहर पहुंच रहे युवाओं के बिखरते सपनों के बीच अपराध की तरफ बढ़ते कदम कहानियों में तब्दील होने लगे।

इसी दौर में समाज में अपराधों की संख्या बढ़ी तो लोगों की दिलचस्पी आपराधिक ख़बरों में बढ़ी। उधर, लंदन के टेबलॉयड समाचार पत्रों ने खासतौर से अपराध रिपोर्टिंग की संभावनाओं और उसके कवरेज पर बाजार से मिलने वाली प्रतिक्रियाओं को महसूस किया और इसके साथ वहां अपराध की कवरेज बढ़ने लगी। यह ट्रेंड भारत में धीरे धीरे उभार लेने लगा। अपराध कथाओं में लोगों की दिलचस्पी बढ़ी

तो समाचार पत्रों के साथ पत्रिकाओं में भी इस तरह की कथाएं जगह पाने लगी। इसी दौरान 1976 में इलाहाबाद के मित्र प्रकाशन ने सत्यकथा का प्रकाशन आरंभ किया। मित्र प्रकाशन के मालिक कृतेन्द्र मोहन मित्र कहते हैं, ''दरअसल, इस वक्त तक तमाम मशहूर पॉकेट बुक्स बाजार से नदारद होना शुरु हो गए थे, जिसने नयी पॉकेट बुक्स के लिए बाजार की संभावना बना दी। दूसरी तरफ, मनोहर कहानियां के संवाददाता बड़ी संख्या में अपराध कहानियां भेज रहे थे, जिन्हें मनोहर कहानियां में प्रकाशित करना मुश्किल हो रहा था, लिहाजा सत्यकथा का स्वरूप तैयार हुआ। ''

अपराध कथाओं पर आधारित पत्रिकाओं की सफलता ने मुख्यधारा के अखबारों और पत्रिकाओं को भी प्रभावित किया। उन्होंने एक विशेष किस्म का पाठक वर्ग तैयार किया,जो अपराध कथाओं में खूब दिलचस्पी लेता था। नतीजा समाचार पत्रों में अपराध संबंधी ख़बरें अनिवार्य रूप से जगह पाने लगीं। आज अपराध की खबरों के बिना अखबार को अधूरा माना जाता है, क्योंकि आज का पाठक अपराध की खबरों को बड़े चाव से पढ़ता है। इतना ही नहीं, हत्या-बलात्कार और लूट जैसी आपराधिक ख़बरें समाचार पत्रों के मुख्य पृष्ठ पर जगह पाती हैं। उदाहरण के लिए 24 मार्च 2012 दिन शनिवार को नवभारत टाइम्स दिल्ली की मुख्य खबर व आमुख निम्नलिखित था।

शीर्षक- रोडरेज में हत्या

नई दिल्ली। शराब के नशे में धुत दो लोगों ने एक ऑटो चालक को ईंटों से पीट पीटकर मार डाला। ऑटो चालक का कसूर सिर्फ इतना था कि उसका रिक्शा आरोपियों की इनोवा कार को छू गया था। दोनों आरोपियों को गिरफ्तार कर लिया गया है।

कुछ दशक पहले तक अपराध की बड़ी-बड़ी घटनाओं को एक कालम में जगह मिलना मुश्किल होता था, परन्तु आज अखबारों में अपराध की हर छोटी-से-छोटी घटनाओं को भी प्रमुखता से प्रकाशित किया जा रहा है। वरिष्ठ पत्रकार पंकज पचौरी कहते हैं,'' क्राइम किसी भी समाज का हिस्सा होता है और जनता में इसे जानने की इच्छा भी होती है और उन्हे क्राइम के बारे में अगाह करना मीडिया की जिम्मेदारी भी होती है। दुनिया भर में कई अखबारों में क्राइम पर पूरे पन्ने छपते हैं।''

18.7 टेलीविजन के दौर में अपराध पत्रकारिता

टेलीविजन समाचार चैनलों के आगमन और विस्तार ने अपराध पत्रकारिता को नए आयाम दे डाले। अब अपराध से जुड़ी ख़बर बुलेटिन की पहली ख़बर बन सकती है। पहली हेडलाइन बन सकती है।

इसके अलावा, यदि अपराध से जुड़ी कोई सनसनीखेज ख़बर दर्शकों को टेलीविजन से बाँधकर रख सकती है तो उस पर केंद्रित आधे या एक घंटे का विशेष कार्यक्रम बनाया जा सकता है।

दूरदर्शन युग में अपराध ख़बरें सिरे से नदारद दिखती थी, लेकिन उपग्रह टेलीविजन के दौर में अपराध ख़बरों के लिए अच्छी जमीन तैयार की। 17 मार्च 1998 का दिन अपराध से जुड़े कार्यक्रमों के लिहाज से ऐतिहासिक है, जब ज़ी टीवी पर इंडियाज मोस्ट वांटेड कार्यक्रम की शुरुआत हुई। सुहैब इलियासी के नेतृत्व में इस कार्यक्रम की प्रस्तुति, भाषा और अंदाज ने टीवी पर अपराध रिपोर्टिंग की नयी परिभाषा गढ़ी। सुहैब इलियासी इस कार्यक्रम के बारे में कहते हैं, ''कार्यक्रम का प्रस्तुतिकरण हम अलग करना चाहते थे, लेकिन ऐसा नहीं है कि हमने सब योजनाबद्ध तरीके से किया।''

अपराध संबंधी कार्यक्रमों को लोकप्रियता मिली तो टेलीविजन चैनलों पर इनकी संख्या में जबरदस्त इजाफा हुआ। 2006 में तो प्रमुख पांच-छह चैनलों पर 20 से ज्यादा क्राइम शो प्रसारित हो रहे थे। इनमें आज तक पर प्रसारित होने वाले वारदात और जुर्म, स्टार न्यूज पर प्रसारित होने वाले सनसनी और रेड अलर्ट, आईबीएन सेवन पर और प्रसारित होने वाले क्रिमिनल और गिरफ्तार व जी न्यूज के क्राइम रिपोर्टर और क्राइम फाइल और इंडिया टीवी का एसीपी अर्जुन मुख्य थे।

अपराध से जुड़े कार्यक्रम ख़बर को सनसनीखेज बनाने की अधिक स्वतंत्रता देते हैं। फिर, इसमें भी कोई दो राय नहीं कि अपराध अपने आप में सनसनीखेज होता है। वरिष्ठ पत्रकार शम्स ताहिर खान कहते है, "हर इंसान के भीतर जुर्म करने की प्रवृत्ति होती है। उसके अवचेतन में एक अपराधी भी होता है। और टेलीविजन पर जब अपराध संबंधी ख़बरें आती हैं तो दर्शक उसे देखना चाहता है।''

वरिष्ठ पत्रकार एनके सिंह क्राइम शो पर अपनी टिप्पणी में कहते हैं, "क्राइम' किसी भी समाज की धड़कन बताता है। हम 'क्राइम शो' के जरिए लोगों को अगाह करते हैं और उसका मकसद लोगों को सचेत करना है। जैसे अगर आप रात में गाड़ी से कहीं जा रहें हैं तो किसी अनजान व्यक्ति के द्वारा गाड़ी रोकने का इशारा करने पर गाड़ी न रोंके, वरना किसी क्राइम के शिकार हो सकते हैं। इसमें गलत वहां होता है, जब आप अपराध पर सचेत करने की बजाय अपराधियों का महिमामंडन करते लगते है वरना इसका सही तरीके से इस्तेमाल हो तो सरकार पर दबाव पड़ता है। अगर आप अपराध से जुड़े सुप्रीम कोर्ट के फैसलों को दिखाते हैं तो उसका अच्छा प्रभाव पड़ता है। दुनिया में एक बड़ा तबका अपराध से जुड़ी खबरों को देखता है।''

ज़ी न्यूज से जुड़े वरिष्ठ टीवी पत्रकार सतीश के सिंह कहते हैं,'' क्राइम शो' का एक बड़ा मकसद लोगों को सावधान करना है। यह हमारा समाजिक ट्रेंड दिखाता हैं। हम क्राइम को केवल परंपरागत अपराध से

जोड़ कर देखते हैं तो यह सही नहीं है इसका दायरा बहुत बड़ा है। आदर्श सोसाइटी घोटाला सहित अन्य आर्थिक घोटाले भी क्राइम के दायरे में ही आते हैं।"

इसमें कोई दो राय नहीं है कि देश में अपराध बढ़ रहे हैं। राष्ट्रीय अपराध ब्यूरों के आँकड़े गवाह हैं। फिर, यह कहना भी ग़लत नहीं है कि अपराध संबंधी ख़बरों में लोगों की दिलचस्पी पहले के मुकाबले कहीं ज्यादा है। टेलीविजन कार्यक्रम अपराध संबंधी ख़बरों को रोचक, मनोरंजक और सनसनीखेज बनाकर प्रस्तुत करते हैं, जिससे दर्शक बंध जाते हैं।

यद्यपि यह कहना भी ठीक नहीं है कि समाज में आपराधिक प्रवृति का संचार हो रहा है इसलिए लोग इन ख़बरों को पढ़ना-देखना पसंद कर रहे हैं बल्कि ये ख़बरें समाज को उनके आस-पास हो रहे अपराधों से सचेत भी करती हैं। अपराधी आपराधिक घटनाओं को किस प्रकार अंजाम देते हैं, किस क्षेत्र में अपराध बढ़ रहा है, अपराध का स्वरूप क्या है, यहाँ तक कि इन अपराधों से स्वयं की रक्षा किस प्रकार की जा सकती है- इन सभी प्रश्नों के उत्तर मिलते हैं 'अपराध पत्रकारिता से'।

18.8 अपराध पत्रकारिता के समाज पर सकारात्मक प्रभाव

अपराध पत्रकारिता के समाज पर सकारात्मक प्रभाव अग्रलिखित हैं-

1-अपराध पत्रकारिता समाज में जागरूकता लाने का सशक्त माध्यम है।

2-अपराध ख़बरों का प्रकाशन-प्रसारण सरकारों के भ्रष्ट-तंत्र पर अंकुश लगाता है।

3-सामाजिक सचेतता लाने में अपराध पत्रकारिता महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

4-विभिन्न प्रकार से हो रहे अपराधों से बचाव के उपायों का ज्ञान अपराध पत्रकारिता के माध्यम से होता है।

5-अपराध के तरीकों की पूर्व जानकारी होने से बचाव हेतु मानसिक मजबूती प्राप्त होती है।

इस बीच, बड़ा सवाल अपराध संबंधी ख़बरों के समाज पर असर को लेकर खड़ा होता है, जिस पर लगातार बहस होती है। मीडिया ट्रायल भी एक बड़ा मसला है। क्राइम रिपोर्टरों का सिर्फ और सिर्फ पुलिसिया सूत्रों पर निर्भर रहना हाल के दिनों में अहम सवाल बना है। मीडियाकर्मियों को अपराध संबंधी ख़बरों को कवर करने के दौरान अत्याधिक सचेत रहने की आवश्यकता लगातार महसूस हुई है। फरवरी 2012 में नोएडा में 10वीं कक्षा की एक नाबालिग लड़की के साथ बलात्कार की घटना के बाद पुलिस ने पीड़ित का नाम प्रेस नोट के जरिए मीडिया को उपलब्ध करा दिया। कुछ अख़बारों और वेबसाइट्स

आदि पर पीड़ित का नाम प्रसारित भी हो गया। इस मामले में राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (एनसीपीसीआर) ने उत्तर प्रदेश सरकार से शहर के पुलिस अधीक्षक के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई की मांग भी की।

18.9 अपराध पत्रकारिता के समाज पर नकारात्मक प्रभाव

सनसनीखेज क्राइम रिपोर्टिंग और अपराध संबंधी ख़बरों को मिलते ज्यादा स्पेस के कुछ नकारात्मक प्रभाव भी बताए जाते हैं। मसलन-

1-अविवेकपूर्ण अपराध रिपोर्टिंग से समाज अपराध की ओर उन्मुख हो रहा है।

2-आपराधिक घटनाओं के प्रकाशन-प्रसारण से सामाजिक अविश्वास बढ़ रहा है।

3-आपराधिक घटनाओं के बढ़ा-चढ़ाकर किये गये प्रस्तुतीकरण के कारण आपराधिक रिपोर्टिंग की विश्वसनीयता घट रही है।

4-अपराध कथाएं बच्चों को अपराध की तरफ उन्मुख कर रही हैं। आपराधिक ख़बरों में अपराधी को हीरों की भाँति प्रस्तुत किया जाता है जिसके कारण किशोरों व युवाओं में अपराधियों के प्रति गरिमा का भाव बढ़ रहा है।

5-अपराध संबंधी ख़बरों में आरोपी को दोषी सिद्ध कर दिया जाता है, जिससे समाज में उसका मान घटता है। मीडिया ट्रायल की वजह से कुछ घटनाओं में आरोपी ने खुदकुशी तक कर डाली।

दरअसल, अपराध संबंधी ख़बरों की संख्या में बढ़ोतरी के बावजूद क्राइम संबंधी ख़बरों की समझ रखने वाले पत्रकारों की संख्या अभी भी हमारे यहां गिनी-चुनी है। आईआईएमसी में एसोसिएट प्रोफेसर आनंद प्रधान क्राइम रिपोर्टिंग की नयी प्रवृत्ति पर अपनी टिप्पणी में कहते हैं, "असल में, अपराध रिपोर्टिंग के साथ सबसे बड़ी समस्या यह हो गई है कि वह पूरी तरह से पुलिस और अन्य जांच एजेंसियों की प्रवक्ता बन गई है। वह पुलिस के अलावा कुछ नहीं देखती है, पुलिस के कहे के अलावा और कुछ नहीं बोलती है और पुलिस के अलावा और किसी की नहीं सुनती है। इस तरह अपराध रिपोर्टिंग पुलिस की, पुलिस के द्वारा और पुलिस के लिए रिपोर्टिंग हो गई है। स्थिति यह हो गई है कि अधिकांश क्राईम रिपोर्टर पुलिस की आफ द रिकार्ड ब्रीफिंग या कानाफूसी में दी गई आधी-अधूरी सूचनाओं, गढ़ी हुई कहानियों और अपुष्ट जानकारियों को बिना किसी और स्रोत से कन्फर्म या चेक किये "एक्सक्लूसिव" खबर की तरह छापने/दिखाने में कोई संकोच नहीं करते हैं।"

18.10 क्राइम शो एवं उनकी निर्माण प्रक्रिया

टेलीविजन पर प्रसारित अपराध कार्यक्रमों को तराजू के एक पलड़े पर रखकर तोलना ठीक नहीं है। इन कार्यक्रमों से कई बार अपराधियों को पकड़ने में भी मदद मिली है तो अनेक बार लोगों को सचेत करने में। इंडियाज मोस्ट वांटेड कार्यक्रम के प्रसारण के दौरान तो 84 अपराधियों को पकड़ा भी गया। लेकिन, दूसरा सच यह भी है कि अपराध कार्यक्रमों का प्रस्तुतिकरण अनावश्यक तौर पर अधिक से अधिक नाटकीय रखा जाता है।

एक क्राइम शो के निर्माण प्रक्रिया को समझना हो तो उसे कुछ चरणों में बाँटा जा सकता है।

1-आइडिया : देश में रोजाना सैकड़ों अपराध होते हैं, लेकिन क्राइम शो में महज सात या आठ ख़बरे दिखायी जाती हैं। तो कौन सी ख़बर चुनी जाए, कौन सी छोड़ी जाए, ये उस खबर के तत्वों और उसमें छिपे आइडिए पर निर्भर करता है। आइडिए का तत्व मूलत: साप्ताहिक क्राइम कार्यक्रमों से ज्यादा संबंध रखता है,जहां घटना एक-दो दिन या कुछ पुरानी भले हो, लेकिन उसमें कोई ऐसा कोण छिपा हो,जो ख़बर में जान फूंक सकता है।

2-शूटिंग : क्राइम शो का दूसरा मूल तत्व है शूटिंग या विजुअल। दरअसल, अपराध अपने आप में जितना सनसनीखेज होता है, उतना ही गोपनीय भी, लिहाजा दर्शकों को अपराध से हर पहलू से रुबरु कराने के लिए ज्यादा से ज्यादा अहम दृश्यों को दिखाने की आवश्यकता होती है। आज तक चैनल में कई वर्षों तक क्राइम संबंधी कार्यक्रमों के प्रोड्यूसर रहे नाज़िम नक़वी कहते हैं,"अपराध से जुड़ी हर खबर टेलीविजन पर बेहतरीन विजुअल चाहती है। अगर आप हत्या से जुड़ी किसी खबर की शूटिंग के लिए गए हैं तो आपको खून के धब्बे, हत्या में इस्तेमाल हथियार, गाड़ी, आरोपी और मृतक की तस्वीरें और संबंधित लोगों की बाइट आदि की दरकार होती है। इनके बिना आप अच्छी स्टोरी नहीं बना सकते।"

3-नाट्य रूपांतरण : टेलीविजन में अपराध रिपोर्टिंग करते वक्त नाट्य रुपांतरण की शैली अब खासी प्रचलित हो गई है। कई बार रिपोर्टर के पास खबर की पूरी जानकारी होती है, लेकिन उससे संबंधित दृश्यों का अभाव होता है। ऐसे में नाट्य रुपांतरण अथवा री-कंस्ट्रक्शन का सहारा लिया जाता है। साफ है कि अपराध कैमरे के सामने नहीं किए जाते और चैनलों को विजुअल चाहिए तो यह तरीका लोकप्रिय हो रहा है। नाट्य रुपांतरण के दौरान घटना स्थल अमूमन वही चुना जाता है, जहां घटना घटी है।

कलाकारों को स्क्रिप्ट दी जाती है और जरुरी होने पर संवाद भी। कोशिश की जाती है कि कलाकारों का चेहरा मोहरा भी वास्तविक चरित्रों से मिलता-जुलता हो।

नाट्य रुपांतरण के दौरान कई बार विकट समस्याएं आती हैं। मसलन कलाकार नहीं मिलते अथवा घटना स्थल पर शूट करने की इजाजत नहीं होती। क्राइम रिपोर्टर येन-केन-प्रकारेण समस्याओं को सुलझाते हैं। लेकिन परेशानी तब होती है, जब डेडलाइन या दूसरी वजह से पत्रकार अपनी सीमा लांघ जाते हैं। इस संबंध में बेहद रोचक उदाहरण देते हुए क्राइम रिपोर्टर संजीव चौहान कहते हैं, "टेलीविजन कार्यक्रम खौफ़ की शूटिंग के दौरान हमें एक लाश को लड़की द्वारा खाए जाने का दृश्य शूट करना था। घटनास्थल पर कोई कलाकार नहीं मिला तो हमने गांव की एक लड़की को इस बात के लिए राजी कर लिया। पैसों के लालच में उसने काम कर दिया। हमने उसे एक शव (अवास्तविक) के पास बैठाकर शूटिंग कर ली। लेकिन, जब एपिसोड टीवी पर प्रसारित हुआ तो बवाल मच गया। वो लड़की ब्राह्मण थी और उसके परिवार में किसी ने कभी माँस तक नहीं खाया था। ऐसे में जब उसे कथित तौर पर शव खाते हुए दिखाया गया तो पूरे समाज में उसे व परिवार को कई दिनों तक सफाई देनी पड़ी।"

4-सनसनीखेज भाषा : यह मान लिया गया है कि अपराध किसी भी तरह का हो, उसमें सनसनी का तत्व मिश्रित है। यही वजह है कि क्राइम कार्यक्रमों की भाषा बहुत हद तक सनसनीखेज रखी जाती है।

5-वीडियो संपादन : क्राइम शो को असरदार बनाने में वीडियो एडिटिंग की अहम भूमिका होती है। क्राइम शो की अधिकांश खबरें बिना स्पेशल इफेक्ट के पूरा नहीं होती। दरअसल, स्क्रिप्ट में लिखे कुछ वजनदार शब्दों का दर्शकों में असर पैदा करने के लिए संपादन में कुछ खास बातों का ख्याल रखा जाता है। उदाहरण के लिए बैकग्राउंड म्यूजिक।

6-एंकरिंग : क्राइम शो की एंकरिंग को लीक से हटकर कराने के प्रयोग सफल हुए तो मान लिया गया कि अपराध कार्यक्रमों की एंकरिंग अलग अंदाज में होनी चाहिए। सुहैब इलियासी से लेकर शम्स ताहिर खान और श्रीवर्धन त्रिवेदी जैसे एंकर अपराध कार्यक्रमों की एंकरिंग करके ही लोकप्रिय हुए।

18.11 सारांश

भारत में अपराध की बढ़ती दर के बीच अपराध से जुड़ी ख़बरें पाठक और दर्शकों को दैनिक खुराक में शामिल हो गई हैं। एक दौर में अपराध से जुड़े समाचारों को समाचार पत्रों में जगह मिलना मुश्किल होता था, लेकिन आज अख़बारों की मुख्य खबर से लेकर टेलीविजन पर आधे घंटे तक कार्यक्रम अपराध

संबंधी ख़बर पर केंद्रित हो सकता है। अखबार और टेलीविजन पर अपराध संबंधी ख़बरों को इतनी प्रमुखता मिलने लगी हैं कि अपराध पत्रिकाएं हाशिए पर चली गई हैं। उपग्रह समाचार चैनलों के आगमन और विस्तार ने अपराध संबंधी ख़बरों के लिए खासा 'स्पेस' बनाया और एक के बाद एक कई क्राइम शो टेलीविजन पर दिखने लगे। यूं क्राइम शो का बड़ा मकसद लोगों को सचेत करना और अपराध संबंधी प्रवृत्ति और तरीकों का पर्दाफाश करना है, लेकिन सनसनीखेज और नाटकीय बनाने की दौड़ में कुछ कार्यक्रम अपने मकसद से भटक गए दिखते हैं। टीआरपी पाने की चाहत में कुछ चैनलों पर तो क्राइम रिपोर्टिंग का स्तर बहुत नीचा हो गया है। भाषा और प्रस्तुतिकरण के लिहाज से कई बार लगता है कि 'क्राइम शो' का मकसद लोगों को सचेत करना कम, डराना अधिक होता है।

निश्चित रुप से इस वक्त जिस तरह नए नए किस्म के अपराध हो रहे हैं, उसमें अपराध संबंधी कार्यक्रमों और ख़बरों के प्रति उत्सुकता बढ़ना तय है। इनकी आवश्यकता भी बहुत है। तकनीक ने अपराध को परंपरागत शैली से बाहर निकाल दिया है। मीडिया के सामने आज बड़ी चुनौती यही है कि वो कैसे अपराध संबंधी ख़बरों को पर्याप्त जगह देते हुए लोगों को सचेत करे अलबत्ता मीडिया ट्रायल जैसी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाए। अपराध की ख़बरों को अब नजरअंदाज नहीं किया जा सकता लेकिन मीडिया को इन ख़बरों को नाटकीय और सनसनीखेज बनाने की प्रवृत्ति पर रोक लगानी होगी। अपराध समाज का संवेदनशील मसला है, लिहाजा मीडिया को अतिरिक्त सावधानी बरतने की जरुरत है। अपराध की ख़बरों के प्रकाशन-प्रसारण के दौरान तेज़ी से ख़बर दिखाने की आपाधापी अथवा रोचक बनाने के प्रयत्न में हुई छूटी सी चूक कई लोगों का जीवन प्रभावित कर सकती है। मीडियाकर्मियों को यह बात समझनी होगी। यह काम कानून के बजाय सेल्फ रेगुलेशन से हो तो बेहतर है।

18.12 शब्दावली

अपराध- अपराध कानूनी तौर पर वर्जित और साभिप्राय कार्य है, जिसका सामाजिक हितों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है, जिसका अपराधिक उद्देश्य है और जिसके लिए कानूनी तौर से दण्ड निर्धारित है।

माफिया- संगठित अपराधों के पीछे अपराधियों का बड़ा समूह काम करता है। इनका कार्यक्षेत्र भी अपेक्षाकृत विस्तृत होता है और इनके पास संसाधन अधिक होते हैं। संगठित अपराध को अंजाम देने वाले अपराधियों को 'माफिया' भी कहा जाता है। यूं माफिया इटली के सिसिली के अपराधी तत्व थे,

जिनकी अपने क्षेत्र में तूती बोलती थी। भारत में माफिया या संगठित अपराध की शुरुआत मुंबई से मानी जाती है।

18.13 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न-1 भारत में अपराध के नए तरीकों का विवेचन कीजिए।

प्रश्न-2 माफिया शब्द कहां से पैदा हुआ, समझाकर लिखें।

प्रश्न-3 अपराध पत्रकारिता के समाज पर क्या प्रभाव पड़ रहे हैं। उदाहरण देकर लिखें।

प्रश्न-4 क्राइम शो के निर्माण की प्रक्रिया समझाइए।

18.14 संदर्भ ग्रंथ

1-न्यूज चैनलों का सत्कथाकरण, फैलोशिफ प्रोजेक्ट, सीएसडीएस, पीयूष पांडे

2-अपराध और टेलीविजन पत्रकारिता, वर्तिका नंदा

3-क्राइम रिपोर्टर कैसे बनें, एमके मजूमदार

4-अपराध तंत्र, विकीपीडिया

5-presscouncil.nic.in/speechpdf/Media%20Workshop%

20on%20crime%20judicial%20reporting.pdf

6-www.scribd.com/doc/53882809/Crime-Reporting-in-India

7-www.bhaskar.com/article/MH-this-man-was-the-first-stone-of-the-foundation-

of-mumbai-underworld-2707789.html

8-समाचार फॉर मीडिया डॉट कॉम

9-neerajtomer.blogspot.in

10-सामाजिक समस्याएं, श्री राम आहूजा

ईकाई-19

बाजार, उपभोक्तावाद और मीडिया

इकाई की रूपरेखा

19.1 उद्देश्य

19.2 प्रस्तावना

19.3 उपभोक्तावाद

19.4 उपभोक्तावाद की उत्पत्ति और विकास

19.5 उपभोक्ता संरक्षण कानून

19.6 विज्ञापन और उपभोक्ता

19.7 उपभोक्ता संगठनों की भूमिका

19.8 संचार माध्यमों की भूमिका

19.9 सारांश

19.10 बोध प्रश्न और उत्तर

19.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद-

- आप बता सकेंगे कि उपभोक्तावाद क्या है
- भारत में उपभोक्तावाद की उत्पत्ति और विकास किस तरह से हुआ और इसकी क्या दिशा है
- उपभोक्ता संरक्षण से संबंधित अन्मान्य कानून क्या हैं
- उपभोक्ता संरक्षण कानून 1986 की गहन जानकारी
- उपभोक्ता वस्तुओं के प्रसार के विज्ञापनों की क्या भूमिका है

- किस तरह समाचार माध्यम उपभोक्ता वस्तु का रूप ले रहे हैं
- उपभोक्ता के अधिकारों की रक्षा में समाचार माध्यमों की क्या भूमिका है

19.2 प्रस्तावना

पूर्व यूनिटों में हमने देखा कि मीडिया ने स्त्रियों और पर्यावरण से संबंधित मुददों को जनता के समक्ष प्रस्तुत करने में किस तरह की भूमिका निभाई है। इन क्षेत्रों में समाज के भीतर जागरूकता लाने में मीडिया की क्या ताकत है, इसका भी हमें पता चलता है। हमने स्त्रियों और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों की रिपोर्टिंग कैसे हो रही है, इसकी भी जानकारी दी है। इस यूनिट में हम भारत में उपनिवेशवाद की स्थिति का जायजा लेंगे। उपभोक्तावाद की उत्पत्ति और विकास के अध्ययन के साथ ही उपभोक्ता से जुड़े कानूनों की जानकारी भी प्रस्तुत करेंगे, और तब उपभोक्ताओं को जागरूक करने में मीडिया की क्या भूमिका हो सकती है, इसकी भी चर्चा करेंगे।

19.3 उपभोक्तावाद

उपभोक्तावाद आज के समाज में एक अत्यंत प्रचलित शब्द है। यह उपभोक्ता से बना है, और उपभोक्ता के भीतर भी असली शब्द है- भोक्ता । अर्थात उप और भोक्ता को मिलाकर उपभोक्ता बना। उपभोक्ता का मतलब है वह व्यक्ति जो किसी भी सेवा या वस्तु का उपभोग करता है या इस्तेमाल करता है। आप किसी भी ऐसी सेवा चीज या सेवा के उपभोक्ता हैं जिसे आप मूल्य चुका रहे हैं। यानी किसी भी वस्तु या सेवा के लिए जब आप मूल्य चुकाते हैं तो आप क्रेता यानी खरीदार हुए और जिससे खरीदते हैं वह विक्रेता हुआ। जो वस्तु आप मूल्य देकर खरीद रहे हैं, आपकी स्वाभाविक इच्छा होगी कि वह उतनी रकम के लायक हो। यदि आपको वह वस्तु घटिया लगती है या आपके द्वारा चुकाई गई रकम के हिसाब से कमतर निकलती है तो आपको लगता है कि आपके साथ धोखा हुआ है। आप छले गए हैं। ऐसी स्थिति में यह आपका अधिकार बनता है कि आप अपनी रकम वापस लें। लेकिन क्या विक्रेता आपको रकम वापस देगा। शायद 'नहीं'। दरअसल 'नहीं' की इस स्थिति में ही उपभोक्तावाद की गुत्थी निहित है। अमेरिका में 1938 में प्रकाशित 'कंज्यूमर्स रिसर्च' पत्रिका के मुताबिक, 'उपभोक्ता वह है जो अपने, अपने परिवार के उपभोग के लिए वस्तुएं खरीदता है। वह एक ही तरह की अनेक वस्तुओं व सेवाओं की तुलना करता है और सबसे कम कीमत में सबसे अच्छी चीज खरीदता है। केवल अमीर होना ही उपभोक्ता होने की शर्त नहीं है। असली बात यह है कि आपके भीतर उपभोक्ता होने की चेतना है या

नहीं।' यदि कोई विक्रेता बहुत ही ईमानदार हुआ तो खराब निकली वस्तु की रकम लौटाएगा, वरना बोल देगा, नहीं। यदि समाज में इसके लिए कानून होगा तो निश्चय ही विक्रेता को वह मूल्य लौटाना होगा या बराबर मूल्य की नई चीज देनी होगी।

क्रेता या उपभोक्ता के हितों की रक्षा का नाम ही वास्तव में उपभोक्तावाद है। आधुनिक समाजों में सरकार कानून बनाकर उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करती है। समाज में उपभोक्ता अधिकारों के प्रति समर्पित लोग उपभोक्ता संगठन बना सकते हैं ताकि उपभोक्ता हितों की रक्षा की लड़ाई मिलकर लड़ी जाए। आप एक नन्ही सी सुई लेते हैं, जिसमें छेद नहीं है, पिन लेते हैं, जिसमें जंग लगी है, माचिस की डिबिया लेते हैं जिसकी तीलियां नहीं जलतीं। देखने में ये बेहद छोटी चीजें हैं, और मूल्य भी हम बहुत ज्यादा नहीं चुकाते। लेकिन विक्रेता तो बहुत मुनाफा कमाता है। क्या इसमे हमारे हितों का प्रश्न नहीं है। चूंकि सुई जैसी मामूली वस्तु के लिए हम कोर्ट-कचहरी नहीं जाएंगे, शायद हमारी इसी कमजोरी का फायदा उठाकर उत्पादक घटिया माल का उत्पादन करते रह सकता है। आपका यह अधिकार बनता है कि मूल्य चुका कर ली गई वस्तु स्तरीय हो। सरकार को चाहिए कि उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए उचित कानून बनाए। कानून को क्रियान्वित करने के लिए पर्याप्त न्यायिक मशीनरी खड़ी करे। स्वयंसेवी संस्थाओं की मदद से जन आकांक्षाओं की पूर्ति करवाए। जनता को भी इस सिलसिले में निरंतर जागरूक रहने की जरूरत है। वह संगठन बनाकर आंदोलन चला सकती है। तभी उपभोक्तावाद की लड़ाई को मिल कर लड़ा जा सकता है।

उपभोक्तावाद की परिभाषा

इस प्रकार उपभोक्तावाद संजीदा नागरिकों और सरकार का वह संगठित आंदोलन है जो विक्रेताओं की तुलना में क्रेताओं के अधिकारों और शक्तियों को परिभाषित करता है और उनकी रक्षा करता है। महात्मा गांधी ने विक्रेताओं अर्थात व्यापारियों को संबोधित करते हुए कहा था- 'हमारी दुकान पर आने वाला सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति ग्राहक ही है। वह हम पर निर्भर नहीं है बल्कि हम उस पर निर्भर हैं। वह हमारे काम में किसी तरह का व्यावधान डालने नहीं आता, बल्कि हमारी उपस्थिति का लक्ष्य ही वही होता है। वह हमारे व्यापार का अनिवार्य हिस्सा है। हम उसकी सेवा करके उस पर कोई रहम नहीं कर रहे, बल्कि सेवा का मौका देकर वह हमें उपक्रत कर रहा है।' जब गांधी जी ने यह बात कही थी तब भारत में उपभोक्तावाद का कहीं नाम तक नहीं था। लेकिन समाज के भीतर एक छिपा उपभोक्तावाद था जो हमारी नैतिकता में निहित था। व्यापारियों के लिए गांधी जी के ये शब्द उसी नैतिकता की देन हैं। आज हमारा

उपभोक्तावाद व्यापारियों या उत्पादकों की नैतिकता पर आधारित नहीं है बल्कि उसे कानूनी प्रावधानों की ठोस जमीन उपलब्ध है।

क्रेताओं और विक्रेता के अधिकार

क्रेताओं और विक्रेताओं के बीच एक अपरिहार्य रिश्ता होता है। दोनों के बीच कुछ उसूल होते हैं और कुछ छिपा हुए कानून, जिनके तहत वे आपस में लेन-देन करते हैं। पारंपरिक तौर पर यह रिश्ता विक्रेता के पक्ष में झुका हुआ था। लेकिन अब बढ़ती उपभोक्ता- जागरूकता और कानूनों के बन जाने से यह रिश्ता संतुलन की स्थिति में आ गया है। हालांकि कस्बाई व ग्रामीण बाजारों में आज भी स्थिति में बहुत सुधार नहीं आ पाया है, इसलिए आज भी वहां विक्रेता अपनी मनमर्जी कर लेता है। यहां हम क्रेताओं व विक्रेताओं के अधिकारों की एक झलक प्रस्तुत कर रहे हैं-

विक्रेताओं के पारम्परिक अधिकार- विक्रेता या उत्पादक किसी भी वस्तु या सेवा को विक्रय के लिए पेश कर सकता है, उसका कोई भी आकार-प्रकार, तरीका हो सकता है बशर्ते कि वह चीज किसी के स्वास्थ्य या सुरक्षा के लिए हानिकारक न हो। यदि किसी तरह के नुकसान या जोखिम की आशंका हो तो इसके लिए वह उचित चेतावनी दे सकता है। इससे संबंधित चिन्ह बना सकता है।

- वह अपने पूरे माल की कीमत निर्धारित कर सकता है बशर्ते कि इसमें वह किसी तरह का भेदभाव न रखे।
- अपने माल को प्रचारित करने के लिए वह किसी भी हद तक रकम खर्च कर सकता है बशर्ते कि इससे कोई गलत प्रतिस्पर्धा न पैदा हो।
- अपने ग्राहकों के लिए वह कोई भी प्रोत्साहन योजना शुरू कर सकता है। अपने माल पर कोई भी संदेश या जानकारी छाप सकता है, लेकिन यह भ्रामक न हो और अंदर की सामग्री से मेल खाता हो

क्रेताओं के पारम्परिक आधार

- बिक्री के लिए पेश किसी भी वस्तु को खरीद सकता है।
- बिक्री गए माल के प्रति वह यह अपेक्षा रख सकता है कि वह साफ-सुथरा व सुरक्षित हो।
- खरीद गए माल के प्रति वह यह अपेक्षा रख सकता है कि वह साफ-सुथरा व सुरक्षित हो।
- वह यह भी अपेक्षा रख सकता है कि जो माल वह खरीद रहा है, उसमें निर्दिष्ट वस्तु ही अंदर होगी।

क्रेता व विक्रेता के पारम्परिक अधिकारों की तुलना करके देखें तो आम तौर पर यह तराजू विक्रेता की तरफ झुका होता है। यानी बिके हुए माल को वापस न लेने के लिए विक्रेता के पास अनेक बहाने होते हैं,

जबकि क्रेता कुछ अपनी काहिली के कारण और कुछ जानकारी के अभाव के कारण अपने अधिकारों का इस्तेमाल ही नहीं कर पाता है। वस्तु के बारे में जो जानकारी विक्रेता की तरफ से दी जाती है वह भी न सिर्फ अक्सर आधी अधूरी होती है, बल्कि भ्रामक और कई बार झूठी भी होती है, इसलिए उपभोक्ता आंदोलन से जुड़े कार्यकर्ताओं का मानना है कि उपभोक्ताओं को कुछ और अधिकार मिलने चाहिए। मसलन-

- वस्तु के बारे में विस्तार से जानने का अधिकार
- संदिग्ध वस्तुओं और संदिग्ध विणन व्यवहार के विरुद्ध शंका जाहिर करने का अधिकार
- उपभोक्ता को यह सलाह देने का अधिकार भी मिलना चाहिए कि जिससे माल की गुणवत्ता सुधरे और उपभोक्ता को माल की वास्तविक लागत जानने का भी अधिकार होना चाहिए। वस्तु किन किन चीजों से बनी है, उनके अलग-अलग फायदे क्या हैं और उनकी पौष्टिकता क्या है, इसकी भी पूरी जानकारी ग्राहक को वस्तु के साथ ही उपलब्ध कराई जाए। यही नहीं, अब यह मांग भी जोर पकड़ती जा रही है कि वस्तु के विज्ञापन में ही ठीक जानकारी दी जाए, विज्ञापन और वस्तु में किसी तरह का अंतर न हो। विकसित देशों में तो अब लोग पर्यावरणीय दृष्टिकोण से उपयोगी वस्तुओं के प्रति भी सतर्क रहने लगे हैं। यानी पर्यावरणीय पहलू से निरापद वस्तु का लेबल चिपका होना भी अब एक जरूरी शर्त बन गया है। भारत में भी पर्यावरण को लेकर आंदोलन चलने लगे हैं। खादी ग्रामोद्योग से बिकने वाले कागज पर लिखा रहता है कि यह कागज रीसाइकल करके या हाथ से बना है, अर्थात इसे बनाने में लकड़ी का इस्तेमाल नहीं हुआ है।

19.4 उपभोक्तावाद की उत्पत्ति और विकास

उपभोक्तावाद का वर्तमान स्वरूप हमारे यहां पश्चिम से आया है। पश्चिमी देशों में औद्योगिक क्रांति के बाद जब विकास होने लगा तब उपभोक्तावाद का जन्म हुआ। वहां जब उत्पादन बढ़ने लगा और उसके वितरण से समृद्धि बढ़ने लगी तो लोगों में माल की गुणवत्ता के प्रति जागरूकता बढ़ने लगी। उत्पादन बढ़ा तो वस्तुओं के बीच प्रतिस्पर्धा भी बढ़ने लगी। इसलिए एकतरफ लोगों में खरीदे गए माल के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करने की इच्छा पैदा हुई ताकि प्रतिस्पर्धा में दूसरे माल से तुलना की जा सके। साथ ही उपभोक्ताओं को इकट्ठा करके उत्पादकों पर दबाव बनाने की रणनीति के तहत भी उपभोक्तावाद को बढ़ावा मिला। अमेरिका में बीसवीं सदी के आरम्भ में इसकी उत्पत्ति हो गई थी, लेकिन आधुनिक

उपभोक्तावाद की शुरुआत 1960 के आसपास 'राल्फ नाडार' से हुई,जिन्होंने इसे कानूनी आंदोलन का रूप दिया।

पश्चिम में उपभोक्ता आंदोलन के बढ़ने से वस्तुओं की गुणवत्ता, उत्पादकों द्वारा अपने माल को लेकर किए जाने वाले दावों के बारे में बड़ी जागरूकता आई। धीरे धीरे उपभोक्ता यह मांग करने लगे कि खरीदी गई वस्तु के बारे में ठीक-ठीक जानकारियां दी जाएं। अमेरिका में राल्फ नाडार को आधुनिक उपभोक्तावादी आंदोलन का अगुवा माना जाता है। उन्होंने बहुत-सी कंपनियां को लाइन हाजिर कर दिया था। तब जाकर उत्पादकों ने अपनी मनमानी हरकतें छोड़नी शुरू की। उन्होंने जनरल मोटर्स जैसी बड़ी मल्टीनेशनल कम्पनियों से लेकर स्वास्थ्य, वृद्धावस्था की देखभाल से संबंधित वस्तुओं व सेवाओं, एटामिक एनर्जी, जल व वायु प्रदूषण जैसे मुद्दे उठाए और अमेरिकी समाज में एक नए युग की शुरुआत की। नाडार मानते हैं कि नागरिक होने का भाव गायब है, सार्वजनिक हितों के बारे में कोई सोचता ही नहीं। वास्तव में यदि इस तरह की संस्थाएं न हों तो निजी कंपनियां तो बेलगाम घोड़े की तरह नागरिकों को रौंदती ही चली जाएंगी। इस तरह लोकतंत्र की एक जरूरी शर्त के रूप में उपभोक्तावादी आंदोलन उभरा है।

भारत में आंदोलन

भारत में उपभोक्तावादी आंदोलन के उभरने का कारण पश्चिमी देशों से भिन्न है। भारत में आवश्यकता उपभोक्ता सामग्री की किल्लत, मिलावट जैसी बीमारियों से निपटने के लिए उपभोक्तावाद ने जन्म लिया। 1973-74 में जब आवश्यक वस्तुओं की किल्लत होने लगी तो लोगों ने देखा कि बाजार में कालाबाजारी हो रही है, कृत्रिम किल्लत दिखाई जा रही है, व्यापारी जमाखोरी करने लगे हैं और जो सामान मिल रहा है, उसमें भी मिलावट है। 1975 में जब देश में आपातकाल लगा तो बड़ी संख्या में कालाबाजारियों की धड़पकड़ होने लगी। दुकानों में स्टाक और मूल्य सूची टंगने लगीं। विज्ञापन का प्रसार हुआ। नई टेक्नोलॉजी आई। बाजार नए-नए माल से पटने लगे, लेकिन विज्ञापन में जो दावे किए जाते वे खोखले निकलते। स्तर के हिसाब से माल खराब होता था। एक तरह से यह विक्रेता की दादागीरी थी,जिससे उपभोक्ताओं में संगठन की जरूरत महसूस हुई। मसलन एक स्कूटर लेने के लिए भी उपभोक्ता को बरसों पहले बुकिंग करवा कर रखनी पड़ती थी। या फिर ब्लैक में लेना पड़ता था। जबकि पश्चिमी देशों के उपभोक्ता उतने ही मूल्य में बेहतर और ज्यादा सामग्री का उपभोग कर रहे थे। इसकी एक वजह संरक्षित अर्थव्यवस्था भी था। इस प्रकार भारत में उपभोक्ता आंदोलन का जन्म आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धि, शुद्धता और कीमत नियंत्रण को लेकर हुआ। चूंकि भारत में लगभग 35 करोड़

का मध्यवर्ग है, जो अपनी आय के प्रति बेहद सचेत रहता है। इसलिए उपभोक्ता आंदोलन का महत्व बढ़ने लगा।

19.5 उपभोक्ता संरक्षण कानून

क्रेता और विक्रेता के बीच संतुलन बनाए रखने के मकसद से समय-समय पर कानून बनाए गए हैं। आरंभिक कानूनों में हांलाकि उपभोक्ता के अधिकारों के संरक्षण के प्रति भावना नहीं थी, जैसी कि आज है। ये कानून निम्नवत हैं-

उपभोक्ता संरक्षण से संबंधित विभिन्न कानून

उपभोक्ता संरक्षण और उपभोक्ता अधिकारों से संबंधित कानूनों की एक झलक यहां प्रस्तुत है-

1- कोड ऑफ सिविल प्रोसीजर के तहत उपभोक्ता संरक्षण

2- माल विक्रय अधिनियम-1930

3- कृषि उपज 'श्रेणीकरण एवं चिन्हांकन' अधिनियम-1954

4- औषधि और चमत्कारिक उपचार 'आपेक्षणीय विज्ञापन' अधिनियम- 1954

5- खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम-1954

6- आवश्यक वस्तु अधिनियम-1955

7- सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम-1955

8- व्यापार एवं वस्तु चिन्ह अधिनियम-1958

9- निर्यात 'क्वालिटी नियंत्रण और निरीक्षण अधिनियम- 1974

10- कोड ऑफ क्रिमिनल प्रोसीजर 1973 के तहत उपभोक्ता संरक्षण

11- जल 'प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण' अधिनियम- 1971

12- बाट और माप मानक अधिनियम -1976

13- चोर बाजारी निवारण और आवश्यक वस्तु प्रदाय अधिनियम- 1970

14- वायु 'प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण' अधिनियम-1961

15- भारतीय मानक ब्यूरो अधिनियम- 1976

16- पर्यावरण संरक्षण अधिनियम- 1976

17- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम- 1986

अंतिम अधिनियम को छोड़कर बाकी सभी कानून विशिष्ट परिस्थितियों में ही लागू होते हैं। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 एक ऐसा अधिनियम है जो विभिन्न परिस्थितियों में उपभोक्ता संरक्षण की चर्चा करता है। हम यहां इस अधिनियम की विस्तार से चर्चा करेंगे।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम- 1986

भारत में जब उपभोक्ता आंदोलन काफी जोर पकड़ने लगा और कानून कमजोर पड़ने लगे तो यह जरूरत महसूस हुई कि कोई एक कानून ऐसा बने, जो एक साथ विभिन्न प्रकार की समस्याओं से निबटने में सहायक सिद्ध हो। यह हर तरह की वस्तुओं और सेवाओं पर समान रूप से लागू होता है, बशर्ते कि किसी वस्तु को केंद्र सरकार की तरफ से कानून की परिधि से बाहर न रखा गया हो।

इस कानून के तहत उपभोक्ता को निम्न अधिकार प्राप्त हैं-

क- जीवन और संपत्ति के लिए हानिकारक वस्तुओं से बचाने का अधिकार।

ख- वस्तुओं की क्वालिटी, मात्रा, शक्ति, शुद्धता, मानक और कीमत जानने का अधिकार ताकि अवैध आधार व्यवहार से खुछ को बचाया जा सके।

ग- उपभोक्ता हितों को लेकर सहानुभूतिपर्ण तरीके से विचार के लिए उचित मंच पर याचना करने का अधिकार।

घ- प्रतिस्पर्धात्मक कीमतों पर विविध वस्तुओं तक यथासंभव पहुंच प्राप्त करने का अधिकार।

च- अनुचित व्यापार, व्यवहार से खुद को बचाया जा सके।

छ- उपभोक्ता शिक्षण का अधिकार

अनुचित व्यापार व्यवहार

मोटे तौर पर *'अनुचित व्यापार व्यवहार'* का संबंध निम्न गतिविधियों से है-

- कोई भी भ्रामक विज्ञापन या झूठा प्रतिनिधित्व
- सौदेबाजी पर आधारित बिक्री
- किसी चीज की बिक्री
- किसी चीज की बिक्री के लिए लालच देना
- किए गए वायदों को निभाय बिना उपहारों व पुरस्कारों की घोषणा
- कुछ अपवादों को छोड़कर व्यापार बढ़ाने के लिए अनुचित तरीके से प्रतियोगिताएं करवाना
- निर्दिष्ट मानकों पर खरे उतरने वाली वस्तुओं की आपूर्ति
- वस्तुओं को जमाखोरी या नष्ट करना
- वस्तुओं को बेचने से इनकार करना

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम व्यापक है और यह विभिन्न परिस्थितियों में उपभोक्ता की शिकायतों का निपटान करने में सक्षम है। यह उपभोक्ता अधिकारों और संरक्षण के तरीकों पर विस्तार से प्रकाश डालता है, लेकिन आज हमारे उपभोक्ता कार्यकर्ता कहते हैं कि जिस तरह से अनुचित व्यापार, व्यवहार बढ़ रहा है और जिस पैमाने पर समाज में उपभोक्तावाद फैल रहा है, उसके चलते यह कानून भी अपर्याप्त हो गया है।

इंद्र कुमार गुजराल जब प्रधानमंत्री थे, तब एक सभा में उन्होंने कहा था कि *वर्तमान उपभोक्ता कानून उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने के लिए पर्याप्त नहीं है। बेशक कई मामलों में अच्छे फैसले हुए हैं, फिर भी उपभोक्ताओं को अभी और जागरूक बनाए जाने की जरूरत है।*

दरअसल इस कानून की अपर्याप्तता के पीछ इसके प्रावधानों की कमी नहीं, इसके कार्यान्वयन में आई ढील है। इसके तहत उपभोक्ताओं की शिकायतों के निपटारे के लिए त्रिस्तरीय तंत्र बनाया गया। जिला स्तरीय मामलों मामलों में 5 लाख रुपए तक के मुआवजों के लिए डिस्ट्रिक्ट फोरम 20 लाख रुपए तक के मुआवजों के लिए स्टेट कमीशन और 20 लाख से अधिक राशि के मुआवजे के मामले में नेशनल कमीशन का प्रावधान रखा गया था। और किसी भी स्तर पर 90 दिन के भीतर मामले को निपटाने का संकल्प लिया गया था। लेकिन इन फोरमों ने भी मामलों की भीड़ बढ़ने लगी है। 1996 के अंत तक

जिला व राज्य स्तरीय फोरमों से साढ़े तेरह लाख मामले सुनवाई के लिए पंजीकृत हो गए थे, इससे पता चलता है कि अपने यहां किस पैमाने पर अनुचित व्यापार व्यवहार होता है। लेकिन 1998 के अंत तक 10 लाख मामलों का ही निपटान हो पाया था। उपभोक्ता तब परेशान हो उठता है, जब उसे उपभोक्ता न्यायालय से भी लंबी लंबी तारीखें मिलती हैं। राष्ट्रीय उपभोक्ता शिकायत निवारण आयोग के पास 1998 के अंत तक 14,500 मामले आए थे जिनमें से 6,000 मामले अनसुलझे पड़े हैं। इनमें से कुछ मामले तो 1992 से ही पड़े हुए हैं। एचडी शौरी जैसे प्रख्यात उपभोक्ता कार्यकर्ता, आज जिस तरह से उपभोक्ता आंदोलन ढीला पड़ रहा है, उससे निराश हैं। उनका कहना है कि कानून बनाने में तो हम अग्रणी हैं पर इसे लागू करवाने में हम पिछड़ रहे हैं। अस्सी के दशक में इस आंदोलन में जो तेजी आई थी, वह अब ढीली पड़ गई है। यह वाकई हमारे लोकतंत्र के लिए नुकसानदेह हैं।

19.6 विज्ञापन और उपभोक्ता

जैसे जैसे समाज में उपभोग की प्रवृत्ति बढ़ी है, विज्ञापनों का महत्व भी बढ़ा है और विज्ञापनों के बढ़ने से समाचार पत्र-पत्रिकाओं या इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों की आय भी बढी जिससे अखबारों का आकार बढा, टीवी चैनलों का समय बढा। क्या हम कल्पना कर सकते हैं कि बिना विज्ञापनों के कोई चैनल 24 घंटे चल सकता है?

एक अखबार की लागत 20 रुपए के लगभग आती है जबकि वह बिकता है एक या दो रुपए में, यानी अखबारों या टीवी या रेडियो की सेहत के लिए विज्ञापनों का होना बहुत आवश्यक है। दूसरी ओर उपभोक्ता के लिए विज्ञापन बेहद जरूरी हैं। उपभोक्ता विज्ञापन पढ़ कर उत्पाद के बारे में न सिर्फ प्राथमिक जानकारी प्राप्त करता है बल्कि कई तरह के कई उत्पादों के बीच तुलनात्मक अध्ययन भी करता है। उसे वस्तु की कीमत, उसकी गुणवत्ता और उपलब्धता की जानकारी विज्ञापनों से ही मिलती है। आज ग्राहक उत्पाद के बीच की परिहार्य कड़ी बन गया है विज्ञापन। बिना विज्ञापन के उपभोक्ता बाजार की कल्पना ही नहीं की जा सकती। आज हर कंपनी के पास विज्ञापन का अलग बजट रहता है। बिना विज्ञापन के कोई कंपनी अपने माल को बाजार में उतारने की हिम्मत भी नहीं कर सकती।

यहां पर प्रश्न भी उठता है कि झूठे व भ्रामक विज्ञापनों की पहचान कैसे हो। कोई उत्पादन यदि अपने उत्पाद के बारे में अतिरंजित जानकारी देता है, वास्तविक खरीद के समय ग्राहक को लगता है कि विज्ञापित माल और बेचे जा रहे माल में जमीन आसमान का अंतर है तो वह छला सा महसूस करता है। यहां पर विज्ञापन का माध्यम बनने वाले मीडिया की भूमिका पर सवाल उठता है कि क्या मीडिया का

विज्ञापनों पर, विज्ञापनदाताओं पर कोई नियंत्रण नहीं होना चाहिए, क्या मीडिया को अपने मुनाफे के लिए मर्जी से विज्ञापन को छाप देना चाहिए, ऐसा हो सकता है और कई बार होता भी है। इसलिए यहां मीडिया की भूमिका पर अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। साथ ही उपभोक्ता कार्यकर्ताओं को भी निरंतर सचेत रहने की जरूरत होती है। मीडिया जगत ने इसीलिए एक संहिता बनाई है जो खुद उन पर लागू होती है, कि हमें कैसे विज्ञापन छापने चाहिए कैसे नहीं? विज्ञापन छापने से पहले किन बिंदुओं पर ध्यान देना जरूरी होता है? लेकिन विदेशी टीवी चैनलों से प्रसारित होने वाले विज्ञापनों पर रोक लगाने के लिए हमारे पास जो कानून है, वह बहुत ढीला-ढाला है। यह भी सवाल उठता है कि अंतरराट्रीय चैनलों पर विज्ञापित वस्तुएं भी अमूमन विदेशी होती हैं। विज्ञापन हमारे दर्शकों में उन चीजों को पाने की भूख जगाते हैं, इसलिए विज्ञापनों की दुनिया भी एक जटिल युग में प्रवेश कर रही है, और यह अपेक्षा है कि इस समस्या से निबटने के लिए हमें गंभीर प्रयास करने होंगे।

विज्ञापनों के लिए संहिता

विज्ञापन की दुनिया में आत्म नियमन के लिए संहिता की जरूरत बड़े दिनों से महसूस की जा रही थी। दिसंबर 1973 में विज्ञापनदाताओं और विज्ञापन एजेंसियों ने मिलकर एक संस्था बनाई-भारतीय विज्ञापन मानक परिषद। लेकिन इस संस्था के पास अभी कोई कानूनी अधिकार नहीं हैं। फिर भी आत्म नियमन की दृष्टि से ही सही, यह एक अच्छा प्रयास था। इसने कहा कि विज्ञापन ईमानदार, सत्य, निष्पक्ष और जिम्मेदार हो। साथ ही किसी के खिलाफ नाहक दुष्प्रचार न करते हों। परिषद ने जो संहिता बनाई, उसके मुख्य बिंदु इस प्रकार हैं-

- विज्ञापनों के जरिए उत्पादनों या सेवाओं के बारे में जो भी दावे किए जाते हैं, वे सत्याग्रहों, ईमानदारीपूर्ण हों। इसके अलावा परिषद को भ्रामक विज्ञापनों के खिलाफ कार्रवाई करने का भी अधिकार हो।
- प्रतिस्पर्धा में विज्ञापनकर्ता निष्पक्षता सुनिश्चित करें ताकि उपभोक्ता के चयन के अधिकार हनन न हो। स्वस्थ प्रतिस्पर्धा तो ठीक है, लेकिन किसी के विरुद्ध अनावश्यक प्रचार की इजाजत नहीं दी जा सकती।
- समाज के लिए नुकसानदेह उत्पादों के प्रचार से विज्ञापनों को दूर रखा जाएगा ।
- परिषद यह सुनिश्चिचत करेगी कि विज्ञापन सामाजिक शालीनता के स्वीकार्य मानदंडों को हानि नहीं पहुंचाएंगे।

19.7 उपभोक्ता संगठनों की भूमिका

उपभोक्ता के साथ-साथ एक शब्द है- भोगवाद। इन दोनों के बीच हल्का-सा फर्क है। जहां उपभोक्ता अपनी जरूरतों, खरीदी जाने वाली वस्तु के मूल्य व गुणवत्ता को लेकर अत्यंत सचेत होता है, वहीं भोगी अंधाधुंध भोग विलास पर विश्वास करता है। जरूरत न होने पर भी वह उत्पादनों को खरीदता है। इस तरह जहां उपभोग की नकारात्मक प्रवृत्ति का प्रतिफल भोगवाद है, वहीं उपभोग की सकारात्मक प्रवृत्ति उपभोक्तावाद है। उपभोक्तावाद भोगवाद में न बदल जाए इसके लिए जरूरी है कि उपभोक्ताओं का निरंतर मार्ग दर्शन किया जाए। उपभोक्ता वस्तुओं पर नियंत्रण रखा जाए, जहां सरकार के अनेक विभाग एवं एजेंसियां उपभोक्ता संबंधी कानूनों के पालन के लिए निगरानी रखती हैं, वहीं उपभोक्ताओं में जागृति लाने के काम में उपभोक्ता संगठनों, समाचार माध्यमों और स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। आमतौर पर उपभोक्ता संगठन तीन दिशाओं में काम करते है।

- उपभोक्ता शिक्षा
- उत्पादों की रेटिंग (श्रेणीकरण)
- उत्पादकों और सरकारी संस्थाओं के बीच समन्वय

उपभोक्ता शिक्षा :

उपभोक्ता संगठन विभिन्न प्रचार माध्यमों और स्वयं के कार्यक्रमों के जरिए उपभोक्ताओं को उनके अधिकारों, उपभोक्ता संरक्षण एजेंसियों, नियमों, कानूनों के प्रति जागरूक करते हैं। यह शिक्षण वस्तुओं के बारे में भी हो सकता है और अधिकारों के बारे में भी। दिल्ली में 'कामन कॉज' संस्था इस दिशा में महत्वपूर्ण काम कर रही है।

उत्पादों की रेटिंग :

कई देशों में कुछ उपभोक्ता संगठन उत्पादों की रेटिंग अर्थात स्तर निर्धारित करने का काम भी करते हैं। वित्तीय क्षेत्र में अपने यहां भी कुछ संस्था कंपनियों के इश्यूओं की श्रेणियां आवंटित करती हैं। एक तरह से वे उपभोक्ता का मार्गदर्शन करती हैं। अपने देश में कंज्यूमर गाइडेंस सोसायटी आफ इंडिया इस दिशा में काम कर रही है।

समन्वय:

उपभोक्ता क्षेत्र में सक्रिय संगठनों की सबसे बड़ी जिम्मेदारी यही है कि वे उत्पादों की कमियों, उनके बारे में मिली शिकायतों को उनके उत्पादकों तक पहुंचाते हैं और लगातार गलत काम करने वाले उत्पादकों को उपभोक्ता न्यायालयों में तलब करते हैं।

आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के समुचित वितरण की जिम्मेदारी सरकार की है। यदि इस व्यवस्था में कहीं गड़बड़ी हो रही है तो संगठनों, कार्यकर्ताओं की जिम्मेदारी है कि वे इस व्यवस्था को दुरूस्त करवाएं। लेकिन उपभोक्ता संगठनों को सचेत होकर यह भी देखना होता है कि इस दायित्व का निर्वाह करते हुए वे किसी स्वार्थी गुट या राजनीति के हाथों की कठपुतली न बनें। चुनावों के वक्त ऐसा संभव है कि किसी एक दल को बदनाम करने के लिए आवश्यक वस्तुओं की कृत्रिम किल्लत पैदा कर दी जाए और उपभोक्ता संगठनों का इस्तेमाल उस दल की मुखालफत करने में कर लिया जाए । उपभोक्ता संगठनों की पहली और अंतिम जिम्मेदारी उपभोक्ता हैं। जिसका ध्यान भटका, वे उपभोक्ता संगठन न रह कर स्वार्थी दलाल हो जाएंगे।

19.8 संचार माध्यमों की भूमिका

जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं, उपभोक्तावाद संरक्षण, उपभोक्तावाद के प्रसार में संचार माध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका है। न उपभोक्तावाद के बिना संचार माध्यमों का अस्तित्व है और न ही बिना मीडिया सहयोग के उत्पादन कर्ता अपने माल को ग्राहकों तक पहुंचाने के बारे में ही सोच सकते हैं। मीडिया की भूमिका को हम मुख्य रूप से पांच हिस्सों में बांट सकते हैं। पहला: मीडिया उपभोक्ता संरक्षण अभियान का एक प्रमुख हिस्सेदार है क्योंकि उसने न सिर्फ उपभोक्ता संरक्षण कानून और इससे संबंधित नियमों के प्रति समाज में जागरूकता लाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है, उपभोक्ता न्यायालयों के फैसलों को व्यापक रूप में प्रचारित भी कर इस अभियान को स्थापित भी किया है। दूसरा पहलू है: मीडिया के जरिए नए उत्पादों, आवश्यक वस्तुओं से संबंधित सूचनाओं को प्रमुखता से छापना। आज मीडिया नए उत्पादों, आवश्यक वस्तुओं से संबंधित सूचनाओं को प्रमुखता से छापना। आज मीडिया नए उत्पादों को लेकर अत्याधिक जागरूक है। वह अपने पाठकों, दर्शकों को नई-नई चीजों की जानकारी देकर, उत्पादों की समीक्षा प्रस्तुत करके ग्राहकों का मार्गदर्शन करता है। तीसरे पहलू के तौर पर हम 'डायरेक्ट मार्केटिंग' (प्रत्यक्ष विपणन) के रूप में मीडिया के इस्तेमाल को ले सकते हैं। आज अनेक टीवी चैनलों में डायरेक्ट मार्केटिंग के कार्यक्रम दिखाए जा रहे हैं। 'स्काई शॉप' चलाई जा रही है, यानी मीडिया खुद उपभोक्ता बाजार का एक सक्रिय हिस्सेदार बन गया है। चौथा पहलू है

विज्ञापन का। अर्थात विज्ञापन के जरिए उपभोक्ता वस्तुओं का प्रचार। यहां उपभोक्ता, उत्पादनकर्ता के बीच समन्वय का काम करता है मीडिया। पांचवां और शायद सबसे अहम पहलू यह है कि आज मीडिया अपने आज में एक उपभोक्ता उद्योग में तब्दील हो गया है। आज पत्रकारिता मिशन नहीं रही। वह किसी भी अन्य व्यवसाय की तरह मुनाफा कमाने वाला उद्योग बन गया है। आज के पत्र स्वामी पत्रकारिता के जरिए अधिकाधिक मुनाफा कमाने चाहते हैं। वे अन्य उद्योगों की ही तरह से अपना प्रसार क्षेत्र बढ़ाने और इसके एवज में विज्ञापन की मांग बढ़ाने के लिए हरसंभव कोशिश करते हैं। दिल्ली में 'टाइम्स आफ इंडिया' ने 'आमंत्रण मूल्य'(इनविटेशन प्राइस) के जरिए जिस तरह से 25 रुपए मूल्य की लागत वाले अखबार की कीमत डेढ़ रुपए स्थिर कर रखी है, वह इसका ज्वलंत प्रमाण है। यही नहीं, अब हिन्दुस्तान टाइम्स ने इसे और भी घटाकर एक रुपए कर दिया है, जिससे टाइम्स आफ इंडिया को भी अपनी कीमत एक रुपए करनी पड़ी।

समाचार माध्यमों पर उपभोक्तावाद का असर

आज न सिर्फ शहरों में, बल्कि गांवों में भी उपभोक्ता वस्तुओं एवं सेवाओं की खपत में जबर्दस्त उफान आया है। बहुराष्ट्रीय निगमों का अनुमान है कि भारत 25 करोड़ मध्यवर्गीय उपभोक्ताओं का बाजार है। यह बाजार चीन के बाद दुनिया का सबसे बड़ा बाजार है। मीडिया-प्रचार के जरिए इस विशाल उपभोक्ता बाजार के अधिकाधिक दोहन पर नजरें टिकी हुई हैं। जो उछाल आया है, वह भी मीडिया के जरिए ही संभव हो पाया है। 1991 के बाद अर्थात भारत में नई आर्थिक नीति के शुरू होने के बाद ही उपभोक्ता बाजार बड़ी तेजी से फेला है। अर्थात चीजों के प्रति समाज के दृष्टिकोण में भी स्वाभाविक रूप से परिवर्तन आ रहा है। जाहिर है, ऐसी स्थिति में अखबार या टीवी चैनल दोहरी भूमिका निभाता है। एक तरफ वह स्वतः भी एक उपभोक्ता वस्तु है, दूसरी तरफ वह अन्य उपभोक्ता वस्तुओं का प्रचारक भी है। ऐसी स्थिति में यह संभव है कि कोई अखबार या चैनल निहित स्वार्थों से प्ररित होकर खास उपभोक्ता वस्तुओं का प्रचार करने लग जाए। यह स्थिति निश्चय ही उस मीडिया-माध्यम की साख को खत्म कर डालेगा। इसलिए मीडिया की व्यावसायिकता यह मांग करती है कि मीडिया अत्यंत निष्पक्ष हो। जो मीडिया जितना निष्पक्ष होगा, जितना उपभोक्ता-मित्र होगा, वह उतना ही सफल होगा। इस तरह जो भूमिका उपभोक्ता कार्यकर्ताओं की है, वही मीडिया की भी है। उपभोक्ता संगठनों का लक्ष्य उपभोक्ता की सेवा है तो ये उपभोक्ता ही अखबार के पाठक -टीवी के श्रोता या दर्शक हैं। इस तरह ये उपभोक्ता संगठनों के न सिर्फ मददगार हैं बल्कि पूरक भी हैं। मीडिया पर उपभोक्तावाद के असर ने आज अखबारों, टीवी चैनलों की तस्वीर ही बदल डाली है। मुद्रित पत्रकारिता जो आज से 20 साल पहले तक सिर्फ राजनीति

या थोड़ी बहुत मानवीय सरोकारों का प्रतिनिधित्व करती थी, आज एक विशाल फलक को सामने रखकर काम कर रही है। अब पत्रकारिता का मतलब सिर्फ समाचार देना ही नहीं रह गया है, बल्कि पाठक या दर्शक की जरूरतों की अधिकतम पूर्ति करना भी उसका परम दायित्व है। इसलिए वह अब खबरों या विचारों या शैक्षिक लेखों का संपुंज न रहकर एक ऐसा जादुई पिटारा बन गया है, जिसमें से पाठक अपनी जरूरत, ज्ञानवर्धन और मनोरंजन की हर सामग्री यानी सूचना निकाल सकता है। आर्थिक उदारीकरण के साथ पत्रकारिता का यह स्वरूप निश्चित आकार ग्रहण करेगा। अभी वह संक्रमण के दौर में ही है।

19.9 सारांश

इस तरह हम देखते हैं कि अब भारत में उपभोक्तावाद एक निश्चित आकार की ओर अग्रसर है। जहां यूरोपीय देशों में संपन्नता की वजह से उपभोक्तावाद का जन्म हुआ, वहीं भारत में यह एक जरूरत बनकर आया। इसकी वजह से सरकार चोरबाजारियों, जमाखोरों पर नियंत्रण रख पाने में काफी हद तक कामयाब हुई। धीरे-धीरे भारत में भी उपभोक्ता के हितों के संरक्षण के लिए कानून बने। 1986 का उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

इस तरह उपभोक्ता जागरूकता के लिहाज से अस्सी का दशक उल्लेखनीय महत्व का है। इस शताब्दी के अंतिम दशक में हालांकि आर्थिक सुधारों की घोषणा से समाज में उपभोग की प्रवृत्ति में तो बहुत तेजी से वृद्धि हुई, लेकिन उपभोक्ता आंदोलनों में कुछ ढीलापन आया। विदेशी उपग्रह टीवी चैनलों के हमले से भारतीय समाज में व्यापक बदलाव के संकेत दिखाई दिए हैं। कोई स्पष्ट मीडिया पालिसी न बन पाने से सब कुछ संक्रमण के दौर से गुजरता दिखाई पड़ रहा है। लेकिन उपभोक्तावाद ने समाज में गहरी जड़ें जमाई हैं। इसका स्पष्ट प्रभाव मीडिया पर पड़ा है। एक तरफ उपभोक्तावाद का जबर्दस्त प्रभाव मीडिया पर पड़ा है जिससे वह स्वयं भी उपभोक्ता उत्पाद में तब्दील होता जा रहा है। फिर भी उपभोक्ताओं के हितों के संरक्षण के लिए उपभोक्ता संगठन और मीडिया एक-दूसरे के पूरक हैं। वे मिलकर उपभोक्ता अधिकारों की रक्षा कर सकते हैं। उनके कामों की झलक इस प्रकार हो सकती है:

-उपभोक्ताओं को उनके अधिकारों, हितों, उपभोक्ता वस्तुओं के बारे में जागरूक करना। समाज के गरीब तबकों में उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण में होने वाली गड़बड़ी को दुरुस्त करना।

-उत्पादों का तुलनात्मक परीक्षण करना, एक तरह के उत्पादों के स्तर का निर्धारण करना और आम जनता को इसकी जानकारी देना।

-उत्पादकों व कानून लागू करने वाली सरकारी एजेंसियों के बीच समन्वय का कार्य करना।

इस तरह आज भारत में उपभोक्तावाद कोई नया शब्द नहीं रह गया है। उपभोक्ताओं में जागृति आ रही है। अपने अधिकारों व हितों से वे वाकिफ हो रहा है। अर्थव्यवस्था के भूमंडलीकरण से इसके स्वरूप का विस्तार हो रहा है। मीडिया पर उपभोक्तावाद का जबर्दस्त असर पड़ा है। ऐसा लगता है कि अगली सदी में न सिर्फ हमारे उपभोक्ता बाजार में व्यापक बदलाव आएगा बल्कि मीडिया की तस्वीर भी बदल जाएगी।

उपभोग की प्रवृत्ति में उफान

आर्थिक उदारीकरण के बाद हमारे समाज में सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह आया है कि लोगों में उपभोग की प्रवृत्ति बढ़ी है और वे नई नजर से चीजों को देखने लगे हैं। अब वे रातोंरात अमीर बनना चाहते हैं, और उपभोग की वस्तुओं पर खर्च करने लगे हैं। उनका दृष्टिकोण व्यापक हो रहा है। देश में एक नया मध्यवर्ग उभरा है जो नई-नई वस्तुओं को उसी तरह से खरीद-बेच रहा है, जिस तरह पश्चिचमी समाज में होता है। इन वर्षों में हमने यह भी देखा है कि यदि किसी वस्तु की बाजार में मांग नहीं है, तो भी वह विज्ञापनों के जरिए, मार्केटिंग के जरिए इस तरह पैदा कर दी जाती है कि उस वस्तु विशेष की धड़ाधड़ बिक्री शुरू हो जाती है। मिसाल के लिए 1990 के आसपास दुपहिया वाहनों की बिक्री में आया उफान और पिछले दो-तीन सालों में छोटी कारों के प्रति मध्य वर्ग में आए जबर्दस्त आकर्षण खरीद-फरोख्त को देखा जा सकता है। घरेलू उपभोक्ता वस्तुओं, किचन की बढ़ती मांग को भी देख सकते हैं। अत्याधुनिक वाशिंग मशीनों, एयर कंडीशनरों की बढ़ती मांग को भी देख सकते हैं। इसी तरह पाश्चात्य फास्ट फूड, डिब्बाबंद सामान, फिल्टर किए गए पानी और मैनेजमेंट की शिक्षा के प्रति लोगों के बढ़ते आकर्षण को भी देखा जा सकता है। हम देशवासियों द्वारा उपभोग पर किए जाने वाले व्यय के क्रामिक विकास की एक झलक यहां पेश कर रहे हैं।

19.10 बोध प्रश्न व उत्तर

व्यावहारिक बोध-1

अपने दैनिक जीवन में कभी न कभी खरीदी गई किसी वस्तु या सेवा, यथा-रेल बस यात्रा, टेलीफोन-बिजली के बिल से निराशा हुई होगी। तब आपको भी लगा होगा कि आप अपने साथ हुई इस धोखाधड़ी के खिलाफ किसी उचित फोरम में शिकायत करें। सिर्फ इसलिए नहीं कि इससे आपको मुआवजा मिलेगा, बल्कि इसलिए भी कि किसी और के साथ, ऐसी धोखधड़ी न हो। आपको अपने खर्च किए गए धन के बराबर मूल्य की वस्तु या सेवा लेने का पूरा अधिकार है। इस तरह एक खरीदार के रूप में आपके अधिकार का हनन हुआ है और आप कानूनन संरक्षण के पात्र हैं। अब इस तरह की घटनाओं को याद कीजिए और नीचे लिखी तालिका के अनुरूप अपनी समस्या को सिलसिलेवार लिखने की कोशिश कीजिए।

वर्ग	**उपभोक्ता के रूप में आपकी शिकायत**
पानी	----------
बिजली	----------
गेहूं/चावल	----------
चीनी	----------
खाद्य तेल	----------
परिवहन	----------
डाकसेवा	----------

व्यावहारिक बोध-2

आपके पड़ोस में एक बच्चा अतिसार से पीड़ित है और आप तुरंत नमक चीनी का घोल पिलाकर बच्चे को बचा लेते हैं। बच्चे के माता-पिता हैरान हैं कि आपने कैसे बिना डाक्टरी की पढ़ाई किए यह सब सीख लिया। आपने यह इसलिए कर लिया कि आप ऐसे विज्ञापन देखते हैं। ऐसे लाभकारी विज्ञापनों की एक सूची बनाइए जो कि आपने देखे या पढ़े हैं।

प्रश्न-2 निम्न प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर लिखिए

1-किसी प्रतिष्ठित कंपनी के प्रेशर कुकर खाना बनाते समय फट जाता है। इससे जान-माल की क्षति भी होती है। यह घटना गारंटी काल समाप्त होने से पहले ही घट जाती है। यहां उपभोक्ता के कौन से अधिकारों का हनन होता है?

2- ज्यादातर रेफ्रिजिरेटरों में प्रशीतक के तौर पर क्लोरोफ्लोरो कार्बन का इस्तेमाल होता है। यह सेहत के लिए हानिकारक है। कुछ जागरूक उपभोक्ता ऐसा फ्रिज खरीदना चाहते हैं, जिसमें सीएफसी का इस्तेमाल न होता हो। इस तरह उपभोक्ता किस अधिकार के तहत यह मांग कर रहे हैं?

3- एक अखबार समूह ने अपने अखबारों का प्रसार बढ़ाने के लिए अपने अखबारों की कीमतों में भारी कटौती की कोशिश की है, जिससे उसके अखबारों का प्रसार बढ़ रहा है और अन्य समूहों के अखबारों का प्रसार घट रहा है। आखिर किस अधिकार के तहत एक पत्र समूह इस तरह की नीति लागू करना चाहता है?

उत्तर:

1- उपभोक्ता को सुरक्षित माल लेने का अधिकार प्राप्त है। माल के लेबल पर या विज्ञापन में उसकी जो विशेषताएं गिनाई हैं, उनके अनुरूप माल मिलना ही चाहिए। यदि प्रेशर कुकर इन विशेषताओं पर खरा नहीं उतरता है, तो यह कानून का उल्लंघन है।

2- उपभोक्ताओं को यह अधिकार है कि वे उत्पादकों को अपनी जरूरतों के हिसाब से प्रभावित करें ताकि जीवन को हानि की बजाय लाभ हो।

3- कम मूल्य पर अखबार बेचने वाले पत्र समूह को मार्केटिंग की कोई भी नीति लागू करने का अधिकार है बशर्ते कि उपभोक्ता का अहित न होता हो।